श्रीमन्मिश्रबलभद्रविरचितं

# होरारत्नम्

प्रथमो भागः

व्याख्याकारः

**डॉ॰ मुरलीधर चतुर्वेदी**

Copyrighted material

श्रीमन्मिश्रबलभद्रविरचितम्

# होरारत्नम्

'इन्दुमती' हिन्दीव्याख्योपेतम्

## प्रथमो भागः

व्याख्याकारः
डॉ० मुरलीधर चतुर्वेदी

मो ती ला ल ब ना र सी दा स
दिल्ली वाराणसी पटना मद्रास

Copyrighted material

© मोतीलाल बनारसीदास

मुख्य कार्यालय : बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
शाखाएँ : चौक, वाराणसी २२१ ००१
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
१२०, रॉयपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, मद्रास ६०० ००४

प्रथम संस्करण : १९७९
द्वितीय संशोधित संस्करण : १९८६

मूल्य
ल्द
ल्द

MLBD
295.00

नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, चौक, वाराणसी
द्वारा प्रकाशित एवं वर्द्धमान मुद्रणालय,
जवाहर नगर, वाराणसी द्वारा मुद्रित।

Copyrighted material

# दो शब्द

## श्रीहनुमते नमः

श्रीगोविन्दमनोमिलिन्दनलिनी सौन्दर्यसारावधिः
सम्मूर्त्ता ब्रजवासिपुण्यपटली लीलारसाधीश्वरी।
भक्ताभीष्टविधानकल्पलतिका कारुण्यकल्लोलिनी
वृन्दारण्यविहारिणी विजयते श्रीरासरासेश्वरी ॥१॥
सर्वदा स्मरणीयो मे पिता सद्बुद्धिदायकः।
कोविदाब्जकदम्बार्को देवाख्यः श्रीलकेशवः ॥२॥

आज बड़े हर्ष का विषय है कि यह फलित ज्योतिष का महार्णव ग्रन्थ प्रथम बार हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित हो रहा है। पहिले इसका संवत् १९४८ में लीथो में मूल मात्र का प्रकाशन बनारस से हुआ था किन्तु सर्वसाधारण जन इससे अपना वास्तविक फल समझने में कठिनाई का अनुभव करते रहे इसलिये हिन्दी अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन जन सुलभता के लिये प्रकाशक महोदय ने किया है।

प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहासों द्वारा यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है कि उपलब्ध पुस्तकों में सबसे प्राचीन वेद है, और यह भी सर्वविदित है कि वेद के ६ शिक्षादि अङ्ग होते हैं। उन षडङ्गों में सर्वश्रेष्ठ नेत्र स्वरूप ज्योतिष शास्त्र है। जैसे विना आँखों के मनुष्य बेकार होता है उसी प्रकार अन्य अङ्गों का जानने वाला यदि नेत्र रूप ज्योतिष शास्त्र को नहीं जानता तो किंकर्तव्य विमूढ़ होता है। कहा है—

'वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्यौतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते।
संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ॥'

इस ज्योतिष विद्या का महत्व शास्त्रों में वर्णित है। इसके मुख्य—१. सिद्धान्त, २. संहिता, ३. होरा (जातक) ये तीन विभाग हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ अपने नाम से ही सिद्ध करता है कि यह 'होरा' ग्रन्थों में रत्न है अर्थात् उत्तम ग्रन्थ है। अब यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि होरा शब्द का क्या अर्थ होता है तथा यह शब्द कैसे निष्पन्न होता है? उत्तर। होरा शब्द का काल अर्थ है अर्थात् काल नियामक होरा शब्द है। एक दिन-रात २४ घंटे का होता है। इसमें चौबीस काल होरा होती हैं। इसके आधार पर ही भारतीय वार गणना सिद्ध होती है।

इससे यह मालूम हुआ कि ढाई घड़ी की एक होरा हुई। ये होराएं अहोरात्र में होती हैं इसलिये अहोरात्र शब्द के आदि 'अ' अक्षर और अन्त के 'त्र' अक्षर का लोप करने से अहोरात्र शब्द से होरा शब्द निष्पन्न होता है। ग्रन्थ में सारावली के वाक्य से कहा है—

Copyrighted material

आद्यन्तवर्णलोपाद् होराशास्त्रं भवत्यहोरात्रात् ।
तत्प्रतिबद्धः सर्वे ग्रहभगणाश्चिन्त्यते यस्मात् ॥
होरेति शास्त्रसंज्ञा लग्नस्य तथार्द्धराशेश्च ।

हो० र० १ अ० २५ श्लोक ।

चौबीस होराओं से १ अहोरात्र और अहोरात्र से होरा शब्द बनता है यह अन्योन्याश्रय है । अथवा चतुरजन शुभाशुभ कर्मफल सूचक शास्त्र को होरा कहते हैं या होरा यह लग्न की संज्ञा है या लग्न के आधे भाग की संज्ञा को होरा कहते हैं । इससे भी यही सिद्ध होता है कि बारह लग्न दिन-रात्रि में पूर्ण होते हैं और उन लग्नों के आधार पर समस्त प्राणियों के शुभाशुभ जाने जाते हैं अर्थात् प्राणियों की जन्मकालीन ग्रह संस्था या तिथि नक्षत्रादिकों द्वारा उनके जीवन में आने वाले सुख-दुःखादि का निर्णय जिस शास्त्र से होता है उसे होरा शास्त्र या जातक शास्त्र कहते हैं । इसलिये अहोरात्र शब्द से ही होरा शब्द निष्पन्न होता है ।

ग्रन्थ में भी होरा शब्द का लक्षण इस प्रकार से है—'पितामह-नारद-वसिष्ठ-कश्यपादिसुनिर्मितं ज्योतिश्शास्त्रैकस्कन्धरूपं जन्मनानाविधफलादेशफलकं वेदचक्षुरूपं द्विजानामध्ययनीयं शास्त्रं होराशब्दवाच्यम्' ।

अथवा जो कि संसार में प्रसिद्ध जातक शास्त्र है वही होरा शास्त्र है अथवा होरा यह शब्द भाग्य विचार का पर्यायवाची है । कल्याण वर्मा ने कहा है—

जातकमिति प्रसिद्धं यल्लोके तदिह कीर्त्यते होरा ।
अथवा दैवविमर्शनपर्यायः स्वल्वयं शब्दः ॥

(सारा० २ अ० ४ श्लोक)

इस होरा शास्त्र का क्या प्रयोजन होता है ? उत्तर । ब्रह्मा जी जीव की उत्पत्ति के समय में उसके मस्तक पर जो पूर्व जन्मार्जित शुभाशुभ कर्म होता है उसे अङ्कित कर देते हैं । जैसे अन्धकार में रखी हुई वस्तु का ज्ञान दीपक से होता है उसी प्रकार उस कर्मपङ्क्ति का ज्ञान इस होरा शास्त्र से होता है । जातक सारदीप में कहा है—

या ब्रह्मणा विलिखिता नरभालपट्टे
प्राग्जन्मकर्मसदसत्फलपाकशस्तिः ।
होरा प्रकाशयति तामिह वर्णपङ्क्तिं
दीपो यथा निशि घटादिकमन्धकारे ॥

(१ अ० ६ श्लोक)

और भी इस होरा शास्त्र से परमावश्यकता का ज्ञान यह होता है कि जन्मपत्री के आधार पर शुभ दशा का ज्ञान करके धनोपार्जन धन प्राप्ति करना व शुभ समय में यात्रा करना तथा आपत्ति रूप नदी से छुटकारा पाना इत्यादि अर्थात् उत्तम सलाहकार एकमात्र यही होरा शास्त्र है अन्य कोई भी जीवों का शुभचिन्तक और दुःख दूर करने वाला नहीं हो सकता है ।

Copyrighted material

सारावली में कहा है—

अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदर्णवे पोतः।
यात्रा समये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः॥

(२ अ० ५ श्लोक)

तथा होरा मकरन्द में भी—

निजानि भाग्यान्यवगन्तुमुच्चैरापत्पयोराशिमपि प्रततुंम्।
द्रव्यं तथोपार्जयितुं जनानां होरां विना नान्य इहास्त्युपायः॥

## ग्रन्थकार का परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता पण्डित दामोदरात्मज पं० बलभद्र जी हैं। इन्होंने अपना निवास स्थान ग्रन्थारम्भ में कान्य-कुब्ज दिया है। जो कि भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है, महाकवि भवभूति और श्रीहर्ष इसी कान्यकुब्ज नरेशों के सम्मानित थे। जहाँ के प्रायः इत्र नाना प्रकार के इस समय देश में प्रसिद्ध हैं। यह स्थान श्री गङ्गाजी के पुण्य तट पर विराजमान है। ऐसा बलभद्र ने इससे पूर्व में रचित 'हायनरत्न' नामक ग्रन्थ में कहा है—

भागरथीतीरविराजमाने श्रीकान्यकुब्जे नगरेऽतिरम्ये।
अभूद्भरद्वाजमहर्षिवंशे श्रीलालनामा गणकोष्णधामा॥

श्री बलभद्र मिश्रजी के पितामह का नाम श्रीलाल था। ये भरद्वाज ऋषि के वंश में उत्पन्न हुए थे। जिनमें सबसे बड़े श्री देवीदास, इनसे छोटे क्षेमकर्ण जी व इनसे लघु व्याकरण शास्त्र के उच्चकोटि के विद्वान् नारायण नाम से हुए। श्री नारायणजी से छोटे मिश्र चतुर्भुज जी और इनसे भी लघु पण्डित दामोदर जी हुए थे। ये ही पण्डित दामोदर जी ग्रन्थकार के पिता थे। इनके दो पुत्र बलभद्र व हरि नाम से हुए थे।

## ग्रन्थकार की वंश परम्परा

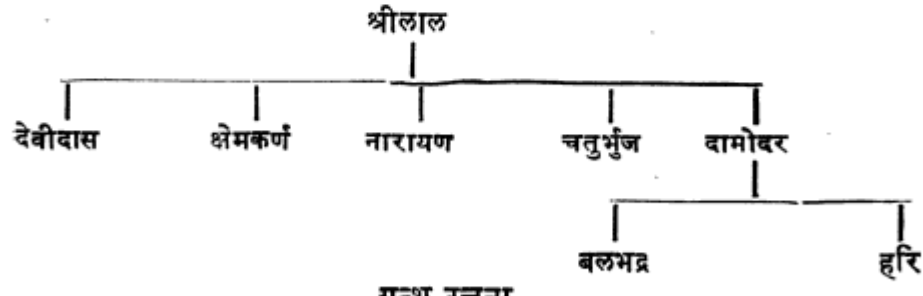


## ग्रन्थ रचना

श्रीबलभद्र ने प्रथम १ मकरन्द नामक ग्रन्थ पर उपपत्ति के साथ टिप्पणी की, २ इसके अनन्तर भास्करीय बीजगणित पर टिप्पणी की, ३ तदनन्तर वर्ष फल के लिये उत्तम 'हायन रत्न' नामक ग्रन्थ की रचना की इसके पश्चात् ४ 'होरा रत्न' का निर्माण किया था। ऐसा इनके ग्रन्थारम्भ के पद्यों से विदित होता है। कहा है—

बलभद्रेण कृतं प्राक् सवासनं टिप्पणञ्च मकरन्दे।
ततष्टिप्पणं भास्करीये च बीजे कृतं ताजिके वर्षरत्नं त्वपूर्वम्॥

Copyrighted material

हायनरत्न की रचना के बाद इस प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण किया था। इस ग्रन्थ में कुल १० अध्याय हैं। प्रथम पाँच अध्याय का प्रथम बार हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम संस्करण पाठकों के हाथ में है। इसमें ऐसे ग्रन्थों के वाक्य हैं जो कि आज तक जनता जनार्दन के कानों में यहाँ तक कि इतिहास में भी नहीं दिये हैं। इन सब ग्रन्थों व ग्रन्थकारों के नाम परिशिष्ट में दूसरे भाग में प्रस्तुत हैं।

जैसे 'समुद्रजातक' 'कश्यप जातक' 'सूर्य जातक' इत्यादि। इस ग्रन्थ में बहुत स्थानों पर 'भगवान् सूर्यः' 'सूर्यजातके' आने से सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्त की तरह यह भी आर्ष ग्रन्थ हो या सूर्यांश पुरुष मय द्वारा रचित हो।

इस ग्रन्थ में संज्ञाओं से लेकर योगों तक प्रत्येक वस्तु का निर्णय ग्रन्थान्तरों के वाक्यों से किया है। इससे ग्रन्थकार का प्रखर पाण्डित्य द्योतित होता है।

मेरी दृष्टि में भी होरा या जातक के ग्रन्थों में यह रत्न होरा की तरह शुभ्र चमक से युक्त इसलिये है कि भावस्थ ग्रहों का बलाबल के साथ तथा बारह प्रकार की स्थिति वश फलादेश का अन्य उपलब्ध ग्रन्थों में अभाव है।

## काल

ग्रन्थ रचना के विषय में स्वयं ही ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि जिस समय 'शाह सुजा' इस भूमि के राजा थे उस समय में उनके पास निवास करके मैंने संवत् १७१० चैत्र शुक्ल चतुर्थी के दिन रचना समाप्त की थी। ग्रन्थ के अन्त में कहा है—

ओदार्यगाम्भीर्यविराजमानः स्वतेजसारातिहृताभिमानः।
बलान्वितः सद्गुणितानिधानः पृथ्वीपतिः शाहसुजाभिधानः॥
तदन्तिकस्थेन कृतं मयैतत्खचन्द्रसप्तेन्दु १७१० मितेऽब्दकाले।
मधौ चतुर्थ्यां सितपक्षजायां विमत्सराणां कृतिनां सुखाय॥

इस लीथो प्रिन्ट पुस्तक में वृद्धयवनोक्त आधान व जन्म प्रकरण संस्कृत वि० वि० सरस्वती भवन की मातृका से अधिक प्रतीत होते हैं।

अर्थात् मैंने लीथो प्रिन्ट सं० १९४८ का आश्रय लेकर इस अपार फलादेश निधि का हिन्दी में व्याख्या करना प्रारम्भ किया था व्याख्यान में शुद्धि को दृष्टि में रखते हुए मैंने लीथों में होरारत्न में आये हुए कल्याणवर्मा कृत सारावली के उद्धरणों को टिप्पणी में रख दिया है और छपी हुई सारावली के अनुसार मूल में रखा है कहीं पर इसके विपरीत किया है।

इस महान् काय ग्रन्थ में अप्रकाशित ग्रन्थों के वाक्य अधिक प्राप्त होते हैं किन्तु समुद्रादि जातक ग्रन्थों की जो संख्या यहाँ पर दी है वह भी हस्तलिखित के आधार पर ही दिया गया है।

प्रथम अध्याय में इस शास्त्र के पठन पाठन के अधिकारी का निर्णय, भाग्य व पुरुषार्थ का वर्णन, अनेक रीति से राशि व ग्रहों की संज्ञा, स्वरूप व बलाबल विवेचन के अनन्तर उनके फल और निषेक व जन्म के समय विविध योगों का अनेक ग्रन्थों के आधार पर कथन है।

Copyrighted material

दूसरे अध्याय में जन्म के समय निषिद्ध काल का ज्ञान करके उन अशुभ समयों की अर्थात् अभुक्त मूलादि की शान्ति का वर्णन है। इसके बाद होडा चक्र व उसमें अभिजित् गणना का विचार, जातकाभरण के आधार पर जन्मपत्री लिखने का क्रम, ६० प्रभवादि संवत्सरों के फल, पञ्चाङ्ग, षड्वर्ग गणादि के फल तथा डिम्भचक्र का ज्ञान करके उसके फल का जातकाभरण के आधार पर विवेचन है।

तीसरे अध्याय में भावों की आवश्यकता व उनका आनयन, भावस्थ ग्रहों का फल, हिल्लाजोक्त सावधि भावफल, विशेष फल ज्ञान के लिये संकेत कौमुदी में कथित ग्रह भाव चेष्टाओं का विचार. शयनादि अवस्था का ज्ञान, सप्तम, पञ्चम, दशम भाव में ग्रहों की अवस्था विशेष का फल, शयनादि अवस्था में सूर्यादि ग्रहों का फल, बारह राशियों में स्थित सूर्यादि ग्रह फल व उन पर ग्रहों की दृष्टि के फल का वर्णन है।

चौथे अध्याय में राशिस्थ ग्रहों के तथा सूर्यादि ग्रह जिस ग्रह के होरादि में हो उनका फल और मित्रादि बल से युक्त व हीन सूर्यादि ग्रहों का फल, उच्च, मित्र, नीचादि में स्थित ग्रहों के फल का प्रतिपादन है।

पाँचवें अध्याय में विविध प्रकार के अरिष्टों का विवेचन व आयु योग, पिता, माता को कष्ट देने वाले योगों का वर्णन, पिता, माता व जातक के अरिष्ट विनाश योग, विविध राजयोग, पञ्चमहापुरुष योग, छाया व तत्त्वों के फल, पंचमहापुरुष योगों के फल और ग्रहों की रश्मियों का ज्ञान तथा उनके फल का वर्णन है।

इस मेरे महान् कार्य में पं० जनार्दन शास्त्री जी ने जो सहायता की है इसलिये मैं इनका चिरकृतज्ञ हूँ कि मेरा इस ओर आकर्षण इन्हीं महा मनीषी पर्वतीय पाण्डेय जी ने किया है।

अन्त में मैं विद्वान् पाठकों से यही निवेदन करता हूँ कि मेरे इस प्रयास में जो भी त्रुटि अज्ञानवश या दृष्टिदोष वश रह गई हो उसे क्षमा करके मुझे सूचित करने की कृपा करें।

विदुषामनुचरः।
मथुरावास्तव्य श्रीमद्भगवताभिनवशुक
पं० केशवदेवचतुर्वेदात्मज-
मुरलीधरचतुर्वेदः

सं० सं० वि० वि० सरस्वती भवन
वाराणसी
फा० कृ० शिवरात्रिः संवत् २०३५

This One
C1LT-TTZ-EPUR
Copyrighted material

# विषयानुक्रमणिका


| विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| **पहिला अध्याय** | |
| **उपोद्घात प्रकरण** | |
| मङ्गलाचरण | १ |
| ग्रन्थकार के वंश का ज्ञान | ,, |
| ग्रन्थकार का परिचय | २ |
| ग्रन्थारम्भ प्रयोजन | ,, |
| ग्रन्थ का नाम व ग्रन्थारम्भ | ३ |
| होरा लक्षण | ,, |
| ज्योतिषशास्त्राध्ययनानधिकारी | ४ |
| विषय व सम्बन्ध | ,, |
| अध्यनाधिकारी, अनधिकारी | ५ |
| होरा शास्त्र की व्युत्पत्ति | ६ |
| ,, ,, प्रशंसा | ,, |
| ,, का प्रयोजन | ७ |
| अन्य प्रयोजन ज्ञान | ,, |
| होरा ज्ञान की विफलता | ८ |
| पुरुषार्थ की प्रशंसा | ९ |
| भाग्य की प्रधानता | ,, |
| होरा शास्त्र की प्रशंसा | १२ |
| **राशि प्रभेद प्रकरण** | |
| १२ राशियों के नाम | १३ |
| शरीरांगविधान | ,, |
| कालपुरुषांगविभाग | ,, |
| अंग विभाग प्रयोजन | १५ |
| नक्षत्रचक्र में राशि विभाग | ,, |
| राशियों के पर्याय | १६ |
| सत्योक्त राशि स्वरूप | ,, |
| यवनोक्त ,, ,, | १७ |

| विषय | पृष्ठ सं० |
|---|---|
| राशियों की ग्राम्यादि संज्ञा | २० |
| ,, द्विपदादि संज्ञा | ,, |
| राशियों का दिशाबल | २२ |
| राशियों का दिन रात्रि सन्ध्याबल | २३ |
| राशियों की शीर्षोदयादि, उग्र, सौम्य, पुरुष, स्त्री, चरादि संज्ञा व दिगीशत्व का ज्ञान | २४ |
| षड्वर्ग व सप्तवर्ग ज्ञान | २६ |
| भवनाधिप के बिना फलादेश में कठिनाई का कथन | २९ |
| गर्गोक्त नवांश गणना | ३३ |
| द्वादशांश, द्रेष्काण, होरा त्रिंशांश का ज्ञान सारिणियों के साथ | ३० |
| वर्गोत्तम नवांश ज्ञान | ३७ |
| राशियों की ह्रस्वादि संज्ञा | ३८ |
| ग्रहों की उच्च राशियाँ तथा उच्चांश, नीच राशियाँ व नीचांश | ४० |
| अतिनीच प्रयोजन | ४२ |
| ग्रहों की मूल त्रिकोण राशि | ,, |
| अंशों के आधार पर सिंहादि राशियों में मूल त्रिकोणादि के अंशों का ज्ञान | ४३ |
| बलवान् राशि का लक्षण | ४६ |
| राशियों की प्लव संज्ञा | ,, |
| राशियों के वर्ण | ४७ |
| भावों की संज्ञा | ४८ |
| केन्द्र, उपचय संज्ञा | ४९ |
| भावों की अन्य संज्ञा | ५० |


Copyrighted material

| विषय | पृष्ठ सं० |
|---|---|
| **ग्रह योनि प्रकरण** | |
| ग्रहों के नामान्तर | ५२ |
| आत्मादि ग्रह | ५३ |
| राजादि ग्रह | ,, |
| ग्रहों के वर्ण, वर्ण स्वामी और दिशा स्वामी व प्रयोजन का ज्ञान | ५५ |
| ग्रहों के देवता, व क्रूर, सौम्यादि का संज्ञा का ज्ञान | ५७ |
| ग्रहों की विप्रादि व वर्णाधीश संज्ञा | ५८ |
| ग्रहों के वेदों का ज्ञान | ५९ |
| ग्रहों की पुरुष, स्त्री, नपुंसक व पञ्चतत्त्वादि संज्ञा का ज्ञान | ६० |
| प्रयोजन के साथ सत्वादि संज्ञा | ६१ |
| ग्रहों के स्वरूप | ६३ |
| ग्रहों की अवस्था के वर्ष | ६४ |
| ग्रहों के वस्त्र व धातु | ६५ |
| ग्रहों के रस | ६६ |
| सप्रयोजन अयनादि स्वामी ग्रह ज्ञान | ६७ |
| ग्रहों की दृष्टि का ज्ञान | ६८ |
| नैसर्गिक मित्रादि ज्ञान | ७० |
| यवनोक्त नैसर्गिकमित्रादि | ७३ |
| तात्कालिकमित्रादि | ७५ |
| पञ्चधा मैत्री | ,, |
| षड्बल ज्ञान | ७८ |
| विजयी ग्रह का लक्षण | ८० |
| अयन, द्रेष्काण, दिनरात्रि त्रिभाग, नैसर्गिक, बल का ज्ञान | ८१ |
| दीप्तादि अवस्था गुणाकर के वाक्यों के फल के साथ | ८४ |
| बली ग्रहों के संक्षेप में फल | ८५ |
| **वृद्धयवनोक्त आधान प्रकरण** | |
| गर्भाधान समय, सुरत विधि, संभोग, गर्भ स्थिति चेष्टादि, ज्ञान | ८६ |
| १० मासों के अधिप ग्रह, प्रतिमास में गर्भ के स्वरूप और गर्भवती की इच्छा का ज्ञान | ८७ |
| प्रश्न वा आधान लग्न से स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि ज्ञान | ८९ |
| गर्भस्थ अधिक सन्तान ज्ञान | ९२ |
| **बृद्धयवनोक्त जन्म प्रकरण** | |
| औरस सन्तान वा परजात सन्तति ज्ञान | ९३ |
| पिता की अनुपस्थिति में, जन्म के समय दरवाजे, दीपक, बत्ती, तेल, शय्या का ज्ञान | ,, |
| वन, मनुष्य रहित मार्ग में जन्म ज्ञान | ९५ |
| नालवेष्टित जन्म, तिलादि चिह्न, अङ्गहीन, अधिकाङ्ग योग | ,, |
| जन्म के समय में घर का व वृद्ध यवनोक्त आयु ज्ञान | ९६ |
| रश्मि ज्ञान | ९८ |
| प्राणियों की परमायु | ९९ |
| मरण कारक योग | १०० |
| **आधान प्रकरण** | |
| गर्भाधान के योग्य रजोदर्शन समय | १०१ |
| गर्भाधान में अक्षम मासिक धर्म योग, बादरायणोक्त गर्भाधान के उपयुक्त मासिक धर्म समय | १०२ |
| स्त्री राशि से संभोग पुरुष ज्ञान | ,, |
| संभोग स्थिति का ज्ञान | १०३ |
| शुक जातकोक्त गर्भप्रदयोग | १०५ |
| सारावलीस्थ गर्भसंभवासंभव, गर्भस्थ जीव का गुणदोष ज्ञान | ,, |
| गर्गोक्त गर्भ संभवासंभव योग व शुकाचार्योक्त गर्भ संभवासंभव योग | १०६ |


Copyrighted material

| विषय | पृष्ठ सं० |
|---|---|
| मीनराज जातकोक्त विशेष योग | १०८ |
| पिता मातादि संज्ञक ग्रह व उनका शुभाशुभ | ,, |
| गर्भ पतनापतन योग | १०९ |
| सगर्भामरण योग | ११० |
| गर्भ वृद्धि व पुष्टिकारक, प्रतिमास में अवयव उत्पत्ति, गर्भाधिप | ११२ |
| पराशरोक्त मासों के विषय में विशेष बात | ११४ |
| पुरुष, कन्या, नपुंसक जन्म योग | ११६ |
| यमल योग व पुरुष जन्म योग | ,, |
| सारावलीस्थ नपुंसक योग | ११८ |
| गर्भस्थ दो तीन आदि जीव जन्म योग | ११९ |
| गर्भाधान वा प्रश्न लग्न से प्रसव मास व चन्द्रमा का ज्ञान | १२१ |
| दिन या रात्रि में जन्म | १२२ |
| समुद्रजातकोक्त जन्म मास ज्ञान | १२५ |
| सारावलीस्थ जन्मान्ध, वामन, दक्षिण नेत्र विनाश योग | १२६ |
| मूक योग | ,, |
| जड, द्विगुणित हाथ, पैर का योग | १२७ |
| वामन व कुब्ज योग, पंगु, विना मस्तक, हाथ व पैर होने का योग | ,, |
| **जन्म प्रकरण** | |
| वृद्धयवनोक्त पिता के परोक्ष में जन्म | १२९ |
| सारावलीस्थ मस्तकादि से जन्म | १३१ |
| ,, प्रसव स्थान ज्ञान | १३३ |
| कष्टपूर्वक प्रसव, मातृ कष्ट दायक, माता से त्यक्त बालक जन्म योग | १३६ |
| माता से त्यक्त बालक के मरण योग | १३७ |
| नालवेष्टित, सर्पवेष्टित जन्म योग | १३८ |
| जारजात योग | १३९ |
| सूर्य द्वादशांश से दीपक की दिशा व अभाव का ज्ञान | १४१ |
| गुणाकरोक्त सूतिका के घर के स्वरूप का व दरवाजे का ज्ञान | १४३ |
| वृद्धयवनोक्त घर का स्वरूप | १४४ |
| सूतिका घर में किस भाग में चारपाई की सत्ता तथा खटिया की स्थिति का ज्ञान | १४७ |
| अन्तरिक्ष वा भूमि में जन्म ज्ञान | १५० |
| उपसूतिका ज्ञान | १५३ |
| सदा छींक आने का, नाल, लहसुन से चिन्हित, षडङ्गुलात्मक योग | १५४ |
| पिता माता के शुभाशुभ का ज्ञान | १५५ |
| **दूसरा अध्याय** | |
| अशुभ अभुक्तमूल का लक्षण | १५६ |
| अभुक्तमूलोत्पन्न का त्याग वा शान्ति | १५८ |
| मूल, श्लेषा के चरणों में जन्म का फल | १५९ |
| त्रिविध गण्डान्त ज्ञान | १६० |
| जयार्णवग्रन्थ के आधार पर मूलवृक्ष व मूलपुरुषाऽङ्गन्यास, जातकाभरणोक्त कन्याकार मूल विचार | १६२ |
| **शान्ति प्रकरण** | |
| मूल शान्ति विधि | १६९ |
| श्लेषा शान्ति विधि | १८३ |
| त्रिविध गण्ड शान्ति विधि | १८६ |
| ज्जेष्ठा शान्ति विधि | १८९ |
| दुष्टयोग शान्ति विधि | १९२ |
| वैधृति व्यतीपात संक्रान्ति शान्ति विधि | १९३ |


Copyrighted material

| विषय | पृ० सं० |
|---|---|
| कुहू, सिनीवाली, दर्श शान्ति विधि | १९५ |
| कृष्णचतुर्दशीजनन ,, | १९८ |
| एकननक्षत्रजनन ,, | १९९ |
| त्रीतर ,, | २०१ |
| प्रसवविकार ,, | २०२ |
| सूर्य चन्द्रग्रहण समयजनन ,, | २०३ |
| ज्योतिषार्कोक्त होटाचक्र ज्ञान | २०५ |
| जातकाभरणोक्त जन्मपत्री लेखनक्रम | २०८ |
| आशीर्वाद श्लोकों के अनन्तर जन्मपत्री में लिखने की बात विविध ग्रन्थों के आधर पर काल की परिभाषा | २१२ |
| जन्मपत्री लेखन क्रम | २१५ |
| जातकाभरणोक्त कुण्डली स्वरूप दृग्गणितैक्यता का उपयोग | २१६ |
| **संवत्सरादि फल** | |
| प्रभवादि संवत्सर प्रवृत्ति ज्ञान | २१९ |
| यवन जातकोक्त प्रभवादि संवत्सरफल | २२० |
| बारह युगों के फल | २३२ |
| अयन फल | २३४ |
| ऋतु फल | २३६ |
| मासों के फल | २३८ |
| पक्ष, तिक्षि, नक्षत्र, नक्षत्र-चरण, योग, करण, वर्ण, वर्ग, योनि, गण, दिन-रात्रि में जन्म होने का फल | २४१ |
| **षड्वर्ग फल** | |
| लग्नानयन प्रकार | २७३ |
| लग्न षड्वर्ग फल, द्वादश लग्न फल | २७४ |
| होरा फल | २८१ |
| द्रेष्काण फल | २८२ |
| नवांश फल | २८४ |
| द्वादशांश फल | २८८ |

| विषय | पृष्ठ सं० |
|---|---|
| त्रिंशांशफल | २८९ |
| जातकाभरणोक्त डिम्भचक्र | २९० |
| **तीसरा अध्याय** | |
| भावस्पष्ट की फलादेश में उपयोगिता | २९४ |
| बारह भावों में सूर्य का फल | २९७ |
| ,, ,, ,, चन्द्रमा का ,, | २९९ |
| ,, ,, ,, भौम का ,, | ३०१ |
| ,, ,, ,, बुध का ,, | ३०३ |
| ,, ,, ,, गुरु का ,, | ३०६ |
| ,, ,, ,, शुक्र का ,, | ३०८ |
| ,, ,, ,, शनि का ,, | ३१० |
| ,, ,, ,, जा. र. राहु का ,, | ३१२ |
| ,, ,, ,, च. चि. केतु का ,, | ३१४ |
| हिल्लाजोक्त सावधि भाव फल | ३१७ |
| ग्रह चेष्टा का प्रधानत्व कथन | ३२१ |
| अद्भुतसागरोक्त लज्जितादि अवस्था का ज्ञान | ३२२ |
| शयनादि अवस्था ज्ञान | ३२४ |
| सप्तम भाव में अवस्था विशेष का फल | ३२६ |
| पञ्चम भाव में ,, ,, ,, | ३२७ |
| अष्टम भाव में ,, ,, ,, ,, | |
| दशम भाव में ,, ,, ,, | ३२८ |
| शयनादि अवस्थाओं में सूर्य का फल | ३२९ |
| ,, ,, चन्द्रमा का फल | ३३१ |
| ,, ,, भौम का फल | ३३५ |
| ,, ,, बुध का फल | ३४० |
| ,, ,, गुरु का फल | ३४३ |
| ,, ,, शुक्र का फल | ३४६ |
| ,, ,, शनि का फल | ३५० |
| ,, ,, राहु का फल | ३५४ |
| **ग्रहों की दृष्टि के फल** | |
| १२ राशिस्थ सूर्य पर ग्रहों की दृष्टि के फल | ३५८ |


Copyrighted material

| विषय | पृष्ठ सं० |
|---|---|
| १२ राशिस्थ चन्द्रमा का व चन्द्र मपर ग्रहों की दृष्टि के फल | ३६५ |
| १२ राशियों के नवांश में ग्रहों की दृष्टि के फल | ३८३ |
| १२ राशिस्थ भौम पर ग्रहों की दृष्टि के फल | ३७९ |
| ,, ,, बुध पर ,, ,, | ३९५ |
| ,, ,, गुरु पर ,, ,, | ४०२ |
| ,, ,, शुक्र पर ,, ,, | ४०९ |
| ,, ,, शनि पर ,, ,, | ४१६ |
| **चौथा अध्याय** | |
| १२ राशिस्थ सूर्य का फल | ४२४ |
| सूर्यस्थ षड्वर्ग का फल | ४२६ |
| मित्रादि बल से युक्त सूर्य का फल | ४३० |
| ,, ,, हीन ,, | ४३२ |
| १२ राशिस्थ चन्द्रमा का फल | ४३४ |
| चन्द्रस्थ द्रेष्काणादि का फल | ४३७ |
| मित्रादि बल से युक्त चन्द्रमा का फल | ४४१ |
| ,, ,, हीन ,, ,, | ४४३ |
| १२ राशिस्थ भौम का फल | ४४५ |
| भौमस्थ षड्वर्ग का फल | ४४७ |
| मित्रादि बल से युक्त भौम का फल | ४५२ |
| ,, ,, हीन ,, ,, | ४५४ |
| १२ राशिस्थ बुध का फल | ४५६ |
| बुधस्थ षड्वर्ग का फल | ४५९ |
| मित्रादि बल से युक्त बुध का फल | ४६३ |
| ,, ,, हीन बुध का फल | ४६५ |
| १२ राशिस्थ गुरु का फल | ४६८ |
| जीवस्थ षड्वर्ग का फल | ४७० |
| मित्रादि बल से युक्त गुरु का फल | ४७४ |
| ,, ,, हीन गुरु का फल | ४७६ |
| १२ राशिस्थ शुक्र का फल | ४७९ |
| शुक्रस्थ षड्वर्ग का फल | ४८१ |
| मित्रादि बल से युक्त शुक्र का फल | ४८५ |
| ,, ,, हीन शुक्र का फल | ४८७ |
| १२ राशिस्थ शनि का फल | ४९० |
| शनिस्थ षड्वर्ग का फल | ४९२ |
| मित्रादि बल से युक्त शनि का फल | ४९६ |
| ,, ,, हीन शनि का फल | ४९८ |
| सारावलीस्थ उच्च, मूल त्रिकोण, स्वराशि, शत्रुराशि मित्र-राशि, स्वहोरादि बल से युक्त ग्रहों का फल | ५०१ |
| **पाँचवाँ अध्याय** | |
| अनेक अरिष्ट और आयु योग | ५१७ |
| अरिष्टभङ्ग योग | ५५५ |
| विविध राजयोग | ५६३ |
| पञ्चमहापुरुष योग लक्षण | ६२१ |
| सत्वादि के प्रधान लक्षण | ६२२ |
| छाया फल | ६२५ |
| वातादि प्रकृति के फल | ६२६ |
| पञ्चमहापुरुष योग फल | ६२८ |
| राजयोग भङ्ग | ६३१ |
| रश्मि आनयन व उनके फल | ६३५ |


Copyrighted material

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीहनुमते नमः ॥

**मङ्गलाचरण—**

होरापाथोनिधेः पारं दुष्पारं तर्त्तुमिच्छतः ॥
महागणपतेः शुण्डोऽवलम्बाय प्रजायताम् ॥१॥

**टीकाकर्तुः मङ्गलाचरणम्—**

श्रीभास्यं गिरिजास्याम्बुजन्यहास्यकरं वरम् ।
विघ्नध्वान्तहरं वन्देऽद्भुतं कमपि भास्करम् ॥१॥
नित्यं सङ्कटनाशिनीमभयदां श्रीसङ्कटामीश्वरीं
भूतेशं भुवि पूजितं सुरवरैः श्रीशङ्करं शङ्करम् ।
बालं गोपमहीपतेर्हि विपदां कालं तमालद्युतिं
वन्दे वीरधुरन्धरं धरणिजाशोकापहं मारुतिम् ॥२॥
निखिलं हि यस्य पुरो जगच्चणकं यथैव प्रकाशते,
श्रीभारती वदने सदा सदने रमा च विभासते ।
स्वयमेव येन कृता करे कुशलवसुता जनहारिणं
सद्गुरुमहो प्रणमामि तमहं श्रीमदवधबिहारिणम् ॥३॥
वन्दे तं जनकं निजं प्रतिदिशं शिष्या यदीया बुधाः,
शुभ्रं यस्य यशःपरागममितं विस्तारयन्तः सदा ।
स्वर्गस्थान्यपि चाहसन्ति सततं कल्पप्रसूनान्यहो,
श्रीमद्भागवतैककोविदवरं श्रीकेशवं श्रद्धया ॥४॥
देव्याः श्रीसङ्कटाख्यायाः प्रसादसदृशं वरम् ।
श्रीसङ्कटाप्रसादं वै गुरुं वन्दे यशस्करम् ॥५॥
श्रीकान्तिमत्केशवदेवसूनुः काशीप्रवासी बुधकिंकरोऽलम् ।
श्रीसङ्कटापादप्रसादप्रीतो नित्यं विनीतो मुरलीधरोऽहम् ॥६॥
श्रीमता बलभद्रेण ज्योतिश्शास्त्रमहोदधिम् ।
निःसारितं विनिर्मथ्य होरारत्नं यदुज्वलम् ॥७॥
कालध्वान्तनिमग्नस्य तस्यैवार्थप्रकाशिकाम् ।
करोमीन्दुमतीं व्याख्यां विद्वच्छात्रोपकारिकाम् ॥८॥
श्रीमुरलीधरकृपया व्याख्या मुरलीधरेणैषा ।
कृत्वा समर्प्यते श्रीमुरलीधरपादकमलेषु ॥९॥

अधिक कठिनाई से पार करने योग्य होराशास्त्ररूपी समुद्र को पार करने की इच्छा करने वाले व्यक्ति के लिये श्रीमहागणपति जी को सूँड़ सहारा हो ॥१॥

ग्रन्थकार के वंश का ज्ञान

अस्ति श्रीमत्कान्यकुब्जाभिधानं सद्विप्राणां संभवो यन्निदानम् ।
तत्रैवाभूत् श्रीभरद्वाजवंशे श्रीमल्लालः कीर्तिविद्याविलासः ॥२॥
तदात्मजोऽभूत् कृतिदेविदासो विद्यारसाकीर्तिसुखैकवासः ।
तत्पद्धतौ श्रीपतिनिर्मितायां व्यक्ते च टीकामकरोद्विचित्राम् ॥३॥

Copyrighted material

सज्जन ब्राह्मणों का उद्भव केन्द्र, लक्ष्मी से युक्त कन्नौज नाम का नगर है। इसी कन्नौज नगर में भरद्वाज ऋषि के वंश में यश व विद्या से संयुत श्रीलाल का जन्म हुआ था। श्रीलाल के विद्या-भूमि-कीर्ति-सुख से युक्त याज्ञिक देविदास पुत्र हुए। श्रीदेविदासजो ने आचार्य श्रीपति द्वारा निर्मित पद्धति की व व्यक्तगणित (लीलावती) की विचित्र टीका की थी ॥२-३॥

तस्माल्लघुर्ज्योतिषशास्त्रविज्ञः श्रीखेमकर्णः[1] समभूद् विधिज्ञः।
नारायणोऽभूच्च ततः कनिष्ठः सूर्याधिकोक्तौ सुतरां प्रविष्टः ॥४॥
ततोऽभवन्मिश्रचतुर्भुजाख्यः सतर्कवेदान्तविदग्रगण्यः।
समस्तभूमीपतिलब्धमानः श्रीरामभक्तौ विहितैकतानः ॥५॥
ततोऽभवद्भूपसभास्वजेयः[2] कृती च दामोदरनामधेयः।
श्रीभास्करोक्तावकरोन्मनोज्ञां[3] टीकामपूर्वां बुधवृन्दयोग्याम् ॥६॥

श्री देविदास से छोटे भाई ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता व विधि वेत्ता श्री खेमकर्ण नामक हुए। श्री खेमकर्ण से लघु नारायण नामक हुए। ये नारायण सूर्य सिद्धान्त में अधिक प्रविष्ट थे, अर्थात् सूर्य सिद्धान्त के मर्मज्ञ हुए। इन से छोटे भाई न्याय व वेदान्तवेत्ताओं में अग्रगण्य अर्थात् श्रेष्ठ एवं समस्त राजाओं से सम्मान प्राप्त करने वाले श्रीरामचन्द्रजी के परम भक्त तथा उन्हीं के एकाग्रचित्त वाले श्री चतुर्भुज मिश्र जी हुए। श्रीचतुर्भुज से छोटे भाई राजाओं की सभा में विजयी श्री दामोदर जी हुए। श्री दामोदर ने श्री भास्कराचार्य जी के सिद्धान्तशिरोमणि की विद्वत्समाज के पढ़ने योग्य, मन को हरने वाल अ र्व टीका की थी ॥४-६॥

ग्रन्थकार का परिचय—

दामोदरस्य पुत्रौ जातौ बलभद्रहरिरामौ।
बलभद्रेण कृतं प्राक् सवासनं टिप्पणञ्च मकरन्दे ॥७॥
ततष्टिप्पणं भास्करीये च बीजे कृतं ताजिके वर्षरत्नं त्वपूर्वम्।
निबन्धं गुरोः पादपद्मप्रसादात् सतो जातके सन्निबन्धं करोमि ॥८॥

ग्रन्थारम्भ प्रयोजन—

यद्यपि कृता निबन्धाः सुविस्तरां जातके पूर्वैः।
विद्वन् ततो विशेषो मयोदितो बुद्धिपूर्वकं वीक्ष्य ॥९॥

श्रीदामोदर के बलभद्र व हरिराम नामक दो पुत्र हुए। बलभद्र ने प्रथम वासना के सहित मकरन्द ग्रन्थ पर टिप्पणी लिखी। इसके अनन्तर भास्करीय बीजगणित पर टिप्पणी की तथा ताजिक शास्त्र में अपूर्व हायनरत्न नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। जातक ग्रन्थों के होने पर भी गुरु जी की चरणकमल कृपा से मैं सुन्दर निबन्ध रूप जातक ग्रन्थ की रचना करता हूँ ॥७–८॥

यद्यपि पूर्वाचार्यों ने जातक शास्त्र में विस्तार पूर्वक निबन्ध ग्रन्थों का निर्माण किया

१. क्षेमकर्ण यह उचित प्रतीत होता है। २. समा यह अपपाठ है। ३. भास्करोक्तौ यह असाधु पाठ है।

Copyrighted material

है तथापि मैंने बुद्धिपूर्वक विचार करके उन कथित निबन्ध ग्रन्थों को देखकर उनसे विशेष इस ग्रन्थ में कहा है ॥९॥

ग्रन्थ का नाम व ग्रन्थारम्भ

नत्वा दामोदरं तातं गुरुं श्रीरामसंज्ञकम् ।
होरारत्नं वितनुते बलभद्रः सतां मुदे ॥१०॥

सज्जन विद्वानों के प्रसन्नतार्थ श्री बलभद्र नामक ग्रन्थकार अपने पिता दामोदर व गुरु श्रीराम को नमस्कार करके होरारत्न नामक ग्रन्थ का निर्माण करता है ॥१०॥

ननु सम्बन्धादिचतुष्टयकथनं विना कथं प्रवृत्तिः ।

प्रश्न होता है कि सम्बन्धादि चतुष्टय (सम्बन्ध, प्रयोजन, विषय, ग्रन्थाधिकारी) के बिना कहे कैसे ग्रन्थ लिखने की प्रवृत्ति हुई ।

उक्तञ्च—कहा है ।

सिद्धिः श्रोतृप्रवक्तृणां सम्बन्धकथनाद्यतः ।
तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु सम्बन्धः पूर्वमुच्यते ॥११॥
किमेवात्राभिधेयः स्यादिति पृष्टस्तु केनचित् ।
यावत्प्रयोजनं नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ॥१२॥

श्रोता व वक्ता के सम्बन्ध कथन से अर्थात् सुनने व कहने में क्या सम्बन्ध है इसको कहने से सिद्धि अर्थात् फल प्राप्ति होती है । इसलिये समस्त शास्त्रों में प्रथम सम्बन्ध कहा जाता है । यहाँ पर क्या कथन है ऐसा किसी के पूछने पर जब तक प्रयोजन का कथन नहीं होता तब तक उससे कुछ भी ग्रहण नहीं किया जा सकता है ॥११-१२॥

इत्युच्यते—इस प्रश्न का ग्रन्थकार उत्तर देते हैं ।

होरा लक्षण ज्ञान

पितामह-नारद-वसिष्ठ-कश्यपादिमुनिर्मितं ज्योतिश्शास्त्रैकस्कन्धरूपं जन्म-नानाविधफलादेशफलकं वेदचक्षूरूपं द्विजानामध्ययनीयं शास्त्रं होराशब्दवाच्यम् ।

पितामह-नारद-वसिष्ठ-कश्यपादि ऋषियों द्वारा निर्मित ज्योतिष शास्त्र का एक स्कन्धरूप जन्माङ्ग के अनेक प्रकार के फलों से युक्त वेद का नेत्र स्वरूप व ब्राह्मणों के पढ़ने योग्य शास्त्र होरा शब्द से कहा जाता है ॥

उक्तञ्च नारदेन—
नारद मुनि ने कहा है—

[1]सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।
वेदस्य निर्मलं चक्षुर्ज्योतिश्शास्त्रमकल्मषम् ॥१३॥
विनैतदखिलं श्रौतस्मार्तं कर्म न सिद्ध्यति ।
तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा ॥१४॥
अत एव द्विजैरेतदध्येतव्यं प्रयत्नतः । इति ।

सिद्धान्त-संहिता-होरा इन तीन स्कन्धों से युक्त वेद का निर्मल नेत्र स्वरूप पाप रहित ज्योतिष शास्त्र है । इस ज्योतिष शास्त्र के बिना श्रुति-स्मृति जन्य कार्यों की सिद्धि

१. मु० चिं० शुभा. प्र० २ श्लो० पू० टी० में है ।

Copyrighted material

नहीं होती है। इस कारण से पहिले संसार के कल्याणार्थ ब्रह्माजी ने ज्योतिष शास्त्र का निर्माण किया। इसलिये ब्राह्मणों को इसका प्रयत्नपूर्वक अध्ययन (पढ़ना) करना चाहिये ॥१३-१४॥

ज्योतिषशास्त्राध्ययनानधिकारी का ज्ञान—

शूद्रपाठे दोषमाह गर्गः—

[1]स्नेहाल्लोभाच्च मोहाच्च यो विप्रोऽज्ञानतोऽपि वा।
शूद्राणामुपदेशञ्च दद्यात् स नरकं व्रजेत् ॥१५॥
ज्योतिश्शास्त्रन्तु शूद्रेण यदुक्तं यस्य सर्वदा।
न ग्राह्यं वचनं तस्य शुनोच्छिष्टं हविर्यथा ॥१६॥ इति।

शूद्र को पढ़ाने में दोष का कथन गर्गाचार्य ने ऐसा किया है—

जो ब्राह्मण प्रेमवश वा लोभ (लालच) के कारण अथवा मोहवश वा अज्ञानता से भी इस ज्योतिष शास्त्र का शूद्रों को उपदेश देता (पढ़ाता) है वह नरकगामी होता है। शूद्र ने जिसके लिये ज्योतिष शास्त्र का उपदेश किया है उसका सर्वदा वचन ग्राह्य नहीं होता है, जैसे कुत्ते का जूठन (उच्छिष्ट) हवि अर्थात् हवनीय पदार्थ त्याज्य होता है ॥१५-१६॥

विषय व सम्बन्ध का ज्ञान—

अत्र राशिप्रभेद-ग्रहयोनिभेद-वियोनिजन्म-निषेक-जन्मादिकाः पदार्थाः प्रतिपाद्यत्वे विषयभूताः। एषां पदार्थानां जातकग्रन्थस्य प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावः सम्बन्धः।

इस ग्रन्थ में प्रतिपादन के विषय स्वरूप राशि भेद-ग्रहयोनिभेद-वियोनिभेद (मनुष्येतर योनि ज्ञान) आधान योग व जननादि योग ज्ञान ये पदार्थ हैं। इन पदार्थों का जातक ग्रन्थ के साथ प्रतिपाद्य-प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है।

उक्तञ्च कश्यपेन—

राशिभेदो खेटयोनिवियोनिजन्मलक्षणम्।
निषेक-जननं पुंसामरिष्टे भङ्गलक्षणम् ॥१७॥
आयुर्दायो दशाभेदो ज्ञेया चान्तर्दशा तथा।
अष्टवर्गैः कर्मजीवौ राजयोगाश्च नाभसाः ॥१८॥
चान्द्रयोगा द्विग्रहाद्याः प्रव्रज्यायोग संभवाः।
राशिशीलं दृष्टिफलं ग्रहभावफलं ततः ॥१९॥
आश्रयाख्याश्च ये योगा योगाःसंकीर्णसंभवाः।
स्त्रीजातकं नष्टयोगं निर्याणं नष्टजातकम् ॥२०॥
द्रेष्काणादिफलं सर्वं होरास्कन्धस्य संभवः। इति।

मुनि कश्यपजी ने कहा है—

राशिभेद-ग्रहयोनि-मनुष्येतरजन्मलक्षण-गर्भाधान-जन्म-बालारिष्ट-अरिष्टभङ्ग-आयुर्दाय-

१. मु० चिं० शु० प्र० २ श्लो० पी० टी०।

Copyrighted material

दशा व अन्तर्दशाभेद-अष्टकवर्ग-कर्मजीव-राजयोग-नाभसयोग-चान्द्रयोग दो-तीन-चार-ग्रहयोगादि-प्रव्रज्यायोग-राशिशील-दृष्टिफल-ग्रहभावफल-आश्रययोग-स्त्रीजातक-नष्टयोग - निर्याण-नष्टजातक-द्रेष्काणादि समस्त फल का ज्ञान होरा स्कन्ध से हो सकता है ॥१७-२०॥

अत्र आदिपदाद् वर्ष-मास-दिन-नक्षत्रादिफलानि ज्ञेयानि ॥

यहाँ अर्थात् द्रेष्काणादि में आदि पद से वर्ष-मास-दिन-नक्षत्रादिक फल समझना चाहिये।

अधिकारी का ज्ञान--

अत्र शास्त्रे अधिकारी ब्राह्मण एव।

उक्तञ्च वसिष्ठेन—

[1]अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिश्शास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम्।
एतद्बुध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थं धर्मं मोक्षमग्र्यं यशश्च ॥२१॥
॥इति॥

इस ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन व उपदेश का अधिकारी ब्राह्मण ही है।

वसिष्ठ ऋषि ने कहा है कि इस पुण्य व रहस्यात्मक (गुप्त) ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन ब्राह्मण को ही करना चाहिये। चूँकि इसको अच्छी तरह से जानकर ब्राह्मण धन-धर्म-मोक्ष (सायुज्य) और अग्रगण्य यश को प्राप्त करता है ॥२१॥

ब्राह्मण निर्णय ज्ञान--

ब्राह्मणेष्वपि परोक्षिताय देयमित्युक्तमरुणं प्रति सूर्येण—

जितेन्द्रियाय विदुषे चिरकालनिवासिने।
आत्मज्ञानविदे सूत ! प्रकाश्यं शास्त्रमुत्तमम् ॥२२॥

ब्राह्मणों में भी जिसका परीक्षण कर लिया हो उसी ब्राह्मण को इस ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान देना चाहिये ऐसा श्री सूर्य ने अरुण के प्रति कहा है। हे सूत जितेन्द्रिय, विद्वान्, अधिक समय तक समीप में रहने वाले एवं आत्मज्ञानी ब्राह्मण को इस उत्तम ज्योतिष शास्त्र का प्रकाश करना चाहिये ॥२२॥

अनधिकारी का ज्ञान—

अनधिकारिणमाह—

तदेतज्ज्योतिषं शास्त्रं मया ज्ञानधिया तव।
प्रकाश्यते न प्रकाश्यं होराज्ञानं यथा तथा ॥२३॥
असूयकायानृजवे ज्योतिर्विद्द्वेषिणे ततः।
अचिरावासिने दुष्टचेतसे दुर्जनाय च ॥२४॥ इति।

अब इस ज्योतिष शास्त्र के अध्ययनादि का अधिकारी कौन नहीं है। इसका वर्णन ग्रन्थकार करता है।

मैंने ज्ञान बुद्धि से तेरे लिये इस ज्योतिष शास्त्र का कथन किया है किन्तु वैसे होरा ज्ञान का प्रकाशन जैसे व्यक्तियों से नहीं करना चाहिये उनको मैं कहता हूँ। ईर्ष्या

१. मु० चिं० पी० टी में है।

Copyrighted material

करने वाले व कुटिल, ज्योतिषियों से द्रोह करने वाले, अल्प समय तक रहने वाले, दुष्टात्मा और दुर्जन के लिये शास्त्र को नहीं कहना चाहिये ॥२३-२४॥

कल्याण वर्मा द्वारा कथित होरा शब्द की व्युत्पत्ति का ज्ञान—

होरा शब्दस्योत्पत्तिमाह-कल्याणवर्मा—

[1]आद्यन्तवर्णलोपाद्, होराशास्त्रं भवत्यहोरात्रात् ।
तत्प्रतिबद्धश्चायं ग्रहभगणश्चिन्त्यते यस्मात् ॥२५॥
होरेति शास्त्रसंज्ञा लग्नस्य तथार्द्धराशेश्च । इति

अयमर्थः । होराशब्देन प्रागपरवर्णलोपादहोरात्रमेवोच्यते । तत्प्रधानकः स्कन्धः होरास्कन्धः । अत्राहोरात्रप्राधान्यं कथमिति चेदित्थम् । इह मेषादि द्वादशलग्नवशेन फलानि वक्तव्यानि तानि च लग्नानि कालवश्यानि । स च काल अहोरात्र इति युक्तमहोरात्रस्य मुख्यत्वम् ।

आचार्य कल्याण वर्मा ने होरा शब्द की उत्पत्ति (व्युत्पत्ति) निम्न प्रकार से अपने सारावली नामक ग्रन्थ में की है । यथा—होरा शब्द से अहोरात्र ही कहा जाता है क्योंकि अहोरात्र शब्द के आदि के अ और अन्त के त्र अक्षर का लोप करने से होरा शब्द बचता है, अर्थात् अहोरात्र शब्द से होरा शब्द निष्पन्न होता है । उसी अहोरात्र में बँधे हुए ग्रह व राशियों की शुभाशुभता का विचार होरा शास्त्र से किया जाता है । होरा यह शास्त्र की संज्ञा वा लग्न की वा राशि के अर्द्धभाग को कहते हैं ॥२५॥

बृहत्पाराशर में कहा है—

'अहोरात्रस्य पूर्वान्त्यलोपाद् होराऽवशिष्यते (४ अ० १ श्लो०)

वृ० जा० में भी—

'होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वांछन्ति पूर्वापरवर्णलोपात्' (१ अ० ३ श्लो०)

इसका आशय है कि होरा शब्द के आदि के अ, व अन्त के त्र अक्षर का लोप हो जाने से अहोरात्र का ही कथन होता है । अहोरात्र की प्रधानता से युक्त स्कन्ध, होरा स्कन्ध होता है । यहाँ होरा शास्त्र में अहोरात्र की प्रधानता कैसे है इसका उत्तर यह है—इस होराशास्त्र में मेषादि बारह लग्नों के आधार पर जातक के फलों का वर्णन होता है । वे बारह लग्न काल के अधीन हैं, और वह काल (समय) अहोरात्र (दिन, रात्रि) में होता है । इसलिये अहोरात्र की प्रधानता कथित है ॥२५॥

होरा शास्त्र की प्रशंसा का ज्ञान—

होराशास्त्रप्रशंसोक्ता जातकरत्नमालायाम्—

पाटी-कुट्टक बीजमन्दिरपदारूढोऽपि यो प्रौढधीः
सिद्धान्तोक्तसहस्रयुक्तिचटुलो नो वेत्त्यसत्सत्फले ।
होरातन्त्रमनन्तयुक्तिविहितं दैवज्ञवृन्दे तथा
राज्ञां सत्सदसि प्रगल्भगणको हास्यं परं गच्छति ॥२६॥

जो परम बुद्धिमान् पाटी-कुट्टक-बीजादि गणित का ज्ञाता व सिद्धान्त ग्रन्थोक्त हजारों युक्तियों का जानकार होकर भी, अनन्त युक्तियों से युक्त होराशास्त्र में कथित शुभ व

१. सारावली २ अ० २ श्लो० ।

Copyrighted material

अशुभ फल को नहीं जानता है वह प्रौढ़ ज्योतिषी भी ज्योतिषियों के समुदाय में एवं राजा की सभा में हास्य का पात्र होता है, ऐसा जातक रत्नमाला में कहा है ॥२६॥

होरा शास्त्र के प्रयोजन का ज्ञान—

होराशास्त्रप्रयोजनमुक्तं सारावल्याम्—

अर्थार्जने [1]सहायः पुरुषाणामापदर्णवे पोतः।
[2]यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः ॥२७॥

होराशास्त्र की आवश्यकता का वर्णन आचार्य कल्याण वर्मा ने इस प्रकार सारावली में किया है—मनुष्यों को धन अर्जित करने में यह होराशास्त्र सहायता करता है अर्थात् शुभ दशा का ज्ञान होने पर लाभ होता है। विपत्ति रूप समुद्र में नौका वा जहाज का कार्य करता है एवं यात्रा के समय में मन्त्री अर्थात् उत्तम सलाहकार होराशास्त्र को छोड़कर अन्य कोई नहीं हो सकता है ॥२७॥

नारदोऽपि—अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुणवर्णवत्

नारद ने भी कहा है कि जिनका जन्म समय ज्ञात नहीं है उनको फल की प्राप्ति घुणाक्षरन्यायसे जाती हो है।

अन्य प्रयोजन का ज्ञान

प्रयोजनोत्तरमाह वराहः

[3]यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पंक्तिः।
व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥२८॥

अन्य प्रयोजन का वर्णन आचार्य वराह मिहिर ने लघु जातक में इस प्रकार से किया है—जो शुभाशुभ पूर्व जन्म में प्राणी अर्जित करता है उस शुभाशुभ का ज्ञान होराशास्त्र से होता है। जैसे अन्धकार में रखी हुई वस्तुओं का ज्ञान दीपक से होता है ॥२८॥

अत्र व्यञ्जयतीत्यनेन तात्कालिकजन्मलग्नशुभस्थितिवशेन जन्मान्तरार्जित-शुभाशुभकर्मफलपाकं निरूपयतां ग्रहाणां फलसूचकतैव न तु जनकता, इति स्पष्ट प्रतीयते। अत एव प्राणिनां शुभाशुभफलस्य तत्तत्पुरुषार्जितनानाविधादृष्टजन्य-त्वाद् ग्रहाणां न शुभाशुभफलजनकत्वमिति निरस्तम्। तत्फलस्य तत्तत्पुरुषार्जि-तादृष्टजन्यत्वेऽपि ग्रहाणां फलसूचकत्वे बाधकाभावात्। एवं सम्यक् होराज्ञाने सति यस्य जन्मकुण्डलीतोऽरिष्टं यस्मिन् काले उपलभ्यते तदा तस्य जपपुरश्चर-णादिना निराकरणं कर्त्तव्यं तेन शुभम्। यदा तु शुभफलमुत्पद्यते तदार्थयात्रा-राज्याभिषेकादिकं विधेयमिति तात्पर्यम्।

यहाँ इस श्लोक में व्यञ्जयति इस पद से जन्म कालीन शुभाशुभस्थिति वश से जन्मान्तर में अर्जित शुभ व अशुभ कर्म फल प्राप्ति निरूपण करने वाले ग्रह, फल की सूचना मात्र ही देते हैं न कि जन्मकालीन ग्रह शुभ व अशुभ फल को उत्पन्न करते हैं, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इसलिये ही प्राणियों के शुभ व अशुभ फल का उन उन पुरुषों (व्यक्तियों) द्वारा अर्जित अनेक प्रकार के अदृष्ट उत्पन्न होने के कारण ग्रहों का

१. सहायं। २. २ अ० ५ श्लो०। ३. लघुजातक १ अ० ३ श्लो०।

Copyrighted material

शुभ और अशुभ फल को उत्पन्न करना यह निरस्त नहीं हुआ। यद्यपि उक्त शुभाशुभ फल का उन उन पुरुषों (व्यक्तियों) द्वारा अर्जित अदृष्ट को जन्यत्व प्राप्त होता है। तथापि ग्रहों को फल की सूचना देने में बाधा का अभाव है। इस प्रकार अच्छी रीति से होराशास्त्र का ज्ञान होने पर जिसकी कुण्डली से जिस समय में अरिष्ट की प्राप्ति हो तो उस समय में उस अरिष्ट का निराकरण (दूरी करण) जप पुरश्चरणादि से करना चाहिये। इस जप पुरश्चरणादि से अशुभ फल नष्ट होकर शुभ फल की प्राप्ति होती है। जिस समय में कुण्डली से शुभ फल प्राप्त हो तो उस समय में धनार्थ यात्रा व राजा का अभिषेक आदि करना चाहिये यह तात्पर्य है।

होरा ज्ञान की विफलता—

ननु प्राचीनसदसत्कर्मविपाकरूपस्यावश्यं भावित्वादेतज्ज्ञानफलं व्यर्थम्।

तथा च शौनकः—

येन तु यत्प्राप्तव्यं तस्य विधानं सुरेशसचिवोऽपि।
यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथा कर्त्तुम् ॥२९॥

अन्यत्राप्युक्तं—

यदभावि न तद् भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ॥३०॥
सा सा संपद्यते बुद्धिः सा मतिः सा च भावना।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥३१॥ इति ॥

यहाँ प्रश्न होता है कि प्राचीन अर्थात् पूर्व जन्म में अर्जित शुभ व अशुभ फल की प्राप्ति अवश्य होती है तो इस कारण से होराशास्त्र ज्ञान फल व्यर्थ है। ऐसा शौनक ऋषि ने कहा है।

जिस पुरुष (व्यक्ति) को जो लब्ध होने वाला होता है उसका विधान स्वयं बृहस्पति भी नहीं कर सकता। जो कि साक्षात् ब्रह्मा है वह भी लब्ध होने वाले पदार्थ को नष्ट करने में या उसके विपरीत करने में समर्थ नहीं होता है।

अन्य ग्रन्थ में भी कहा है—जो न होने वाला है, वह नहीं होता और जो होने वाला है वह टल नहीं सकता। करोड़ों श्लोकों से ग्रन्थों में जो कहा है मैं उसको आधे श्लोक से कहता हूँ। वैसी-वैसी बुद्धि उत्पन्न होती है उसी प्रकार की मति होती है वही भावना जागृत होती है तथा सहायक भी वैसे ही मिलते हैं जैसी भवितव्यता होती है ॥२९–३१॥

तथा च दैवस्य बलवत्त्वेन पुरुषकारो निरर्थक इति। अत्राहुः— केवलं दैववशत एव कर्मसिद्धयङ्गीकारे श्रुतिस्मृत्यावेदित 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' 'श्रीकामः पुष्टिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत्' इत्यादि विधानम्। तथा 'न कलञ्जं भक्षयेत्' 'न वृक्षमारोहयेत्' इत्यादि निषेधाश्च निरर्थकाः स्युः।

और भी यदि भवितव्यता बदलती नहीं है तो भाग्य की प्रधानता होने से पुरुषार्थ की व्यर्थता सिद्ध होती है। यहाँ पर कथन है कि यदि केवल भाग्य वश से ही कर्म (कार्य) की सिद्धि होती है ऐसा अङ्गीकार करने पर श्रुति-स्मृति प्रतिपादित ज्योतिष्टोम

Copyrighted material

से स्वर्ग की कामना होने पर यज्ञ, लक्ष्मी की वा पुष्टता की कामना होने पर ग्रह यज्ञ करना चाहिये ये विधि वाक्य व जहरीला मांस नहीं खाना चाहिये, वृक्ष पर नहीं चढ़ना चाहिये इत्यादि निषेध वाक्य व्यर्थ हो जायेंगे।

किञ्च यदि दैवमेव फलेत्तदा कृष्याद्युपायेषु प्रवृत्तिर्न स्यादिति।

केशवार्कः—

फलेद्यदि प्राक्तनमेव तत्किं कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः।
श्रुतिः स्मृतिश्चापि नृणां निषेधविध्यात्मके कर्मणि किं निषण्णा ॥३२॥ इति

अन्य भी यदि भाग्य ही फलीभूत होता है तो खेती के उपायों में प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये ऐसा केशवार्क ने कहा है—यदि पूर्वजन्मार्जित भाग्य ही फल देता है तो खेती के उपायों में अधिक उद्योग क्यों किया जाता है। तथा श्रुति व स्मृति भी मनुष्यों के निषेध व विधान में क्यों आसीन हैं। अर्थात् कर्त्तव्य का प्रतिपादन क्यों करती हैं ॥३२॥

पुरुषार्थ की प्रधानता का ज्ञान—

अपि वा जन्मान्तरार्जितदैवमपि पुरुषकारं विना न घटत इति पुरुषार्थकस्य मुख्यत्वम्।

तथा च वसन्तराजः—

पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रचक्षते।
उद्यमेन तदुपार्जितञ्च वै वांछितं फलति नैव केवलम् ॥३३॥ इति

याज्ञवल्क्योऽपि—

दैवे पुरुषकारे च कर्मसिद्धिर्व्यवस्थिता।
तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्वदैहिकम् ॥३४॥ इति ॥

तस्मात्प्रयत्नाभावे दैवमेव नास्तोत्यतः सिद्धं प्रयत्नस्य मुख्यत्वम्।

अथवा और भी पूर्व जन्म में उपार्जित भाग्य भी पुरुषार्थ (उद्योग) के बिना फल नहीं देता है। अतः उद्योग की प्रधानता होती है ऐसा वसन्तराज ने कहा है—

प्राचीनाचार्यों का कथन है कि पूर्व जन्म में किये गये कर्म को ही भाग्य कहा जाता है। उद्योग के द्वारा उपार्जित भाग्य ही अभीष्ट सिद्धि देने वाला होता है न कि केवल भाग्य अभीष्ट प्रद होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने भी कहा है—पुरुषार्थ व भाग्य में कार्यों की सिद्धि स्थित होती है। कार्य सिद्ध होने पर भाग्य तो स्पष्ट है किन्तु पुरुषार्थ भी वहाँ पूर्व जन्मार्जित रहता है। इस कारण से उद्योग के अभाव में भाग्य भी नहीं होता है। इसलिये उद्योग की प्रधानता सिद्ध हुई ॥३३-३४॥

भाग्य की प्रधानता का कथन—

अथ च— अवश्यं भाविभावानां प्रतीकारो भवेद् यदि।
तदा दुःखैर्न बाध्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥३५॥

तथा च— नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ इत्याद्युक्तं

दैवमुख्यत्वम्। कृतेऽपि यत्ने कार्यसिद्धेरनुपलम्भात्तस्य मुख्यत्वम्।

अब भाग्य की प्रधानता का वर्णन किया जाता है—यदि अवश्य होने वाले पदार्थों

Copyrighted material

का प्रतीकार होता तो राजा नल व श्रीरामचन्द्रजी एवं राजा युधिष्ठिर दुःखों से पीड़ित नहीं होते। और भी कहा है करोड़ों कल्प तक भी कृत शुभाशुभ क्षीण नहीं होता है। किया हुआ शुभ वा अशुभ कार्य अवश्य ही भोगना पड़ता है। इत्यादि कथन से भाग्य की प्रधानता सिद्ध होती है। उद्योग करने पर भी यदि कार्य की सिद्धि नहीं होती है तो वहाँ भाग्य की प्रधानता है अर्थात् दुर्भाग्य वश ही कार्य नहीं होता है ॥३५॥

तथा च ज्योतिष स्मृत्यावेदितजातकादिफलनिरूपणस्य वैयर्थ्यं भासत इति चेन्नैवं कर्मणां हि वैचित्र्यं कानि चिद् दृढमूलानि कानिचिच्छिथिलमूलानि। तत्र च दृढमूलानि स्थिराख्यानि, अदृढमूलोत्पातसंज्ञकानि।

यदाह वृद्धयवनः—

यद्यद्विधानं नियतं प्रजानां ग्रहर्क्षयोगप्रभवं प्रसूतौ ॥३६॥
[1]भाग्यानि तानीत्यभिशब्दयन्ति वार्ता नियोगेति दशा नराणाम्।
तदर्थभिज्ञैर्द्विविधं निरुक्तं स्थिराख्यमौत्पातिकसंज्ञकञ्च।
कालक्रमाज्जातकनिश्चितं यत्कर्मोपसर्पिस्थिरमुच्यते तत् ॥३७॥
सप्तग्रहाणां प्रथितानि यानि[2] स्थानानि जन्म प्रभवानि[3] सद्भिः।
[4]तेभ्यः फलं चारग्रहाः क्रमस्था दद्युर्यदौत्पातिकसंज्ञितं तत् ॥३८॥इति॥

और भी यदि भाग्य की ही विशेषता है तो ज्योतिष व स्मृति प्रतिपादित जातकादि फल निरूपण की व्यर्थता प्रतीत होती है किन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि कर्मों की विशेष विचित्रता है कोई-कोई कर्म दृढ़ मूलक और कोई-कोई कर्म अदृढ़ मूलक होता है। वहाँ पर दृढ़मूलक कर्म स्थिर और अदृढ़ मूलक कर्म उत्पात संज्ञक होते हैं जिसका कथन प्राचीन यवनाचार्यों ने इस प्रकार किया है।

जन्म के समय प्राणियों के ग्रह-नक्षत्र योगादि से उत्पन्न निश्चित जो जो विधान हैं वे मनुष्यों की दशा वार्ता के नियोग में भाग्य शब्द से व्यवहृत होते हैं। भाग्य वेत्ताओं ने भाग्य का दो भागों में विभाजन किया है। एक स्थिर संज्ञक और दूसरा उत्पात संज्ञक भाग्य होता है। जो कि कर्मों द्वारा उपस्थित कालक्रम वश से जातक का शुभाशुभ फल निश्चित होता है वह स्थिर संज्ञक होता है। सात ग्रहों के जन्म के समय उत्पन्न जो विद्वानों द्वारा प्रशस्त स्थान उन स्थानों से क्रम पूर्वक ग्रह चार वश जो फल देते हैं वह उत्पात संज्ञक होता है ॥३६-३८॥

एवं यत्र जन्मपत्रशकुनप्रश्नादिभिर्दशाफलपाकक्रमेण संतानविद्याद्यभावो निर्णीतस्तत्र ग्रहशान्त्यादिरूपेण पूर्णप्रयत्नेनाऽपि संतानादि प्रतिबन्धकीभूतं दुरितं दृढमूलत्वान्निवारयितुं शक्यते।

यत्र ग्रहचारवशेन संतानयोगादिसंभवे आयुर्दायसंभवे राज्यादिसंभवे निर्णीते प्रतिबन्धकीभूतं दुरितं दृढमूलत्वान्निवारकग्रहसूचितफलसंभवस्तच्छिथिलमूलत्वेन स्वस्त्ययनादिनोत्पाद्यम्।

---

१. भोग्यानि यह मूल में पाठ है। २. तानि मू० पा० है। ३. कर्मप्रसवानि मू० पा० है। ४. बृ० जा० १अ० ३ श्लोक भट्टो०।

Copyrighted material

तदुक्तं—हन्यते दुर्बलं दैवं पौरुषेण विपश्चिता, इति ॥

इसी प्रकार जहाँ जन्मपत्र, शकुन, प्रश्न आदि से दशाफल के परिणाम स्वरूप सन्तान या विद्या आदि का अभाव निर्णीत हो चुका है वहाँ ग्रहशान्ति आदि रूप पूर्ण प्रयत्नों से भी सन्तान आदि को रोकनेवाले पाप, जिनकी जड़ जमी हुई हैं, वे भी निवृत्त किये जा सकते हैं।

जहाँ ग्रहों के संचारवश सन्तान योगादि संभव हैं, आयुर्दाय संभव है राज्यादि योग संभव है ऐसा कुण्डली आदि से निर्णय हो चुका है किन्तु उन योगों को रोकने वाले पाप इतने प्रबल हैं कि उन्हें होने नहीं देते वहाँ भी स्वस्त्ययनादि प्रयोगों से उनको जड़ को हिलाकर उन्हें शिथिल कर देना चाहिए, जैसा कि कहा है—विद्वान् व्यक्ति अपने पुरुषार्थ द्वारा दुर्बल भाग्य को परास्त कर देता है। अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा भाग्य बदला जा सकता है।

अन्यच्च। यद्यपि पूर्वोपार्जितसदसत्कर्मपरिपाकः शुभाशुभफलोपलब्धिदर्शनादेव ज्ञायते परमभीष्टकालो ज्ञातुं न शक्यते। तथा च भाग्यमग्रे खण्डितमखण्डितमित्यादिना ज्ञातार्थसमर्थस्ततस्तस्यैकशरणात्।

तथा हि दिनरात्रिविभागेन सूक्ष्मकालावयवसाधनोपायैर्यन्त्रतुर्यध्रुवभ्रमादिविचित्रयन्त्रोपलक्षितस्पष्टजन्मसमयोपात्तलग्नादिद्वादशभावचक्रे स्वोच्च-मूलत्रिकोण-स्वगृह-मित्रगृहवर्तिनां तथा शत्रुनीचगृहाश्रितानां ग्रहाणां सदसद्दशाक्रमेणाभीष्टसमयेऽपि सदसत्प्राक्कर्मपरिपाको गण्यते।

एवं शुभफलसूचकदशापाककाले क्रियमाणा यात्रा विनायासेन फलसाधिका अशुभफलसूचकदशापाककाले क्रियमाणा यात्रा हानिदेत्यतोऽवश्यं जातकगणनोपयोगः। किञ्च यत्र दशारिष्टादिपाककाले पुरुषायुर्विनाशसंभावना तत्रापि शान्त्यादिना तत्प्रतीकारार्थमस्योपयोग इति।

यत्तु 'येन तु यत्प्राप्तव्यं' इत्यादि शौनकवचनं तस्यायमर्थः—येन यत्प्राप्तव्यं अवश्यं भोक्तव्यं तद्बृहस्पतिः कर्तुमशक्तः, अर्थादेवान्यददृढकर्मोपार्जितं निराकर्तुं शक्त इत्यर्थः। तस्माद्दैवपुरुषकारयोः साचिव्यमभ्युपगन्तव्यम्। इति युक्तम्। अत एवाह याज्ञवल्क्यः—

यथा ह्येकेन चक्रेण रथस्य न गतिर्भवेत्।
तद्वत्पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति ॥३२॥

इति संक्षेपः।

और भी! यद्यपि पूर्व जन्म के अच्छे-बुरे कर्मों का परिणाम शुभ या अशुभ फलों को देखने पर ही जाना जाता है किन्तु यह शुभ-अशुभ फल कब मिलेगा यह नहीं जाना जाता और भाग्य आगे खण्डित है या फलद है यह ज्ञान होना संभव नहीं क्योंकि वह पूर्व कर्मों के अधीन है और वे अदृष्ट हैं। वैसे तो दिन रात्रि के विभाजन से सूक्ष्मकाल का ज्ञान यन्त्रराज, वा तुरीययन्त्र, वा ध्रुवभ्रमादि यन्त्र से कर के उस काल में जो लग्नादि

Copyrighted material

द्वादशभावचक्र हो उस लग्नचक्र में स्वोच्च-मूलत्रिकोण, अपनो राशि वा मित्र की राशि में स्थित ग्रह अपनी दशा में पूर्व जन्म में कृत शुभ फल को देने वाले तथा शत्रु-नीच राशिस्थ ग्रह अपनी दशा में अशुभ फल को देने वाले होते हैं ऐसा होराशास्त्र के आधार पर जाना जाता है। इसी प्रकार शुभ फलद दशा का ज्ञान करके उसमें यात्रा करने पर बिना परिश्रम से अभीष्ट की सिद्धि होती है तथा अशुभ दशा का ज्ञान करके उसमें यात्रा यदि की जाय तो हानि होती है। इसलिये जातक ग्रन्थों की दशा ज्ञान के लिये परमावश्यकता होती है।

और भी जहाँ पर अरिष्ट दशा का ज्ञान होता है वहाँ (उस समय) पर जातक की आयु के विनाश की संभावना प्राप्त होने पर भी शान्त्यादिक से उसका प्रतीकार करने के लिये इस होरा शास्त्र का उपयोग होता है।

जो कि 'येन तु यत्प्राप्तव्यं' शौनक मुनि का वचन है उसका आशय यह है कि जिसका जो अवश्य भोक्तव्य होता है उसे बृहस्पति भी दूर नहीं कर सकता है। अर्थात् अदृढ़ कर्मोपार्जित अशुभ शान्ति से दूर करने में होराशास्त्रज्ञ ही समर्थ होता है। इसलिये भाग्य व पुरुषार्थ में मित्रता है अर्थात् एक दूसरे से अभिन्न है। इसलिये ही याज्ञवल्क्य-मुनि ने कहा है—

जैसे कि एक पहिये के रथ की गति नहीं होती अर्थात् १ पहिये से रथ या गाड़ी नहीं चलती उसी प्रकार बिना पुरुषार्थ के भाग्य फलद नहीं होता है।

अथ होरा प्रशंसायां कल्याणवर्मा[1] (आह ?) !

होरा शास्त्र की प्रशंसामें आचार्य कल्याणवर्मा ने कहा है।

विधात्रा लिखिता यस्य (याऽसौ) ललाटेऽक्षरमालिका।
दैवज्ञस्तां पठेत्प्राज्ञः होरानिर्मलचक्षुषा ॥४०॥

प्राणियों के मस्तक पर विधाता (ब्रह्मा) अर्थात् सृष्टिकर्ता ने जो शुभाशुभ पंक्ति लिखदी है उसे प्रौढ़ ज्योतिषी ही अपने होराशास्त्र ज्ञान रूपी निर्मल चक्षु से जानने में समर्थ होता है ॥४०॥

[2]गुणाकरोऽपि—

वर्णावली या लिखिता विधात्रा
ललाटपट्टे भुवि मानवानाम् !
होरादशानिर्मलया यथावत्
तां दैवविद् वाचयतीति नान्यः ॥४१॥

आचार्य गुणाकर ने भी अपने होरामकरन्द नामक ग्रन्थ में कहा है कि जीवों के मस्तक पर ब्रह्माजी शुभाशुभ की जो रेखा अङ्कित करते हैं उसे प्रौढ़ होराशास्त्र का ज्ञाता अपनी बुद्धि से जानकर शुभाशुभ फलादेश में समर्थ होता है न कि अन्य कोई ॥४१॥

---

१. सारा० २. अ० १ श्लो०। २. होरा मकरन्द १ अ. ८ श्लोक।

Copyrighted material

शम्भुहोरा प्रकाश में कहा है—

वर्णावली तु लिखिता भुवि मानवनां धात्रा ललाटपटले किल दैववित्ताम्। संवाचयत्यपि च हौरिकशास्त्रदृष्ट्या नान्यो घटादि सकलं तमसि प्रदीपः' (१ अ० १५ श्लो०) ४१.

तत्र प्रथमं राशिप्रभेदाध्यायो निरूप्यते।

होरारत्न ग्रन्थ में सर्वप्रथम राशि प्रभेद अध्याय का निरूपण ग्रन्थकार करते हैं।

राशिप्रभेदाध्यायः प्रथमः

तत्र प्रथमतो राशिनामान्याह कल्याणवर्मा—

प्रथम में कल्याणवर्मा द्वारा कथित राशियों के नाम—

मेष-वृष-मिथुन-कर्कट-सिंह-कन्या-तुला-वृश्चिकाः।
धनुरिह मकरकुम्भौ मीन इति राशिनामानि ॥१॥

१ मेष, २ वृष, ३ मिथुन, ४, कर्क, ५ सिंह, ६ कन्या, ७ तुला, ८ वृश्चिक, ९ धनु, १० मकर, ११ कुम्भ, १२ मीन ये १२ राशियों के नाम हैं ॥१॥

अथ कालपुरुषस्य मेषादिराशिक्रमेण शिरः प्रभृत्यङ्गविभागमाह वराहः—

भगवान् कालपुरुष के मेषादि क्रम से मस्तकादि चरणपर्यन्त शरीराङ्गविभाग का ज्ञान—

[1]शीर्ष-मुख-बाहु-हृदयोदराणि कटि-वस्ति-गुह्य संज्ञकानि।
ऊरू जानुकजंघे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ॥२॥

यथा-मेष = शिर। वृष-मुख। मिथुन = हाथ। कर्क = हृदय। सिंह = पेट। कन्या = कमर। तुला = वस्ति। वृश्चिक = लिङ्ग। धनु = जांघ। मकर = घेंटू (घुटना)। कुम्भ = पींड़री। मीन = पैर। यह १२ राशियों के क्रम से कालपुरुष के शरीरावयव का विभाग है ॥२॥

पुनः बादरायण के मत से अङ्गविभाग ज्ञान—

[2]बादरायणोऽपि—

मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विधातु-
र्वक्षो भवेन्नृमिथुनं हृदयं कुलीरः।
सिंहस्तथोदरमथो युवतिः कटिश्च
वस्तिस्तुलाभृदथ मेहनमष्टमं स्यात् ॥३॥
धन्वी चास्योरुयुगं मकरो जानुद्वयं भवति।
जङ्घाद्वितयं कुम्भः पादौ मत्स्यद्वयं चेति ॥४॥

वस्तिर्नाभिगुह्ययोरन्तरं चेति। वस्तिर्नाभेरधो द्वयोरित्यमरोक्तेः। मेहनं लिङ्गम्।

श्री बादरायण जी का कथन है कि कालपुरुष विधाता का मेष राशि शिर = मस्तक। वृष = वदन = मुख। मिथुन = छाती। कर्क = हृदय। सिंह = पेट। कन्या = कमर। तुला = वस्ति। वृश्चिक = लिङ्ग। धनु = दोनों जांघ। मकर = दोनों घेंटू (घुटना)। कुम्भ = दोनों पींड़री और मीन राशि दोनों पैर हैं ॥३-४॥

वस्ति नाभि व लिङ्ग के मध्य स्थान को कहते हैं। अमरकोश में कहा है—कि वस्ति नाभि और गुह्याङ्ग के बीच के भाग की संज्ञा है। यह शब्द स्त्रीलिङ्ग व पुंलिङ्ग है। मेहन 'मिहतीति मेहनम्' लिङ्ग को कहते हैं।

---

१. लघु जा० १ अ० ४ श्लो० है। २. बृ० जा० ४ श्लो० भट्टो० टी० में प्राप्त है।

Copyrighted material

अत्र कालपुरुषस्य वक्षस्थले मिथुनराशिरुक्तस्तच्चिन्त्यम् । यतो वक्षोहृदययोः को वा लक्षणभेदः कथं वा पुंसो विभुजत्वमिति अप्रयोजकत्वात् । अत एव वक्ष्यमाणयवनमुनिवाक्ये—

वोणागदाभृन्मिथुनं तृतीयः (सं० ?) प्रजायते स्कन्धभुजांशदेशः इति स्पष्टं भुजस्थलमेवोक्तम् ।

इस बादरायण के वचन में मिथुन राशि कालपुरुष का वक्षस्थल है यह कथन ग्रन्थकार के मत में चिन्त्य है अर्थात् उचित नहीं है । क्योंकि छाती व हृदय के लक्षण में कोई भेद अर्थात् पृथक्ता प्रतीत नहीं होती तथा पुरुष के हाथों में राशि विन्यास न करने का कोई प्रयोजन दृष्टि पथ पर नहीं आता एवं बिना हाथ के पुरुष का होना भी संभव नहीं है ।

भगवान् सूर्य के मत में कालपुरुषाङ्ग विभाग—

श्री भगवता सूर्येणाऽपि स्वजातके उक्तम्—

भगवान् सूर्य ने भी अपने जातक ग्रन्थ में कहा है—

शिरो वक्त्रं भुजा हृच्च क्रोडः कटिरिति क्रमात् ।
वस्तिर्व्यञ्जनके ऊरू-जानुजङ्घे च पद्युगम् ॥५॥इति॥

[1]शीर्षास्यबाहुहृदयमिति वदन् कल्याणवर्मानुकूलः 'शीर्षास्यदोरुरःक्रोड' इति वदन् न छन्दोऽप्यनुकूलः ।

मेष = शिर । वृष = मुख । मिथुन = हाथ । कर्क = हृदय । सिंह = क्रोड (पेट) । कन्या = कमर । तुला = वस्ति (नाभि से नीचे उपस्थ तक) । वृश्चिक = गुह्य स्थल । धनु = जांघ । मकर = घेंटू (ठेहुना) । कुम्भ = पींड़री । मीन = पैर हैं ॥५॥

यह वचन कल्याण वर्मा के अनुकूल है यथा सारावली में 'शीर्षास्यबाहु हृदयं जठरं कटिवस्तिमेहनोरुयुगम्' यहाँ पर 'शीर्षास्यदोरुरःक्रोड' ऐसा कहने पर छन्द अनुकूल प्रतीत नहीं होता है ।

विशेष—कालपुरुष के अङ्ग में राशियों की कल्पना ग्रन्थान्तरों में निम्न प्रकार से प्राप्त होती है यथा—

बृ० पा० में—'शीर्षानने तथा बाहू हृत्कोडकटिवस्तयः । गुह्योरुयुगले जानुयुग्मे वै जङ्घके तथा । चरणौ द्वौ तथा मेषात् ज्ञेयाः शीर्षादयः क्रमात् (४ अ० ४ श्लोक०)

बृ० जा० में—'कालाङ्गानिवराङ्गमाननमुरो हृत्क्रोडवासोभृतो (१ अ० ४ श्लो०)

तथा सर्वार्थचि० में—'मेषादि मूर्धा वदनं गलोरो हृत्कुक्षिवासोभृत-वस्तिगुह्यम् (१ अ० ७ श्लो०)।

एवं फलदीपिका में—

शिरो वक्रोरो हृज्जठरकटिवस्तिप्रजननस्थलान्यूरूजान्वोर्युगलमिति जङ्घे पद युगम् (१ अ० ४ श्लो०)

और भी शम्भुहोराप्रकाशमें—

---

१. सारा० ३ अ० ५ श्लो० ।

Copyrighted material

शीर्षाख्यं वदनं च बाहुयुगलं हृच्चोदरं कटचथो, वस्तिर्गुह्यमुरू च जानुजघनौ पाद-द्वयं वै क्रमात् (१ अ० १६ श्लो०)

एवं जातकपरिजात में भी—

कालात्मकस्य च शिरोमुखदेशवक्षो हृत्कुक्षिभागकटिवस्तिरहस्यदेशाः। ऊरू च जानु-युगलं परतस्तु जङ्घे पादद्वयं क्रियमुखावयवाः क्रमेण (१ अ० ८ श्लो०)।

अङ्गविभाग प्रयोजनमाह कल्याणवर्मा—

[1]कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत्प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात्पुष्टान्सोपद्रवांश्चापि ॥६॥

अयमर्थः—यो राशिर्जन्मकाले शुभग्रहाक्रान्तः स राशिः कालपुरुषस्य यदङ्गे भवति तदङ्गे पुष्टिर्भवति। यो राशिः पापग्रहाक्रान्तः तद्राश्यङ्गे उपघात इति ॥

इस कालपुरुषाङ्ग विभाजन का क्या प्रयोजन होता है? इसके उत्तर में आचार्य कल्याणवर्मा ने अपने सारावली नामक ग्रन्थ में प्रतिपादित किया है कि पुरुषों के जन्म समय में इस काल पुरुषाङ्ग की जो राशि शुभग्रह से युक्त हो वह कालपुरुष के जिस अङ्ग में होती है वह अङ्ग जातक का पुष्ट होता है तथा जो राशि पापग्रह से आक्रान्त हो अथवा पापग्रह से युत जन्म के समय होती है वह राशि जिस अङ्ग में स्थित हो वह अङ्ग जातक का कमजोर होता है वा उसमें चोट लगती है ॥६॥

भचक्रे मेषादिव्यवस्थामाह गर्गः—

[2]अश्विनी-भरणीमेषः कृत्तिका पादमेव च।
तत्पादत्रितयं केशः वृषः सौम्यदलं तथा ॥७॥
सौम्यार्द्धमार्द्रामिथुनमादित्यचरणत्रयम्।
तत्पादः पुष्यसाश्लेषा राशिः कर्कटकः स्मृतः ॥८॥
पित्र्यं भाग्यमथार्य्यम्णं भागः सिंहः प्रकीर्तितः।
तत्पादंत्रितयं कन्या हस्तचित्रार्द्धमेव च ॥९॥
तुलाश्चित्रा दलं स्वाती विशाखचरणत्रयम्।
तत्पादं मित्रदेवत्यं ज्येष्ठा वृश्चिक उच्यते ॥१०॥
मूलमाप्यं तथा धन्वी पादो विश्वेश्वरस्य च।
तत्पादत्रितयं विष्णुर्मकरो वासवं दलम् ॥११॥
तद्दलं वारुणं कुम्भं तथा च चरणत्रयम्।
तत्पादमेकं मीनः स्यादहिर्बुध्न्यञ्च रेवती ॥१२॥

श्री गर्गाचार्यजी ने नक्षत्र चक्र में राशियों की व्यवस्था निम्न प्रकार से की है—

---

१. टि० यह पद्य लघुजातक में भी है।

२. वृ० जा० १ अ० ४ श्लो० भट्टो० टी० में प्राप्त है।

Copyrighted material

| | | |
|---|---|---|
| मेष<br>अश्विनी, भरणी,<br>कृत्तिका १ पाद | वृष<br>३ पाद कृत्तिका,<br>रोहिणी, मृग० २ पा० | मिथुन<br>२ पा० मृ० शि०, आर्द्रा,<br>३ पा० पुनर्वसु० |
| कर्क<br>१ पा० पु० व०, पुष्य,<br>अश्लेषा | सिंह<br>मघा, पू० फ०,<br>१ पा० उ० फा० | कन्या<br>३ पा० उ० फा०, हस्त,<br>२ पा० चित्रा |
| तुला<br>२ पा० चित्रा, स्वाती,<br>३ पा० विशाखा | वृश्चिक<br>१ पा० विशाखा,<br>अनुराधा, ज्येष्ठा | धनु<br>मूल, पू० षा०,<br>१ पा० उ० षा० |
| मकर<br>३ पा० उ० षा०,<br>श्रवण, २ पा० धनिष्ठा | कुम्भ<br>२ पा० धनिष्ठा,<br>शतभिषा, ३ पा०पू०भा० | मीन<br>१ पा० पू० भा०, उत्तराभा०,<br>रेवती । |

अथ व्यवहारार्थं मेषादिराशिसंज्ञामाह कल्याण वर्मा—

मेषादीनां [1]क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपाथोनाः ।
संज्ञा जूककौर्पिकतौक्षिकाकोकेरहृदयरोगान्त्याः ॥१३॥

आचार्य कल्याणवर्मा ने व्यवहार के लिये मेषादि १२ राशियों की संज्ञा इस प्रकार से अपने सारावली नामक ग्रन्थ में की है। यथा—मेष = क्रिय। वृष = तावुरि। मिथुन = जितुम। कर्क = कुलीर। सिंह = लेय। कन्या = पाथोन। तुला = जूक। वृश्चिक = कौर्पिक। धनु = तौक्षिक। मकर = आकोकेर। कुम्भ = हृदय रोग और मीन = अन्त्य ॥१३॥

विशेष—यह श्लोक बृहज्जातक (१ अ० ८ श्लो०) में भी पठित है।

जातक पारिजात में राशियों के पर्यायवाची शब्द इस प्रकार से हैं—

मेष—अज, बिस्व, क्रिय, तुम्बुर, आद्य। वृष—उक्ष, गो, तावुरु, गोकुल। मिथुन—द्वन्द्व, नृयुग्म, जुतुम, यम, युग, तृतीय। कर्क—कुलीर, कर्कटिक, कर्कट। सिंह—कण्ठीरव, मृगेन्द्र, लेय। कन्या—पाथोन, रमणी, तरुणी। तुला—तौली, वणिक्, जुक, घट। वृश्चिक—अलि, अष्टम, कौर्पि कीट। धनु—चाप, शरासन। मकर—मृगास्य, नक्र। कुम्भ—घट, तोयधर। मीन—अन्त्य, मत्स्य, पृथुरोम, झष। (१ अ० ४–६½ श्लो०) ॥१३॥

राशिस्वरूपमाह सत्याचार्यः—

सत्याचार्य के आधार पर राशियों का स्वरूप—

[2]छागो वृषभो वीणागदाधरः मिथुनमंभसि कुलीरः ।
सिंहः शैले कन्या नौस्था सवह्निसस्यकरा ॥१४॥

---

१. सारावली में तावुरि के स्थान पर तावुरु है (३ अ० ७ श्लो०)।

२. वृ० जा० १ अ० ५ श्लो० भट्टो० टी० में प्राप्त है।

Copyrighted material

पुरुषस्तुलाधरो वृश्चिकोऽथ धन्वी हयान्त्यार्धम् ।
मकरा (धं) मृगपूर्वं कुम्भी पुरुषो झषौ मीनौ ॥१५॥

मेष राशि का स्वरूप मेढा के समान है तथा वृष बैल के सदृश है । मिथुन = वीणा से युत स्त्री व गदा से युक्त पुरुष का जोड़ा मिथुन राशि का स्वरूप हैं । जल में वास करने वाली कर्क राशि है । पर्वत वनवासी सिंह राशि है । हाथ में अग्नि व अन्न लिये हुए नौका पर बैठी हुई कन्या के समान कन्या राशि है । हाथ में तराजू लिये हुए पुरुष तुला राशि का स्वरूप है । वृश्चिक विच्छू के समान है । धनु = कमर के ऊपर धनुषधारी मनुष्य और कमर के नीचे घोड़े के समान है । मकर = हिरन के समान मुख वाला मकर है । कुम्भ = घड़ा धारण किये हुए पुरुष है । मीन = २ मछली मिली हुई हैं ॥१४-१५॥

यवनोक्त १२ राशियों का स्वरूप

[1]यवनेश्वरोऽपि—

आद्यः स्मृतो मेषसमानमूर्तिः कालस्य मूर्धा गदितः पुराणैः ।
सोऽजाविका [2]सञ्चरकन्दे[3]राद्रिस्तेयाग्निधात्वाकररत्नभूमिः ॥१६॥

अब यवनाचार्य द्वारा वर्णित १२ राशियों के स्वरूपों का वर्णन करते हैं ।

मेष राशि का स्वरूप—

प्रथम मेष राशि होती है । इसकी आकृति बकरे के समान होती है । कालपुरुष की देह में यह राशि शिर स्थान प्राचीन आचार्यों ने कथित की है । इस राशि का निवास स्थान बकरी व भेंड़ा के घूमने की भूमि, गुफा, पर्वत, चोर, स्थान, अग्नि व धातुओं की खान और रत्न की भूमि होता है ॥१६॥

वृषाकृतिस्तु कथितो द्वितीयः सवक्त्रकण्ठायतनं विधातुः ।
बला (ना)द्रिसानुद्विपगोकुलानां कृषीबलानामधिवासभूमिः ॥१७॥

वृष राशि का स्वरूप—

दूसरी वृष राशि होती है, इसकी आकृति बैल के सदृश होती है । कालपुरुष विधाता के देह में मुख से कण्ठ तक इसका स्थान है । वन, पर्वत, शिखर, हाथी, गौशाला और कृषकों की भूमि इस राशि की निवास भूमि होती है ॥१७॥

वीणागदाभृन्मिथुनं तृतीयः प्रजापतेः स्कन्धभुजांसदेशे[4] ।
प्रवर्तका (की) गायनशिल्पकस्त्री क्रीडारतिद्यूतविहारभूमिः ॥१८॥

मिथुन राशि का स्वरूप—

तीसरी मिथुन राशि है यह स्त्री-पुरुष का जोड़ा है स्त्री वीणा हाथ में लिये हुए है, तथा पुरुष गदा को धारण किये हुए है । कालपुरुष विधाता के देह में इस राशि का

---

१. मीन राज कृ० १ २. संवर इति० पु० पा० । ३. कंदरादि ई० पु० पा० । अ० ४ श्लो० १५ । ४. देशः ई० पु० पा० ।



Copyrighted material

स्थान कन्धे से लेकर हाथ पर्यन्त है । नृत्य स्थल, गाने का स्थान, शिल्प, स्त्री, खेलने का स्थान, रति स्थान, जुआ और विहार करनेयोग्य भूमि में इसका निवास है ॥ १८ ॥

कर्को कुलीराकृतिरम्बुसंस्थो वक्षः प्रदेशे विहितश्च धातुः ।
केदारवापीपुलिनानि तस्य देवाङ्गनारम्यविहारभूमिः ॥१९॥

कर्क राशि का स्वरूप—

चौथी कर्क राशि है । इसकी केकड़ा के समान आकृति है तथा जलचर संज्ञा है । कालपुरुष विधाता के देह में इसका वक्षस्थल स्थान है । खेत, बावली, तट, देवस्त्री, मनोहर और विहार योग्य भूमि में कर्क राशि का निवास होता है ॥१९॥

सिंहस्तु शैले हृदयप्रदेशः (शे) प्रजापतेः पञ्चममाहुरार्याः ।
तस्याटवीदुर्गगुहावनाद्रि[1]व्यधावनीदुर्गवनप्रदेशः (शाः) ॥२०॥

सिंह राशि का स्वरूप—

पाँचवीं पर्वत पर निवास करने वाले सिंह के समान सिंह राशि है । इसका कालपुरुष विधाता के शरीर में हृदय स्थान है । जङ्गल, किला, गुफा, वन, पर्वत, व्याध (हिंसक) भूमि, किला और वनभूमि में इसका निवास है ॥२०॥

प्रदीपिकां गृह्य करेण कन्या
नौस्था जले षष्ठमिति ब्रुवन्ति ।
कालार्थ वी (धी) रां (रा) जठरं विधातुः
सशाड्बल (ला) स्त्री रतिशिल्पभूमिः ॥२१॥

कन्या राशि का स्वरूप—

छठी कन्या राशि है । हाथ में दीपक धारण किये हुए जल में नौका पर बैठी हुई कन्या राशि है । इसका कालपुरुष के अंग में पेट स्थान है । नवीन घासों से हरी भरी, स्त्री रति और चित्रकारी की भूमि में निवास है ॥२१॥

वीथ्या(थ्यां) तुला पण्यधरो मनुष्यः
स्थितः सनाभीकटिवस्तिदेशे ।
शुक्ता (क्ला) र्थवीथ्यापणपट्टनाध्व-
सार्थो विधातोऽत्र न सस्यभूमिः ॥२२॥
(पाठान्तरं नाध्वसार्थाधिवासोन्नत सस्य भूमिः ॥२२॥)

तुला राशि का स्वरूप—

सातवीं तुला राशि तराजू को धारण किये हुए पुरुष, गली (बाजार) में स्थित है । कालपुरुष के देह में नाभि, कटि (कमर) व वस्ति इसका स्थान है । रुपयों के निमित्त नगर के बाजार में बनियों की कतार में व उच्च हरित घास में इसका निवास है ॥२२॥

श्वभ्रे (भ्रो) ऽष्टमो वृश्चिकविग्रहस्तु
प्रोक्तः प्रभा (भोः) मेढ्रगुदप्रदेशे ।
[2]गुहाबिलश्वभ्रविषाश्मगुप्तिवा-
(र्व)ल्मीककोटाजगराहिभूमिः ॥२३॥

---

१. व्याघ्रावनो । २. विलः पु० पा० ।

Copyrighted material

वृश्चिक राशि का स्वरूप—

आठवीं वृश्चिक राशि स्वच्छ विच्छू की आकृति के सदृश है। काल पुरुष के देह में इसका गुह्य (लिङ्ग व गुदा) स्थान है। गुफा, बिल, सफेद जहर, पत्थर, छिपने का स्थान, टीला, कीड़ा और अजगर सर्प की भूमि में इसका निवास है ॥२३॥

धन्वी मनुष्यो ह्यपश्चिमार्द्धस्तमाहुरूरुं (रूरू) भुवनप्रणेतुः।
समस्थितव्यस्तसमस्तवाजिसुरास्त्रभृद्यज्ञरथाश्वभूमिः ॥२४॥

धनु राशि का स्वरूप—

नवीं धनु राशि है। इसका कमर से ऊपर का भाग मनुष्य का तथा कमर के नीचे का हिस्सा घोड़े के समान है। काल पुरुष के अङ्ग में दोनों जांघ इसका स्थान है। समान, विपरीत व सम्पूर्ण हाथी, देवता, अस्त्र धारक, यज्ञ, रथ (सवारी) और घोड़ों के रहने की भूमि में निवास है ॥२४॥

मृगार्धपूर्वं (र्वो) मकरोर्धगात्रो (श्)
(म्बुगार्धो) जानुप्रदेशं तमुशन्ति धातुः।
नदीवनारण्यस[1](रो)द्रघनूपः
श्वभ्रादि (धि) वासो दशमः प्रदिष्टः ॥२५॥

मकर राशि का स्वरूप—

दसवीं मकर राशि है इसका ऊपरी भाग मगर के समान है। काल पुरुष के अङ्ग में दोनों घुटने इसका स्थान है। नदी, वन, जङ्गल, तालाब, पर्वत, व अनेक प्रकार के पेड़ लता और झरने वाले जङ्गल और स्वच्छ स्थान में इसका निवास है ॥२५॥

स्कन्धे तु रिक्तः पुरुषस्य सिंहो (कुम्भो)
जङ्घे र्थ (त) मेकादशमाहुरार्याः।
तस्यो (शुष्को) दकाधारकुशस्य पक्षि (क्षी)
स्त्री शौण्डिक (को) द्यूतनिवासभूमिः ॥२६॥

कुम्भ राशि का स्वरूप—

ग्यारहवीं कुम्भ राशि कंधे पर खाली घड़ा लिये हुए पुरुष के समान है। काल पुरुष के अङ्ग में दोनों पींड़री इसका स्थान है। सूखी व जल के ऊपरी भाग, कुश बाहुल्य, पक्षी, स्त्री, मद्य बनाने वाले व जुआ घर में इसका निवास है ॥२६॥

जाने (जले) तु मीनद्वयमन्त्यराशिः
कालस्य पादौ विहितौ वरिष्ठौ।
स पुण्यदेवद्विजतीर्थभूमिन(र्न)-
दी समुद्राम्बुचया म्बु (धि) वासः[2] ॥२७॥

---

१. सराज रूपः पु० पा०। २. वृ० य० व० जा० में १ अ० ३ श्लो० से १५ तक उपलब्ध हैं तथा वृ०जा० १ अ० ५ श्लो० की भट्टो० टी० में हैं।

Copyrighted material

### मीन राशि का स्वरूप—

बारहवीं मीन राशि परस्पर मुख पुच्छ मिलित जल में दो मछलियों के समान है। काल पुरुष के अङ्ग में दोनों पैर इसका स्थान है। पुरुष स्थल, देवता, ब्राह्मण व तीर्थ भूमि व नदी-समुद्र-जल संग्रह भूमि में इसका निवास है ॥२७॥

एतत्स्वरूपप्रयोजनन्तु हृतनष्टादिषु स्थानपरिज्ञानम्। तथा च[1] 'षट्पञ्चाशिकायां राशिभ्यः कालदिग्देशाः' इति ॥

इन राशियों के स्वरूप का प्रयोजन चुराई हुई वस्तु व नष्ट द्रव्यज्ञान एवं जन्म के समय प्रसवादि स्थान जानने के लिए होता है। 'षट् पञ्चाशिका' में कहा है कि राशियों से समय, दिशा व देश का ज्ञान करना चाहिए।

अथ राशीनां ग्राम्यादिसंज्ञा जातकरत्नावल्याम्—
जातकरत्नावली में राशियों की ग्राम्यादि संज्ञा का वर्णन-

ग्राम्यादिमिथुनतुलास्त्रोचापालिघटानिशासु वृषमेषौ।
मकरादि सार्धं सिंहौ वन्यौ दिनेऽजवृषभौ च ॥२८॥
जलजौ कर्कटमीनौ मकरान्त्यार्धं च शिवमते कुम्भः।
राशिरूपमेतन्मार्कण्डेयादिमुनिभिरुक्तम् ॥२९॥

मिथुन, तुला, कन्या, धनु, वृश्चिक, कुम्भ ये राशि ग्राम्य हैं। मेष वृष राशि रात्रि में बली होती हैं। मकर राशि का पूर्वार्ध व सिंह राशि वनचर एवं दिन में बलवान् होती हैं। मेष, वृष, कर्क, मीन व मकर का उत्तरार्ध तथा कुम्भ राशि शिव के मत में जलचर हैं। यह राशियों का स्वरूप मार्कण्डेयादि मुनियों ने कहा है ॥२८-२९॥

एषां प्रयोजनमुक्तं वराहेण
ग्राम्यारण्य[2]जलोद्भवराशिषु जाता भवन्ति तच्छीला इति।

इन राशियों की संज्ञा के प्रयोजन में वराह मिहिर ने अपने लघु जातक ग्रन्थ में कहा है कि यदि जन्म के समय में चन्द्रमा ग्राम्य राशियों में हो तो जातक ग्राम्य प्रिय, यदि अरण्य संज्ञक राशियों में हो तो वन में रहने वाला, यदि जलचर राशियों में चन्द्रमा हो तो जातक जल प्रिय होता है।

अथ राशीनां द्विपदादि संज्ञामाह वराहः—

[3]मेष-वृष-धन्वि-सिंहाश्चतुष्पदा　　मकरपूर्वभागश्च।
कोटः कर्कटराशिः　सरोसृपो　वृश्चिकः　कथितः ॥३०॥
मकरस्य पश्चिमार्धं कुम्भं मीनश्च जलचरः ख्यातः।
मिथुन तुला, घट (धट) कन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ॥३१॥ इति

अब वराहमिहिरोक्त १२ राशियों की द्विपदादि संज्ञा को कहते हैं—

मेष-वृष-धनु सिंह और मकर राशि का पूर्व भाग, इनको चतुष्पद संज्ञा होती है।

---

१. ७ अ० १३ श्लो०। २. लघुजातक में (१२ अ० २ श्लो०) है। ३. ये दोनों पद्य लघुजातक में प्रथमाध्याय में हैं। (१ अ० १२-१३ श्लो०)

Copyrighted material

कर्क की कीट व वृश्चिक राशि की सरीसृप संज्ञा तथा मकर का उत्तरार्ध और मीन इनकी जलचर संज्ञा एवं मिथुन तुला कुम्भ कन्या व धनु राशि का पूर्वार्ध इन सबकी द्विपद संज्ञा होती है ॥३०-३१॥

अत्र वराहेण कर्कराशेर्जलचरत्वं विहाय कीटत्वमुक्तम्। कुम्भस्य द्विपदत्वं विहाय जलराशित्वमुक्तं तच्चिन्त्यम्। यतः पूर्वं वृद्धयवनोक्तं (क्त) राशिस्वरूपे 'कर्कः कुलीराकृतिरम्बुसंस्थः' इति कर्कस्य जलचरत्वं 'स्कन्धे तु रिक्तः पुरुषस्य कुम्भ' इति कुम्भस्य द्विपदत्वमेवोक्तम्।

वक्ष्यमाणगर्गवचनेऽपि 'नृयुक्तुलाघटः कन्या' इत्यनेन कुम्भस्य द्विपदत्वं कर्कस्य जलचरत्वं स्पष्टमेवोक्तम्। श्रीमत्सूर्येणापि राशिस्वरूपे—

स्कन्धासक्तो रिक्तघटः पुमान् स्यात्कुम्भसंज्ञकः।
कर्कस्य जलसंवासी, इति स्पष्टतरमुक्तम्।

पराशरजातकेऽपि—

'नृयुग्मयूकपाथोनचापपूर्वार्धकुम्भभान्' इत्यादिकेन कुम्भस्य द्विपदत्वं कर्कस्य जलचरत्वमुक्तम्।

एवं दिनादिबले वक्ष्यमाणदेवकीर्तिवचनेऽपि स्पष्टमुक्तं, यदुपजीव्य सत्याचार्येणाऽपि 'अम्भसि कुम्भो पुरुषः इति स्पष्टमुक्तम्।

यहाँ अर्थात् द्विपदादि संज्ञा कथन में आचार्य वराहमिहिर ने कर्क राशि की जलचर संज्ञा का त्याग करके कीट संज्ञा की है, तथा कुम्भराशि की द्विपद संज्ञा को छोड़कर जल संज्ञा जो की है वह ठीक नहीं है। क्योंकि पहिले वृद्धयवनोक्त राशि स्वरूप वर्णन में कर्क राशि की जलचर संज्ञा व कुम्भराशि की द्विपद संज्ञा कथित है। तथा आगे के गर्गाचार्य जी के 'नृयुक्तुला' इत्यादि वाक्य में भी कुम्भराशि की द्विपद संज्ञा व कर्क राशि की जलचर संज्ञा स्पष्ट रूप से वर्णित है।

श्रीमान् सूर्य ने भी स्वरूप वर्णन में कुम्भराशि की द्विपद, कर्क राशि की जलचर ही संज्ञा की है। पराशर जातक में भी इसी प्रकार के कुम्भ व कर्क की संज्ञा प्राप्त होती है। एवमेव आगे कथित देवकीर्ति के वचन में स्पष्टता से वर्णन मिलता है। इसी का आधार मानकर सत्याचार्य जी ने भी कुम्भ राशि की द्विपद संज्ञा की है।

**विशेष**—यहाँ पर ग्रन्थकार ने कुम्भ राशि की जलचर व कर्क राशि कीट संज्ञा न मानना कहा है किन्तु यह कथन युक्ति सङ्गत प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि कर्क का अर्थ केंकड़ा होता है। केंकड़ा एक कीट (कीड़ा) है। इसलिये कर्क राशि की कीट संज्ञा वराह मिहिर ने की। आचार्य वराह ने तो मकर व मीन तथा कुम्भ राशि की ही जलचर संज्ञा की है। किन्तु ग्रन्थान्तरों से कर्क राशि की जलाश्रयी संज्ञा के प्रमाणों में भी अल्पता नहीं है।

Copyrighted material

राशीनां दिन-रात्रि-सन्ध्याबलमाह देवकीर्तिः—

[1]मिथुनतुल (घट) कन्या दिवाबला धन्विनः पूर्वार्धम् ।
अजवृषसिंहा रात्रौ मृगह(य)योः पूर्वपश्चार्धे ॥३५॥
वृश्चिकमीनकुलीराः मकरान्त्यार्धं च सन्ध्यायाम् । इति ।

अब कौन-कौन राशि दिन में, कौन-कौन राशि रात्रि में, कौन-कौन सी राशि सन्ध्या में बली होती है यह देवकीर्ति के मत से बतलाते हैं ।

मिथुन, तुला, कन्या, कुम्भ और धनु राशि का पूर्वार्ध ये दिन में बलवान् होती हैं । मेष, वृष, सिंह, मकर का पूर्वार्ध व धनु राशि का उत्तरार्ध ये राशियाँ रात में बली होती हैं । वृश्चिक, मीन, कर्क और मकर का परार्ध ये राशियां दोनों सन्ध्या के समय में बलवान् होती हैं ॥३५॥

[अथ] राशीनां शीर्षोदयाद्युग्रसौम्यपुंस्त्रीचरादिसंज्ञा दिगीशत्वं च होरामकरन्दे[2]—

कन्यालिजूकहरिमीनघटा दिनाख्या मूर्धोदया समिथुनास्त्वपरे निशाख्याः ।
पृष्ठोदयाश्च शफरो ह्युभयोदया स्यान्मीनालिकर्कटविराम इहर्क्षसन्धिः ॥३६॥

दिनाख्या दिनबला इत्यर्थः । एतत्स्पष्टमुक्तं—

[4]पराशरजातके—

दिवा शीर्षोदयाश्चैव सन्ध्यायामुभयोदयाः ।
नक्तं पृष्ठोदयाश्चैव बलाधिक्या उदीरिताः[5] ॥३७॥ इति

मीनादिराशीनामन्तिमनवांश ऋक्षसन्धिसंज्ञः ।

अब द्वादश राशियों की शीर्षोदय-पृष्ठोदय-उग्र-सौम्य-पुरुष-स्त्री-चर-स्थिर-द्विस्वभाव संज्ञा का तथा कौन-कौन राशि किस-किस दिशा की स्वामी है यह होरामकरन्द के आधार पर वर्णन करते हैं—

शीर्षोदय का तात्पर्य है कि जिस राशि का उदय अर्थात् प्रारम्भ शीर्ष नाम शिर (आगे) से होता है वह राशि शीर्षोदय संज्ञक कहलाती है । जिस राशि का पृष्ठ (पीछे) से उदय होता है वह राशि पृष्ठोदय संज्ञक होती है । जिस राशि का आगे पीछे मिलकर उदय होता है वह राशि उभयोदय संज्ञक मानी गई है । उभयोदय संज्ञक एक मात्र मीन राशि है क्योंकि दो मछलियों का जोड़ा एक की पूँछ व द्वितीय का मुख मिला हुआ ही मीन राशि है ।

गुणाकर रचित होरामकरन्द में—कन्या-वृश्चिक-तुला-सिंह-मीन-कुम्भ-मिथुन राशियां दिन संज्ञक अर्थात् दिन में मिथुन रहित बली होती हैं । इनमें मीन राशि का त्याग करके शेष राशियों की शीर्षोदय संज्ञा होती है ।

---

१. यह पद्य बृहज्जातक (१ अ०) की भट्टोत्पली टीका में उपलब्ध है ।
२. देखें ल० जा० १।११, सारावली ३।२३, स० चि० १।२०, जा० पा० १।१७ ।
३. १ अ० ३५ श्लो० ।
४. २ अ० ३७ श्लो० । ५. द्र० वृ० जा० १।१०, सारा० ३।२४ ।

Copyrighted material

मेष-वृष-कर्क-धनु-मकर मिथुन ये राशियाँ रात्रि में बली होती हैं तथा मिथुन हीन इन राशियों की पृष्ठोदय संज्ञा होती है। मीन राशि की उभयोदय संज्ञा है।

मीन—वृश्चिक-कर्क राशि के अन्तिम नवांश में अर्थात् रेवती नक्षत्र व ज्येष्ठा तथा आश्लेषा नक्षत्र के अन्तिम चरण की सन्धि संज्ञा है। इसे गण्डान्त कहते हैं ॥३६॥

दिनाख्या का अर्थ है कि दिन में बलवान् होना। इन शीर्षोदयादि का कथन स्पष्ट रूप से पराशर जातक में इस प्रकार से है—

शीर्षोदय राशि दिन में, उभयोदय दोनों सन्ध्याओं में और पृष्ठोदय राशियां रात्रि में अधिक बलवान् होती हैं ॥३७॥

**विशेष**—इस वाक्य में शीर्षोदयादि संज्ञाओं का वर्णन नहीं है किन्तु कालक्रम के आधार पर बल का प्रतिपादन है। न जाने ग्रन्थकार ने स्पष्टता से कैसे कथन किया कि 'एतत्स्पष्टमुक्तं पराशरजातके' मेरी दृष्टि से केवल बल का ही वर्णन इस वाक्य में प्राप्त होता है न कि शीर्षोदयादि संज्ञा का। इन संज्ञाओं का क्या प्रयोजन है। उत्तर—शीर्षोदये समभिवाञ्छितकार्यसिद्धिः 'पृष्ठोदये विफलता बलविद्रवश्च' तथा 'शस्तं दिवा दिनबले निशि नक्तवोर्यं रात्रौ विपर्ययबले गमनं न शस्तम्' ॥३७॥

ऋक्षसन्धिफलमुक्तं सारावल्यां[1]—

जातो न जीवति जनो मातुरपथ्यो भवेत्स्वकुलहन्ता[2]।
यदि जीवति गण्डान्ते बहुगजतुरगो भवेद्भूपः ॥३८॥

अब सारावली ग्रन्थ में कथित राशिसन्धि (गण्डान्त) में जायमान के फल को बतलाते हैं—

गण्डान्त में उत्पन्न होने वाला जीव विशेषकर जीवित नहीं रहता है। यदि जीवित रहे तो माता को कष्ट कारक या कुल का नाशक होता है तथा बहुत हाथी घोड़ों से युक्त राजा वा राजतुल्य सुख को भोगने वाला होता है ॥३८॥

नृयोषितावुग्रमृदुक्रमेण चरस्थिरद्विप्रकृतिस्वरूपः।
अजादयस्त्रिः परिवर्तनेन दिगीश्वरा शक्रदिगादितः स्युः ॥३९॥

अत्र पुरुषस्त्रीप्रभृतिषु लग्नवर्तिषु जातस्तत्स्वभावो भवतीति प्रयोजनं ज्ञेयम्। यदाह सत्यः—

ओजाः पुरुषा ज्ञेया मेषात्स्त्रीसंज्ञका युग्माः।
उग्रेषूग्रा पुरुषाः सौम्याः सौम्येषु लग्नेषु ॥४०॥
चरसंज्ञाः स्थिरसंज्ञा मेषात् (द्) द्विः प्रकृतिराशयः क्रमशः।
राशिस्वभावतुल्याः ज्ञेया प्रकृतिप्रसूतानाम् ॥४१॥

अजादय इति। मेषादयस्त्रिवारमावृत्य पूर्वादिदिशां स्वामिन इत्यर्थः। तथा च मेषसिंहधन्विनः पूर्वस्यां, वृषकन्यामकरा दक्षिणस्यां, मिथुनतुलाकुम्भाः पश्चिमायां, कर्कवृश्चिकमीना उत्तरस्यामिति। एतत्प्रयोजनन्तु सूतिकागृहद्वार-ज्ञानं तथा हृतनष्टादिषु चौरादेर्याने दिग् (ज्) ज्ञानम्।

---

१. ३ अ० २१ श्लोक। २. मूल में 'सकुलहन्ता' पाठ है।

Copyrighted material

तथा 'यातव्यदिङ्मुखगतस्य सुखेन सिद्धिर्व्यर्थश्रमो भवति दिक् प्रतिलोमलग्ने' इत्यादिकं बोध्यम् ।

अब १२ राशियों की पुरुष-स्त्री-उग्र (क्रूर)-पाप-सौम्य-चर-स्थिर-द्विस्वभाव संज्ञा तथा दिशा को बतलाते हैं—

मेष-मिथुन-सिंह-तुला-धनु-कुम्भ इनकी पुरुष और उग्र संज्ञा, वृष-कर्क-कन्या-वृश्चिक-मकर-मीन इन राशियों की स्त्री व सौम्य (अक्रूर, शुभ) संज्ञा होती है ।

मेष-कर्क-तुला-मकर की चर संज्ञा, वृष-सिंह-वृश्चिक–कुम्भ की स्थिर संज्ञा और मिथुन-कन्या-धनु-मीन की द्विस्वभाव संज्ञा होती है ।

पूर्वादि दिशाओं में मेषादि राशियों को तीन बार परिक्रमा (आवृत्ति) से एक-एक पूर्वादि दिशा में तीन-तीन जो राशियाँ होती हैं वे ही उन-उन दिशाओं की अधीश्वर हैं । यथा मेष-सिंह-धनु पूर्व में, वृष-कन्या-मकर दक्षिण में, मिथुन-तुला-कुम्भ पश्चिम में कर्क-वृश्चिक-मीन उत्तर में ।

यहाँ पर राशियों की स्त्री पुरुषादि संज्ञा का क्या प्रयोजन होता है इसके उत्तर में ग्रन्थकार ने सत्याचार्य का वचन उद्धृत करके समझाया है कि जन्म या प्रश्न के विषय में लग्नस्थ राशि की संज्ञाओं का ज्ञान करके फलादेश करना चाहिये । अर्थात् लग्नस्थ राशि से जातक के सौम्य क्रूरादि स्वभाव का ज्ञान करना चाहिये ।

पुरुष संज्ञक राशि का तात्पर्य है कि ओज राशि, ओज तेज वा पुरुषार्थ को कहते हैं । इसीलिये पुरुष संज्ञक राशियों में जन्म लेने वाले ओजस्वी व पुरुषार्थी होते हैं, इत्यादि विचारना चाहिये । स्त्री संज्ञक का मतलब है कि सम स्वभाव अर्थात् समानता की भावना होती है । उग्र से उग्र स्वभाव, सौम्य संज्ञक से मृदुल स्वभावादि का ज्ञान होता है ।

चर का अर्थ है शीघ्र । इन चर संज्ञक राशियों में जातक चञ्चल स्वभावी वा ये राशियाँ जल्दी से कार्य करने में समर्थ होती हैं । स्थिर राशियों में कार्य की स्थिरता होती है इसलिये स्थिर कार्य करना चाहिये तथा स्वभाव की स्थिरतादि का ज्ञान भी करना चाहिये । द्विस्वभाव से मतलब है कि मिला जुला स्वभाव इसी से द्विस्वभाव इनकी संज्ञा है ।

राशियों की दिशाओं का प्रयोजन यह है कि जन्म समय में सूतिका घर के दरवाजे का ज्ञान तथा चुराई हुई वस्तु वा नष्ट वस्तु अर्थात् खोई हुई वस्तु का ज्ञान एवं चोर की दिशा का ज्ञान करना चाहिए ।

और भी दिशा प्रयोजन यात्रा के समय जिस दिशा में यात्रा करनी हो तो उसी दिशा की राशि लग्न में यात्रा करने से सिद्धि होती है और विपरीत लग्न राशि में यात्रा करने से व्यर्थ का परिश्रम होता है ।।४०–४१।।

**विशेष**—४०, ४१ संज्ञक श्लोक बृहज्जातक १ अ० ११ श्लो० की भट्टोत्पली टीका में उपलब्ध होते हैं किन्तु कुछ अंशों में पाठान्तर निम्न प्रकार से उपलब्ध है । जैसे—ओजे पुरुषा, ज्ञेयाः सौम्याः संज्ञकाः क्रमाद् युग्मे । उग्रेषूग्राः सौम्याः सौम्ययुग्मेषु

Copyrighted material

भवनेषु' 'चरसंज्ञाः स्थिरसंज्ञा द्विप्रकृतिरिति राशयः क्रमशः । राशिस्वभावतुल्या जायन्ते प्रकृतयः प्रसूतानाम्' ॥४०-४१॥

राशि संज्ञाओं का स्पष्टार्थ चक्र—

| राशि | मेष | वृष | मिथुन | कर्क |
|---|---|---|---|---|
| पृष्ठोदयादि | पृष्ठोदय | पृष्ठोदय | शीर्षोदय | पृष्ठोदय |
| द्विपदादि | चतुष्पद | चतुष्पद | द्विपद | जलचर |
| दिन रात्रिबल | रात्रि | रात्रि | दिन | सं० |
| दिशा | पू० | द० | प० | उ० |
| पुरुष-स्त्री | पु० | स्त्री | पु० | स्त्री |
| क्रूर सौम्य | क्रूर | सौ० | क्रूर | सौ० |
| चर स्थिरादि | चर | स्थि० | द्विस्व० | चर |
| राशि | सिंह | कन्या | तुला | वृश्चिक |
| पृष्ठोदयादि | शीर्षोदय | शीर्षोदय | शीर्षोदय | शीर्षोदय |
| द्विपदादि | चतुष्पद | द्विपद | द्विपद | कीट |
| दिन रात्रिबल | रात्रि | दिन | दिन | सं० |
| दिशा | पू० | द० | प० | उ० |
| पुरुष स्त्री | पु० | स्त्री | पु० | स्त्री |
| क्रूर सौम्य | क्रूर | सौ० | क्रूर | सौ० |
| चर स्थिरादि | स्थि० | द्वि स्व | चर | स्थि० |
| राशि | धन | मकर | कुम्भ | मीन |
| पृष्ठोदयादि | पृष्ठोदय | पृष्ठोदय | शीर्षोदय | उभयोदय |
| द्विपदादि | पूर्वार्ध द्विपद उत्तरार्ध चतु० | पूर्वार्ध चतु. उत्तरा० जलचर | द्विपद | जलचर |
| दिनरात्रिफल | पूर्वार्ध दिन उत्तरा० रात्रि | पू० रात्रि उत्तरा०सं० | दिन | सं० |
| दिशा | पू० | द० | प० | उ० |
| पुरुष स्त्री | पु० | स्त्री० | पु० | स्त्री |
| क्रूर सौम्य | क्रूर | सौ० | क्रूर | सौ० |
| चर स्थिरादि | द्वि स्व० | चर | स्थि० | द्विस्व० |

अथ षड्वर्गनिरूपणम् । तत्र वराहः—

गृह-होरा-द्रेष्काणो (णा ?) नवभागो द्वादशांशकस्त्रिंशः[1] ।
वर्गः प्रत्येत ग्रहस्य यो यस्य निर्दिष्टः ॥४२॥

---

१. यह श्लोक लघुजातक में (१ अ० २३ श्लो०) कथित है।

Copyrighted material

अब षड्वर्ग का निरूपण करते हैं प्रथम आचार्य वराह मिहिर कथित षड्वर्ग को कहते हैं ।

१ गृह, २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ नवांश, ५ द्वादशांश, ६ त्रिंशांश ये ६ प्रकार के वर्ग को षड्वर्ग कहते हैं । अर्थात् जिस ग्रह की जो राशि होती है वही उसका घर तथा आगे वर्णित होरा द्रेष्काणादि का ज्ञान भी करके इच्छित ग्रहों का षड्वर्ग जानना चाहिये ।

**विशेष**—कोई भी ग्रह षड्वर्गस्थ नहीं हो सकता । क्योंकि सूर्य व चन्द्रमा का त्रिंशांश नहीं होता तथा भौमादि ग्रहों की होरा नहीं होती है इसलिये पाँच ही अपने वर्गों में ग्रह हो सकता है । यह भी उपलक्षण मात्र ही है । इसलिये यथासम्भव तीन अपने वर्गों में स्थित ग्रह स्ववर्ग में कहलाता है ॥४२॥

गर्गोऽपि—

[1]क्षेत्रं होराऽथ द्रेष्काणो नवांशो द्वादशांशकः ।
त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं सर्वस्य समुदाहृतः ॥४३॥
त्र्यादिष्वपि पदार्थेषु स्थितः स्वेषु स्ववर्गगः ।
पर (पञ्च) वर्गगतोऽप्येवं ग्रहो भवति नान्यथा ॥४४॥इति॥

ग्रहों के ६ प्रकार के वर्गों का वर्णन गर्गाचार्य ने भी किया है ।

१ गृह, २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ नवांश, ९ द्वादशांश, ६ त्रिंशांश ये ६ प्रकार के ग्रहों के वर्ग कहलाते हैं । इन्हीं की षड्वर्ग संज्ञा है ।

इन ६ प्रकार के वर्गों में से यदि ग्रह अपने तीन वर्गों में स्थित हो तो कहना चाहिये कि ग्रह अपने वर्ग में है । तथा पाँच वर्गों में भी ग्रह हो सकता है । ६ अपने वर्गों में ग्रह की सत्ता असंभावित है ॥४३-४४॥

श्रीमत्सूर्येण सप्तवर्गमुक्तम्—

लग्नं होरा त्रिभागश्च सप्तांशो नवमांशकः ।
द्वादशांशस्ततस्त्रिंशल्लवः सप्तकवर्गिका ॥४५॥

श्रीमान् सूर्य ने ग्रहों के सात प्रकार के वर्गों का वर्णन किया है । जैसे १ लग्न (गृह), २ होरा, ३ द्रेष्काण, ४ सप्तमांश, ५ नवांश, ६ द्वादशांश, ७ त्रिंशांश ये सात प्रकार के वर्ग होते हैं ॥४५॥

**विशेष**—ग्रहों के बल ज्ञान के लिये षोडश वा दश वा सप्त वा षड्वर्ग शास्त्रों में वर्णित हैं । प्रायः ६ वर्गों का विवेचन ग्रन्थान्तरों में उपलब्ध होता है ॥४५॥

तत्र ग्रहस्वामिनो नवांशस्वामिनश्चाह कल्याणवर्मा—

[2]कुज-भृगु-बुधेन्दु-रवि-शशिसुत-सित रुधिरेज्य-मन्द-शनि-जीवाः ।
गृहपा नवभागानामजमृगघटकर्कटाद्याश्च ॥४६॥

अब किस राशि का कौन-सा ग्रह स्वामी तथा किस राशि, में किस राशि से नवांश प्रारम्भ होता है, इसका वर्णन कल्याण वर्मा के मत से करते हैं ।

भौम, शुक्र, बुध, चन्द्र, सूर्य, बुध, शुक्र, भौम, गुरु, शनि, शनि, गुरु ये मेषादि क्रम से द्वादश राशियों के स्वामी होते हैं ।

---

१. ये दोनों पद्य बृहज्जातक १ अ० ९ श्लोक की भट्टोत्पली में प्राप्त हैं ।
२. सारावली ३ अ० ११ श्लो० ।

Copyrighted material

नवमांश मेष, सिंह, धनु राशि में प्रथम नवांश मेष का द्वितीय वृष का, तृतीय मिथुन का इसी रीति से आगे भी जानना चाहिये। एक नवांश का मान ३ अंश २० कला होता है।

वृष, कन्या, मकर राशि में प्रथम नवांश मकर से, मिथुन, तुला, कुम्भ में तुला से और कर्क, वृश्चिक, मीन राशि में कर्क से प्रारम्भ होता है ॥४६॥

स्पष्टार्थ स्वामी चक्र—

| मे० | वृ० | मि० | क० | सिंह | क० | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं | मी० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मं० | शु० | बु० | चं० | सू० | बु० | शु० | मं० | गु० | श० | श० | गु० |

स्पष्टार्थ नवांश चक्र—

| राशि अंश | मे० | वृ० | मि० | क० | सिं० | क० | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं० | मी० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३।२० | मे० | म० | तु० | क० | मे० | म० | तु० | क० | मे० | म० | तु० | क० |
| ६।४० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० |
| १०।० | मि० | मी० | ध० | क० | मि० | मी० | ध० | क० | मि० | मी० | ध० | क० |
| १३।२० | क० | मे० | म० | तु० | क० | मे० | म० | तु० | क० | मे० | म० | तु० |
| १६।४० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० |
| २०।० | क० | मि० | मी० | ध० | क० | मि० | मी० | ध० | क० | मि० | मी० | ध० |
| २३।२० | तु० | क० | मे० | म० | तु० | क० | मे० | म० | तु० | क० | मे० | म० |
| २६।४० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० | वृ० | सिं० | वृ० | कुं० |
| ३०।० | ध० | क० | मि० | मी० | ध० | क० | मि० | मी० | ध० | क० | मि० | मी० |

**विशेष**—फलादेश के लिये प्रायः सभी महर्षियों व आचार्यों ने बारह राशियों के सात ग्रह स्वामी होते हैं ऐसा कथन अपने ग्रन्थों में किया है। मेरी दृष्टि में राशियों के स्वामी ग्रह मानने का तात्पर्य यह है कि जो ग्रह जिस राशि का स्वामी होता है, उस ग्रह का उस राशि पर पूर्ण अधिकार रहता है। जैसे गाँव के मुखिया का ग्राम से अधिक प्रेम होता है वैसे ही ग्राम वाले भी मुखिया से प्रेम का नाता ग्रामीण सुविधा के लिये रखते हैं तथा मुखिया का अधिकार भी गाँव तक ही सीमित रहता है। इसलिये राशीश का राशि पर अधिकार रहना स्वाभाविक है। विशेषकर राशीश अपनी राशि में स्थित होकर बली माना जाता है।

यहाँ पर यह जिज्ञासा होती है कि मेष का भौम व सिंह का सूर्य क्यों स्वामी कहा गया है। उत्तर—ग्रह परिषद् में सूर्य व चन्द्रमा को राजा माना गया है तथा आगे वर्णित सूर्य जातक के वचन से चन्द्रमा को रानी व शुक्र को गुरु की पत्नी स्वीकार किया है किन्तु इस कथन में प्रमाणान्तर की अप्राप्ति दृष्टिगोचर होती है। ग्रन्थान्तरों में तो सूर्य चन्द्र राजा, मंगल को नेता, बुध को कुमार, गुरु शुक्र को मन्त्री और शनि को सेवक ही माना गया है। इन बारह राशियों में सबसे बली सिंह राशि है ऐसा नाममात्र से सिद्ध होता है। सिंह राशि का स्वामी सूर्य माना जाता है क्योंकि राजा ही स्वतन्त्र बुद्धि के होते हैं और अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। इसलिये सूर्य पुरुष ग्रह होने के नाते सिंह राशि पर सर्वप्रथम अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद ग्रहों में रानी का या

Copyrighted material

अन्य सूर्य के मित्र का अवसर आया तो वह है चन्द्रमा। इसने मित्रता के नाम या रानी होने के नाते अपने स्वभावानुकूल समीपस्थ कर्क राशि पर अधिकार कर लिया। तदनन्तर राजकुमार बुध ने राजाओं में या रानी राजा से याचना की कि मेरा अधिकार इस राशिमण्डल में कहाँ होगा तो सूर्य चन्द्रमा ने अपने समीपस्थ एक-एक राशि अर्थात् चन्द्रमा ने मिथुन व सूर्य ने कन्या पर अधिकार करने को कहा। अब कुमार व नेता ने सलाह की प्रथम दैत्यगुरु को राजाओं के पास जाने दो इसके बाद तुम आना क्योंकि यह आसुरी बुद्धि का हम दोनों के मध्य में ही शान्ति से रहेगा। इसलिये बुध के बाद शुक्र आये और उसको भी सूर्य चन्द्र ने तुला व वृष अर्पण की। इसके पीछे भौम नेता उपस्थित हुआ तो इसको भी मेष वृश्चिक राशि पर अधिकार मिला। इसी क्रम से गुरु को व शनि को भी दो-दो राशियाँ अधिकार के लिये मिलीं। होरा मकरन्द में कहा है—

'कण्ठीरवं विक्रमिणं विलोक्य स्वीयं पदं तत्र चकार सूर्यः। मैत्र्या तदासन्नतया कुलीरे निजं बबन्धालयमेणलक्ष्मा। अन्ये ग्रहा गृहयियाचिषया क्रमेण शीतांशुतिग्ममहसो सघनं समीयुः। प्राप्तक्रमेण ददतुर्भवनानि तौ तु ताराग्रहा द्विभवनास्तत एव जाताः' ॥४६॥

भवनाधिप के विना फलादेश में कठिनाई

[1]भवनाधिपात्समस्तं जातकविहितं विचिन्तयेन्मतिमान्।
पतिभिर्विना न गन्तुं पदमपि गन्तुं महाशास्त्रे ॥४७॥

अब राशियों के स्वामी के ज्ञान विना फलादेश में कठिनाई होती है यह कल्याणवर्मा के मत से कहते हैं।

बुद्धिमान् ज्योतिषी को इस महान् होराशास्त्र में वर्णित फलादेश को भावाधिपति के आधार पर ही विचार करना चाहिये। क्योंकि भावेशों के विना इस जातक शास्त्र में एक पद भी चलना अशक्य है

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'भवनाधिपैः समस्तं' तथा श्लोक के तृतीय चरण में 'एभिर्विना न शक्यं' यह पाठान्तर उपलब्ध होता है। मेरी दृष्टि में प्रकाशित पुस्तक का ही पाठ उचित प्रतीत होता है, क्योंकि 'भवनाधिपात्' इस पञ्चमी का कोई अर्थ सिद्ध नहीं होता तथा 'गन्तुं' इस पद की द्विरावृत्ति का भी कोई तात्पर्य नहीं है ॥४७॥

एतत् (ल्) लग्नेस (श) स्य स्तुतिपरं ज्ञेयम्।

यह सारावलीकार का वचन राशीशों को प्रशंसा में किया गया है।

अत्र नवांशगणना स्पष्टोक्ता गर्गजातके—

मेषकेसरिचापानां मेषाद्या नवमांशकाः।
वृषकन्यामृगांशाश्च मकराद्या नवांशकाः ॥४८॥
तुलामिथुनकुम्भानां तुलाद्या नवभागकाः।
ककटालिझषाणां च कर्कटाद्या नवांशकाः ॥४९॥ इति।

गर्ग जातक में स्पष्ट रीति से नवांश गणना मिलती है। अब उसी को कहते हैं—

मेष, सिंह धनु राशि में प्रथम नवांश मेष राषि का, द्वितीय वृष का, इसी प्रकार आगे भी वृष, कन्या, मकर, राशियों में प्रथम नवांश मकर का, द्वितीय कुम्भ का इत्यादि।

---

१. सारावली ३ अ० १२ श्लो०।

Copyrighted material

तुला, मिथुन, कुम्भ में तुला से और कर्क, वृश्चिक, मीन राशियों में कर्क राशि से नवांश प्रारम्भ होता है ॥४८-४९॥

**विशेष**—ये दोनों पद्य बृहज्जातक (१ अ० ६ श्लो०) की भट्टोत्पली टीका में प्राप्त होते हैं, किन्तु पाठान्तर इस प्रकार मिलता है—'मेषकेसरिधन्वीनां मेषाद्या अंशकाः स्मृताः। वृषकन्यामृगाणां च मकराद्या नव स्मृताः।''''तुलाद्या नवकीर्तिताः' ॥

अत्र नवांशप्रमाणं विंशतिकलास्त्रयोंऽशाः ३।२०। ते यावन्तो भुक्तास्तावन्तस्त्याज्याः। पूर्वोक्तगणनाक्रमेण वर्तमाननवांशराशिस्वामी नवपतिः स्यादिति। षड्वर्गप्रयोजनं गर्गवाक्येन पूर्वमेव प्रदर्शितम्।

एक नवांश में तीन अंश बीस कला होती हैं क्योंकि एक राशि में ३० अंश होते हैं और ३० अंशों के ९ भाग करने पर एक भाग ३ अं० २० कला ही होता है। अभीष्ट स्पष्ट राश्यंश में जितने नवांश ३।२० क्रम से व्यतीत हो गये हों उनका त्याग करके वर्तमान नवांश राशि स्वामी ही नवांश पति होता है ऐसा जानना चाहिये। षड्वर्ग का क्या प्रयोजन है, यह पहिले गर्ग के वचन से बतला दिया है।

अथ द्वादशांश-द्रेष्काण-होरा-त्रिंशांशकानाह वराहः—

[1]स्वगृहद्वादशभागा द्रेष्काणाः प्रथमपञ्चमनवमानाम्।
होरे विषमेऽर्केन्द्वोः समराशौ चन्द्रतोक्ष्णांशोः ॥५०॥
[2]कुजयमजीवज्ञसिताः पञ्चेन्द्रियवसुमुनीन्द्रियांशानाम्।
विषमेषु समर्क्षेषूत्क्रमेण त्रिंशांशकाः कल्प्याः ॥५१॥

अब द्वादशांश, द्रेष्काण, होरा, त्रिंशांश का ज्ञान आचार्य वराह मिहिर के बतलाये हुए मार्ग से कहते हैं।

**द्वादशांश**—इसका अर्थ होता है बारह भाग अर्थात् एक राशि में तीस अंश होते हैं। यदि तीस में १२ का भाग दिया जाय तो एक भाग में २ अंश ३० तीस कला होती है। बारह राशियों में यह द्वादशांश अपनी-अपनी राशियों से प्रारम्भ होता है।

**द्रेष्काण**—इसका अर्थ है कि तीन भाग अर्थात् प्रत्येक राशि के तीन हिस्सा करने पर एक भाग में १० अंश होते हैं। प्रत्येक राशि में प्रथम द्रेष्काण उसी राशि का होता है, तथा दूसरा द्रेष्काण उस राशि से पञ्चम राशि का और तीसरा द्रेष्काण इष्ट राशि से नवीं राशि का होता है।

**होरा**—'होरेति लग्नं भवनस्य चार्धम्' होरा यह लग्न अर्थात् राशि की और राशि के आधे भाग की संज्ञा है। षड्वर्ग विचार में अर्थात् यहाँ पर राशि = ३० अंश के आधे भाग को कहते हैं। तात्पर्य यह है कि एक राशि के दो भाग करने पर १५-१५ अंश की होरा संज्ञा होती है।

विषम राशियों १, ३, ५, ७, ९, ११ में पहिले पन्द्रह अंश तक सूर्य की और सोलह से तीस अंश तक चंद्रमा की होरा होती है। सम राशियों २, ४, ६, ८, १०,

---

१. लघुजातक १ अ० ९ श्लो०।
२. ,, १ अ० १० श्लो०।

Copyrighted material

१२ में इसके विपरीत अर्थात् प्रारम्भ के पन्द्रह अंश तक चन्द्रमा की और १६-३० अंश तक सूर्य की होरा होती है।

त्रिंशांश—इसका तात्पर्य है कि तीस भाग किन्तु जातक शास्त्र के ग्रन्थों में ऐसा नियम न होकर एक राशि के पाँच हिस्से हो किये हैं। वे भी एक रीति से नहीं है।

विषम सम राशि के भेद से असमान भाग निम्न प्रकार से किये हुए प्राप्त होते हैं। जैसे विषम राशियों [मे०, मि०, सिंह, तुला, धनु, कुम्भ] में प्रथम भाग १ से ५ अंश तक, दूसरा ६ से १० तक, तीसरा ११ से १८ तक, चौथा १९ से २५ अंश तक और पाँचवाँ २६ अंश से ३० तक होता है।

सम राशियों [वृ० क० क० वृ० म०मी०] में प्रथम भाग १ से ५ अंश तक, दूसरा ६ से १२ अंश तक, तीसरा १३ से २० अंश तक, चौथा २१ से २५ अंश तक और पाँचवाँ २६ से तीस अंश तक होता है।

इन विषम सम राशियों के पाँच-पाँच भागों के स्वामी ग्रह निम्न प्रकार से होते हैं। जैसे—विषम राशियों में प्रथम भाग का स्वामी भौम, २ रे का शनि, ३ रे का गुरु, चौथे का बुध और पाँचवें भाग का शुक्र होता है तथा सम राशियों में प्रथम भाग का शुक्र, द्वितीय का बुध, तृतीय का गुरु, चौथे का शनि और पाँचवें का भौम होता है ॥५०-५१॥

त्रिंशांशके राशिज्ञानं होरासारे—

विषमे गृहेऽस्य विषमो राशिः समभे समो ज्ञेय इति। अत्र समराशौ ग्रहाणामंशानाञ्च वैपरीत्यं ज्ञेयम्।

होरासार नामक ग्रन्थ में त्रिंशांश ज्ञानार्थ कहा है कि विषम घर में विषम व सम में सम राशि का त्रिंशांश होता है। यहाँ पर अर्थात् सम राशि में ग्रह व अंशों की विपरीतता होती है। ऐसा समझना चाहिए।

तथा च श्रुतिकीर्तिः[1]—

पञ्चाथ पञ्च चाष्टौ सप्त च पञ्चैव ओजभु (भ) वनेषु।
धरणीसुतमन्दसुरगुरुबुधशुक्राणां क्रमेणांशाः ॥५२॥
पञ्चैव सप्त चाष्टौ पञ्च पंचाथ युग्मभवनेषु।
[भागा] भार्गवशशिसुतसुरेज्यमन्दभूमिपुत्राणाम् ॥५३॥

आचार्य श्रुतिकीर्ति ने भी 'विषम राशियों में ५, ५, ८, ७, ५ इस प्रकार पाँच भाग करके क्रम से भौम, शनि, गुरु, बुध, शुक्र ये स्वामी ग्रह होते हैं ऐसा कहा है।

तथा सम राशियों में ५, ७, ८, ५, ५, ये भाग करके क्रम से शुक्र, बुध, गुरु, शनि; भौम ग्रहों को अधिप कहा है ॥५२-५३॥

यत्तु कल्याणवर्मा—

[2]शरपञ्चाष्टमुनीन्द्रियभागास्त्रिंशांशकास्तु विषमेषु।
युग्मेषूत्क्रमगत्या कुजार्किजीवज्ञशुक्राणाम् ॥५८॥

---

१. ये श्रुतिकीर्ति के वचन वृहज्जातक (१ अ० ७ श्लो०) की भट्टोत्पली टीका में प्राप्त हैं। २. सारावली (३ अ० १३ श्लो०) पाठान्तर 'षूत्क्रमगण्याः' मात्र है।

Copyrighted material

इत्यूचे, तच्चिन्त्यम् । यतो युग्मेषूत्क्रमगत्या भागा एव विपरीताः एषां ग्रहाणामित्यलाभेन श्रुतिकीर्तिवचनविरोधादिति ।

जो कि कल्याणवर्मा ने अपने सारावली ग्रन्थ में 'शरपञ्चा' इत्यादि पद्य में कहा है वह त्याज्य है क्योंकि सम राशियों में विपरीत भाग मानने पर यह ग्रह क्रम से स्वामी नहीं हो सकते तथा श्रुतिकीर्ति के वचन से विरोध उत्पन्न होता है कि सम राशियों में भौमादि स्वामी न होकर शुक्रादि प्रथमादि भाग के स्वामी होते हैं ।

**विशेष**—मेरी दृष्टि में यदि कल्याण वर्मा के वचन में 'उत्क्रमगत्या' यह अधिपों के साथ भी अन्वय कर लिया जाय तो कोई विरोध नहीं है अर्थात् यहाँ पर यही आशय है ॥५२॥

अत्र द्वादशांशप्रमाणं सार्द्धद्वयमंशाः ।३०' । द्रेष्काणं दशांशाः १०° ।
होराप्रमाणं पञ्चदशांशाः १५ । इति ।

एक द्वादशांश २ अंश ३० कला का, एक द्रेष्काण १० अंश का और प्रत्येक राशि में एक होरा १५ अंश की होती है ।

यवनाचार्यस्तु होराद्रेष्काणस्वामिन अन्यथा आह—

[1]आद्या तु होरा भवनस्य पत्युरेकादशक्षेत्रपतेर्द्वितीया ।
स्वद्वादशैकादशराशिपानां द्रेष्काणसंज्ञाः क्रमशस्त्रयोऽत्र ॥५५॥

अब यवनाचार्यजी के मत से पूर्वोक्त से विपरीत होरा व द्रेष्काण स्वामियों को कहते हैं । यवनाचार्य जी प्रत्येक राशि में प्रथम होरा उसी राशीश की व द्वितीय होरा उस राशि से ग्यारहवें राशीश की होती है, ऐसा कहते हैं ।

द्रेष्काण के विषय में प्रथम द्रेष्काणेश उसी राशि के स्वामी का, द्वितीय उस राशि से बारहवीं राशि का स्वामी और तीसरा द्रेष्काणेश विचारणीय राशि से ग्यारहवीं राशि का स्वामी होता है ॥५३॥

बृहज्जातक में कहा है—'केचित्तु होरां प्रथमां भपस्य वाञ्छन्ति लाभाधिपतेर्द्वितीयाम् । द्रेष्काण-संज्ञामपि वर्णयन्ति स्वद्वादशैकादशराशिपानाम्' (१ अ० १२ श्लोक) ॥५५॥

सत्याचार्यस्य तु पूर्वमतमेवाभिप्रेतम् । यदाह सत्यः—

[2]ओजेषु रवेर्होरा प्रथमा युग्मेषु चोत्तरा शेषाः ।
इन्दोः क्रमशो ज्ञेया जन्मनि चेष्टौ स्वहोरास्थौ ॥५६॥
राशिस्तद्द्रेष्काणस्तत्पञ्चमनवमभवनपतयः स्युः ।
तेषामधिपतयश्च स्वस्वद्रेष्काणगा बलिनः ॥५७॥

सत्याचार्य जी ने तो पूर्व कथित होरा द्रेष्काण के पक्ष को स्वीकार करके कहा है कि विषम राशियों में प्रथम सूर्य की व दूसरी चन्द्रमा की तथा सम राशियों में प्रथम चन्द्रमा की व द्वितीय सूर्य की होरा होती है । द्रेष्काण पहिला उसी का, दूसरा पाँचवीं राशि का और तीसरा नवीं राशि का होता है ॥५६-५७॥

**विशेष**—इस सत्याचार्य के वचन का पाठान्तर भट्टोत्पली टीका में निम्न प्रकार से

---

१. बृहज्जातक (१ अ० १२ श्लो०) भट्टोत्पली टीका में उपलब्ध है ।
२. बृहज्जातक (१ अ० १२ श्लो०) की भट्टोत्पली टीका में प्राप्त है ।

Copyrighted material

उपलब्ध है। 'राशिपतेर्द्रेष्काणस्तत्पञ्चमनवमभवनपतयः स्युः। तेषामधिपतयः स्वस्व-दृक्काणे ग्रहा बलिनः' ॥५४-५५॥

अत्र बहुमुनिसम्मतत्वादेतदेव प्रमाणम्। पूर्वपक्षः एकसम्मतत्वादुपेक्ष्यः।

यहाँ होरा द्रेष्काण के निर्णय में अधिक ऋषियों से सम्मत श्री सत्याचार्य का मत ही ठीक है। पहिला पक्ष अर्थात् यवनाचार्य जी का मत एकाकी होने से त्याज्य है।

अब सत्याचार्य जी के मत में अन्य ऋषियों के सम्मत वाक्यों कहते हैं।

तथा च कश्यपः—

होरार्केन्द्वोरोजराशौ युग्मभे चन्द्रसूर्ययोः।
लग्नपञ्चनवक्षेत्रनाथा द्रेष्काणपाः क्रमात् ॥५८॥

नारदोऽपि—

होरारवीन्द्वोरोजर्क्षे समभे चन्द्रसूर्ययोः।
स्युर्द्रेष्काणा लग्नपञ्चनवराशीश्वराः क्रमात् ॥५९॥

सूर्यजातके सूर्योऽपि—

होराधिपोऽहं चन्द्रश्च विषमेष्वपि राशिषु।
युग्मे व्यस्तविधिः सूत होरोक्ता भदलं बुधैः ॥६०॥
राशेस्त्रिभागा द्रेष्काणाः प्रागंशाधिपतिस्तनोः।
अधिपोऽथ द्वितीयस्य पञ्चमाधिपतिः स्मृतः ॥६१॥
एवमन्त्यत्रिभागस्य नवमाधिपतिः प्रभुः।

प्रथम कश्यप ऋषि के मत से होरा व द्रेष्काण जानने के प्रकार को कहते हैं। कश्यप ऋषि का कहना है कि विषम राशियों में पहिली होरा सूर्य की व दूसरी चन्द्र की होती है। सम राशियों में प्रथम होरा चन्द्रमा की और द्वितीय सूर्य की होती है।

प्रथम द्रेष्काण विचारणीय राशि का, दूसरा उससे पञ्चम राशि का और तीसरा द्रेष्काण विचारणीय राशि से नवीं राशि का होता है।

नारद ऋषि ने भी इसी प्रकार से वर्णन किया है।

सूर्य जातक में भगवान सूर्य ने भी कहा है—विषम राशियों में पहिली होरा का स्वामी मैं हूँ तथा दूसरी का स्वामी चन्द्रमा होता है। सम राशियों में इसके विपरीत अर्थात् प्रथम का चन्द्र और द्वितीय का सूर्य स्वामी होता है। राशि के आधे हिस्से को होरा कहते हैं।

राशि के तृतीय भाग (१० अं०) को द्रेष्काण कहते हैं। प्रथम द्रेष्काणेश इष्ट राशीश का, द्वितीय इष्ट राशि से पाँचवीं राशि का और तृतीय द्रेष्काणेश इष्ट राशि से नवीं राशि का स्वामी ग्रह होता है।

**विशेष**—इसी प्रकार से अन्य जातक ग्रन्थों में भी होरा व द्रेष्काण का ज्ञान वर्णित है। उत्तरकालामृत में होरानयन तो उक्त रीति से ही उपलब्ध है किन्तु द्रेष्काण ज्ञान में यवनों से भी भिन्न मार्ग का आश्रय किया है।

यथा—'अर्केन्द्वोर्विषमेऽन्यथा समगृहे होरेऽथ द्रेक्काणके लग्नेष्वङ्गृहेश्वराश्चरगृहे



Copyrighted materi

भाग्येश्वरात्स्युः स्थिरे ॥७॥ पुत्रेशाच्च त एव तु द्वितनुभे' (प्रथम काण्ड २ प्रकरण ७ श्लोक०)।

अर्थात् चर राशियों (मेष, कर्क, तुला, मकर) में प्रथम द्रेष्काणेश उसी (विचारणीय) राशि स्वामी का, द्वितीय द्रेष्काणेश उस राशि से पञ्चम राशीश का और तृतीय उस राशि से नवम राशीश का होता है।

स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) में प्रथम द्रेष्काणेश इष्ट राशि से नवम राशीश का, द्वितीय उसी (इष्ट) राशीश का और तृतीय उस राशि से पञ्चम राशीश का होता है।

द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) में प्रथम द्रेष्काणेश उस राशि से पञ्चम राशि स्वामी का, दूसरा उस राशि से नवम राशि स्वामी का और तीसरा द्रेष्काणेश उसी राशि के स्वामी का होता है ॥५६-५९॥

अथ जातके सप्तमांशस्याप्युपयोगात् तमप्याह श्रीभगवान्सूर्यः—

ओजराशौ स्वरांशाद्या युग्मे सप्तमतो मताः।
सप्तमांशाधिपतयः सम्यक् सूत मयोदिताः ॥६२॥

इस जातक शास्त्र में सप्तमांश का भी उपयोग होता है इस कारण से भगवान् सूर्य के द्वारा कथित सप्तमांश के स्वामियों को कहते हैं।

विषम राशियों में इष्ट राशि से सप्तमांश प्रारम्भ होता है तथा सम राशियों में इष्ट राशि से सप्तम जो राशि होती है उसी से सप्तमांश प्रारम्भ होता है ॥६२॥

कल्याणवर्माऽपि—

[1]मेषालिमिथुनमृगहरिमीनतुलावृषभचापधराः ।
कर्कीघटभृत्कन्यापूर्वा स्युः सप्तभागेशाः ॥६३॥

सप्तवर्गप्रयोजनन्तु—

क्रूरेषु जाताश्च शठस्वभावाः सौम्येषु जाताः प्रभवन्ति सौम्याः।

तथा—

[2]अंशकाज्ज्ञायते द्रव्यं द्रेष्काणैस्तस्कराः स्मृताः ॥ इत्यादिकमूलम्।

आचार्य कल्याण वर्मा ने भी अपने सारावली ग्रन्थ में स्पष्ट रीति से सप्तमांश ज्ञान का वर्णन किया है। जैसे—

मेष राशि में प्रथम सप्तमांश मेष का, द्वितीय वृष का, तृतीय मिथुन का इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। वृ र राशि में वृश्चिक राशि से अर्थात् सप्तम राशि से सप्तमांश का आरम्भ होता है। मिथुन में मिथुन से, कर्क में मकर से, सिंह में सिंह से, कन्या में मीन से, तुला में तुला से, वृश्चिक में वृष से, धनु में धनु से, मकर में कर्क से, कुम्भ में कुम्भ से और मीनराशि में कन्या राशि से सप्तमांश प्रारम्भ होकर सप्तम राशि तक होते हैं। उक्त राशियों के स्वामी ही सप्तमांश स्वामी होते हैं ॥६३॥

सप्तवर्ग का क्या प्रयोजन होता है इसके उत्तर में ग्रन्थकार का कथन है कि क्रूर

१. सारावली ३ अ० १६ श्लो०। २. षट्पञ्चाशिका ७ अ० १३ श्लो०

Copyrighted material

ग्रह के वर्ग में उत्पन्न जीव का क्रूर (कठिन) स्वभाव और सौम्य वर्ग में उत्पन्न का सरल स्वभाव होता है।

प्रश्न लग्न के नवमांश से नष्ट हुए द्रव्य का अर्थात् किसी की वस्तु का कोई हरण किया हो वा कोई वस्तु खो गई हो, वा कोई वस्तु मन में हो वा मुट्ठी में रख कर पूछें कि वस्तु धातु, मूल, जीवादि में किस कोटि को है तो प्रश्न लग्न के नवमांश से ज्ञात करना चाहिये। लग्नस्थ द्रेष्काण से जातक या चोर की आकृति का ज्ञान तथा लग्नस्थ राशि से काल, दिशा व देश का ज्ञान, लग्नेश से अवस्था व जाति का ज्ञान होता है। इसको समझने के लिये षट् पञ्चाशिका की भट्टोत्पली टीका का अवलोकन करना चाहिये।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली ग्रन्थ में इस सप्तमांशानयन श्लोक का पाठान्तर निम्न प्राप्त है—

मेषालिमिथुनमृगहरिमीनतुलावृषभचापधरकर्की।
घटधरकन्यापूर्वाः सप्तांशानां भवन्तीशाः।।६३।।

### स्पष्टार्थ होरा चक्र

| राशि | मे० | वृ० | मि० | क० | सिं० | क० | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रथम भाग | सू० | चं० | सू० | चं० | सू० | चं० | अंश १—१५ |
| द्वितीय भाग | चं० | सू० | चं० | सू० | चं० | सू० | अंश १६—३० |
| राशि | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं० | मी० | |
| प्रथम भाम | सू० | चं० | सू० | चं० | सू० | चं० | अंश १—१५ |
| द्वितीय भाग | चं० | सू० | चं० | सू० | चं० | सू० | अंश १६—३० |

### स्पष्टार्थ द्रेष्काण चक्र

| राशि | मे० | वृ० | मि० | क० | सिं० | क० | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रथम भाग | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६—१ | अंश से १० अंश तक |
| द्वितीय भाग | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १०—११ | अंश से २० अंश तक |
| तृतीय ,, | ९ | १० | ११ | १२ | १ | २—२१ | अंश से ३० अंश तक |
| राशि | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं० | मी० | |
| प्रथम भाग | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२—१ | अंश से १० अंश तक |
| द्वितीय ,, | ११ | १२ | १ | २ | ३ | ४—११ | अंश से २० अंश तक |
| तृतीय ,, | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८—२१ | अंश से ३० अंश तक |

### स्पष्टार्थ सप्तमांश चक्र

| राशि | मे० | वृ० | मि० | क० | सिं० | क० | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पहिला भाग | १ | ८ | ३ | १० | ५ | १२— | ४°—१७′— ८″ अंशादि तक |
| दूसरा ,, | २ | ९ | ४ | ११ | ६ | १— | ८°—३४′—१७″ अंशादि तक |
| तीसरा ,, | ३ | १० | ५ | १२ | ७ | २— | १२°—५१′—२५′ अंशादि तक |
| चौथा ,, | ४ | ११ | ६ | १ | ८ | ३— | १७°— ९′—३४″ अंशादि तक |
| पाँचवाँ ,, | ५ | १२ | ७ | २ | ९ | ४— | २१°—२५′—४२″ अंशादि तक |

Copyrighted materi

| राशि | मे० | वृ० | मि० | क० | सिं० | क० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| छठा भाग | ६ | १ | ८ | ३ | १० | ५—२५°—४२′—५१″ अंशादि तक |
| सातवाँ ,, | ७ | २ | ९ | ४ | ११ | ६—३०°— ०′— ०″ ,, ,, |

| राशि | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं० | मी० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| पहिला भाग | ७ | २ | ९ | ४ | ११ | ६— ४°—१७′— ८″ अंशादि तक |
| दूसरा ,, | ८ | ३ | १० | ५ | १२ | ७— ८°—३४′—१७′ अंशादि तक |
| तीसरा ,, | ९ | ४ | ११ | ६ | १ | ८—१२°—५१′—२५″ अंशादि तक |
| चौथा ,, | १० | ५ | १२ | ७ | २ | ९—१७°— ९′—३४″ अंशादि तक |
| पाँचवाँ ,, | ११ | ६ | १ | ८ | ३ | १०—२१°—२५′—४२″ अंशादि तक |
| छठा ,, | १२ | ७ | २ | ९ | ४ | ११—२५°—४२′—५१″ अंशादि तक |
| सातवाँ ,, | १ | ८ | ३ | १० | ५ | १२—३०°— ०′— ०″ अंशादि तक |

## स्पष्टार्थ द्वादशांश चक्र

| राशि | मे० | वृ० | मि० | क० | सिं० | क० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| पहिला भाग | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६—२°—३०′ अंशादि तक |
| दूसरा ,, | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७—५°—०′ अंशादि तक |
| तीसरा ,, | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८—७°—३०′ अंशादि तक |
| चौथा ,, | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९—१०°—०′ अंशादि तक |
| पाँचवां ,, | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १०—१२°—३०′ अंशादि तक |
| छठा ,, | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११—१५°—०′ अंशादि तक |
| सातवां ,, | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२—१७°—३०′ अंशादि तक |
| आठवां ,, | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १—२०°—०′ अंशादि तक |
| नवाँ ,, | ९ | १० | ११ | १२ | १ | २—२२°—३०′ ,, ,, |
| दशवाँ ,, | १० | ११ | १२ | १ | २ | ३—२५°— ′ ,, ,, |
| ग्यारहवाँ | ११ | १२ | १ | २ | ३ | ४—२७°—३०′ ,, ,, |
| बारहवाँ | १२ | १ | २ | ३ | ४ | ५—३०°—०′ ,, ,, |

| राशि | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं० | मी० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| पहिला भाग | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२—२°—३०′ अंशादि तक |
| दूसरा ,, | ८ | ९ | १० | ११ | १२ | १—५°—०′ अंशादि तक |
| तीसरा ,, | ९ | १० | ११ | १२ | १ | २—७°—३०′ अंशादि तक |
| चौथा ,, | १० | ११ | १२ | १ | २ | ३—१०°—०′ अंशादि तक |
| पाँचवाँ ,, | ११ | १२ | १ | २ | ३ | ४—१०°—०′ अंशादि तक |
| छठा ,, | १२ | १ | २ | ३ | ४ | ५—१५°—०′ अंशादि तक |
| सातवाँ ,, | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६—१७°—३०′ अंशादि तक |
| आठवाँ ,, | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७—२०°—०′ अंशादि तक |
| नवाँ ,, | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८—२२°—३०′ अंशादि तक |

Copyrighted material

| राशि | तु० | वृ० | ध० | म० | कुं० | मी० | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| दशवाँ भाग | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९—२५°—०′ | अंशादि तक |
| ग्यारहवाँ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १०—२७°—३०′ | अंशादि तक |
| बारहवाँ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११—३०°—०′ | अंशादि तक |

## विषम राशियों का स्पष्टार्थ त्रिंशांश चक्र

| | | मे० | मि० | सिं० | तु० | ध० | कुं० | राशि | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अंशपति | प्रथम भाग | मं० | मं० | मं० | मं० | मं० | मं० | १—५ | अंश तक |
| ,, | द्वितीय | श० | श० | श० | श० | श० | श० | ६—१० | अंश तक |
| ,, | तृतीय | गु० | गु० | गु० | गु० | गु० | गु० | ११—१८ | अंश तक |
| ,, | चतुर्थ | बु० | बु० | बु० | बु० | बु० | बु० | १९—२५ | अंश तक |
| ,, | पञ्चभ | शु० | शु० | शु० | शु० | शु० | शु० | २६—३० | अंश तक |

## सम राशियों का स्पष्टार्थ त्रिंशांश चक्र

| | | वृ० | क० | क० | वृ० | म० | मी० | राशि | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अंशपति | प्रथम भाग | शु० | शु० | शु० | शु० | शु० | शु० | १—५ | अंश तक |
| ,, | द्वितीय | बु० | बु० | बु० | बु० | बु० | बु० | ६—१२ | ,, ,, |
| ,, | तृतीय | गु० | गु० | गु० | गु० | गु० | गु० | १३—२० | ,, ,, |
| ,, | चतुर्थ | श० | श० | श० | श० | श० | श० | २१—२५ | ,, ,, |
| ,, | पञ्चम | मं० | मं० | मं० | मं० | मं० | मं० | २६—३० | ,, ,, |

राशिषु वर्गोत्तमनवांशमाह सत्यः—

चरभवनेष्वाद्यंशाः[1] स्थिरेषु मध्या द्विमूर्तिषु तथान्त्याः।
[2]वर्गोत्तमाः प्रदिष्टास्तेष्विह जाताः कुले मुख्याः ॥६४॥

अब राशियों में वर्गोत्तम नवांश का विचार सत्याचार्य जी के मत से कहते हैं।

वर्गोत्तमाः वर्गेषु (षड्, सप्त, दश वा षोडशवर्गेषु) उत्तमाः श्रेष्ठाः प्रधाना, इत्यर्थः।

६ ७, १०, १६ वर्गों में जो श्रेष्ठ वर्ग अर्थात् नवांश वर्ग उसमें भी जो उत्तम नवांश राशियों में होता है उसको सर्वोत्तम नवांश कहते हैं।

चर राशियों (मेष, कर्क, तुला, मकर) में प्रथम नवांश, स्थिर राशियों (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ) में मध्य नवांश अर्थात् पाँचवाँ नवांश और द्विस्वभाव राशियों (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) में अन्तिम नवांश वर्गोत्तम नवांश होता है। स्वराशि अर्थात् अपनी राशि का नवांश ही वर्गोत्तम नवांश होता है। जैसे मेष राशि में मेष का, वृष में वृष का, मिथुन में मिथुन का इसी क्रम से आगे भी जानना चाहिये ॥६४॥

स्पष्टञ्च तदुक्तं यवनेन[3]—

स्वे स्वे गृहेषु स्वगृहांशका ये वर्गोत्तमास्ते मुनिभिर्निरुक्ता। इति।

इस वर्गोत्तम नवांश का कथन यवनाचार्य ने स्पष्टतापूर्वक किया है कि अपनी-अपनी राशियों में अपनी राशि का जो नवांश होता है उसे वर्गोत्तम नवांश कहते हैं।

---

१. भवने चाद्यंशः पु० में पाठ है। २. बृ० जा० (१ अ० १४ श्लो०) की भटोत्पली में मिलता है। ३. बृ० जा० (१ अ० १४ श्लो०) की भट्टोत्पली में उपलब्ध है।

Copyrighted material

प्रयोजनन्तु—

[1]स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशकभत्रिभागगैरित्यादि ।

इस वर्गोत्तम नवांश का क्या प्रयोजन होता है । इसका उत्तर यह है कि ग्रहों की आयु के आनयन में यदि ग्रह अपने वर्गोत्तम नवांश में उपलब्ध हो तो ग्रहागत आयु वर्षादि को दो गुणा करके ग्रहण करना चाहिये । अन्य भी वर्गोत्तम नवांश में स्थित ग्रह शुभ फलदायक होता है एवं लग्नस्थ होने पर जातक प्रधान या श्रेष्ठ पुरुष होता है ऐसा मेरा व्यक्तिगत अनुभव है ।

मेष (षादि) राशिषु ह्रस्वादिसंज्ञामाह वृद्धयवनः—

[2]आद्यन्तराशेरुदयप्रमाणे द्वौ द्वौ मुहूर्तौ नियतं प्रदिष्टौ ।
क्रमोत्क्रमाभ्यामधिकं शरांशश्चक्रार्धयोर्विद्धयुदयप्रमाणम् ॥६५॥
एवं प्रमाणानि गृहाणि विद्धि ह्रस्वानि मध्यानि तथाऽयतानि ।
चक्राङ्गभेदैः सदृशाकृतीनि चाङ्गप्रमाणानि विकल्पयेति ॥६६॥

अथायमुदयप्रमाणोऽङ्गह्रस्वादिः न वास्तविकः ।

'पूर्वार्द्धे[3] विषयादयः कृतगुणा मानम्' इति वराहोक्तमानमप्येतादृशं ज्ञेयम् ।

अब मेषादि १२ राशियों की ह्रस्व; मध्य और दीर्घ संज्ञा वर्णन करते हैं ।

आदि अर्थात् मेष, अन्त अर्थात् मीन, इन दो राशियों के उदय प्रमाण दो-दो मुहूर्त नियत हैं अर्थात् 'मुहूर्त' घटिकाद्वयम्' प्रत्येक का चार घटी प्रमाण उदय होता है । इन दोनों के प्रमाणों को पाँच आदि संख्या से गुणने पर अर्थात् ५, ६, ७, ८, ९, १० से गुणने पर मेष राशि से क्रम बार और मीन से विपरीत ६, ६ राशियों के उदय प्रमाण होते हैं—

जैसे—५ × ४ = मे० २० मी०
६ × ४ = वृ० २४ कुं०
७ × ४ = मि० २८ म०
८ × ४ = क० ३२ ध०
९ × ४ = सिं ३६ वृ०
१० × ४ = क० ४० तु०

इन उदय प्रमाणों के आधार पर मेष, वृष, कुम्भ, मीन राशियों की ह्रस्व, मिथुन, कर्क, धनु, मकर की मध्य, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक राशि की दीर्घ संज्ञा होती है । किन्तु ये राशियों के उदय प्रमाण लग्नानयन के लिए सब स्थानों में उचित नहीं हैं । यहाँ पर जातक के दीर्घ मध्य ह्रस्व अङ्गादि ज्ञान के लिये ही कहा है ॥६५-६६॥

तथा यह उदय प्रमाण वराह मिहिर के अनुकूल है अर्थात् वराह मिहिर ने भी इसी प्रकार वर्णन किया है ।

---

१. बृहज्जातक ७ अ० ११वाँ श्लोक है । तथा भट्टोत्पली (१ अ०१४ श्लो०) में प्राप्त है । २. बृहज्जातक (१ अ० १९ श्लो०) भट्टोत्पली में ये पद्य प्राप्त हैं । ३. बृहज्जातक का (१ अ० १९ श्लो०) पद्य है ।

Copyrighted material

**विशेष**—भट्टोत्पली टीका में जो पाठान्तर उपलब्ध होता है वह निम्न प्रकार से है—क्रमोत्क्रमाभ्यामधिपञ्चमं स्याच्चक्रार्ध·····ग्रहाणि बुद्ध्वा····· विकल्पयेत ॥६७॥

एतत्स्पष्टमाह कल्याण वर्मा—

[1]ह्रस्वा वृषमीनाजघटा मिथुनधनुः कर्किमृगमुखाश्च समाः ।
वृश्चिककन्यामृगपतिवणिजो दीर्घाः समाख्याताः ॥६७॥
एभिर्लग्नादिगतैः शीर्षप्रभृतीनि नरशरीराणि ।
सदृशानि विज्ञायान्तःस्थितगगनचरश्च तुल्यानि ॥६८॥

इन बारह राशियों की ह्रस्वादि संज्ञा का वर्णन कल्याण वर्मा ने अपने सारावली नामक ग्रन्थ में स्पष्ट रीति से किया है—

वृष, मीन, मेष, कुम्भ की ह्रस्व, मिथुन, धनु, कर्क मकर की सम और वृश्चिक, कन्या, सिंह, तुला राशियों की दीर्घ संज्ञा होती है ।

इन ह्रस्वोदयादि राशियों में जिसका जन्म होता है उस जातक के लग्नादि क्रम से शीर्षादि अवयव को जानकर तत्तदवयव का ज्ञान करना चाहिये । अर्थात् पूर्वोक्त काल-पुरुष के अङ्ग विभाजन से जिस अङ्ग में जिस प्रकार की राशि हो तदनुरूप वह अङ्ग जातक का होता है ॥६६॥

विशेष—इन पद्यों के प्रकाशित सारावली ग्रन्थ में और भट्टोत्पली टीका में जो पाठान्तर उपलब्ध हैं वह निम्न प्रकार से हैं—प्रकाशित में—ह्रस्वास्तिमिगोजघटा····
·····शीर्षप्रभृतीनि वै शरीराणि । सदृशानि विजायन्ते युतगगनचरैश्च तुल्यानि । तथा भट्टोत्पली में—ह्रस्वास्तिमिगोजघटा···। शीर्षप्रभृतीनि सर्वजन्तूनाम् । सदृशानि च जायन्ते गगनचरैश्चैव तुल्यानि' मेरी दृष्टि में इन पाठान्तरों से अर्थ में कोई भेद प्रतीत नहीं होता है ।

इन ह्रस्वादि संज्ञाओं का वर्णन जातक पारिजात में कुछ विपरीत इस प्रकार से उपलब्ध होता है—'ह्रस्वा गोऽजघटाः समा मृगनृयुक्चापान्त्यकर्काटकाः' (१अ० १३श्लो०) इस वाक्य में मीन राशि की संज्ञा सम प्राप्त है किन्तु गणित की युक्ति से लङ्कोदय मेष व मीन के समान ही होते हैं इस लिये मेरी दृष्टि में मीन राशि की ह्रस्व ही संज्ञा उचित है ॥६७-६८॥

एतत्स्पष्टतरमाह सत्यः—

[2]दीर्घाधिपतिर्दीर्घे गृहे स्थितोऽवयवदीर्घंकृद्भवति ।
एवं युक्त्याऽवयवा लघुमध्याः कल्पनीयाश्च ॥६९॥

इन ह्रस्वादि अवयवों का ज्ञान अत्यन्त स्पष्टता पूर्वक सत्याचार्य जी ने किया है—कालपुरुष के अवयव ज्ञान पूर्वक जातक के जिस अंग में जो राशि उपलब्ध हो उस राशि का स्वामी ग्रह भी यदि उसी ह्रस्वादि संज्ञा वाली राशि में हो तो वह अंग जातक का तदनुरूप होता है । उदाहरणार्थ यदि लग्न में दीर्घ संज्ञक राशि है तथा लग्नेश भी

१. सारावली (३ अ० ३७–३८ श्लो०) । २. बृ० जा० की (१ अ० १९ श्लो०) भट्टोत्पली में अर्ध श्लोक ही उपलब्ध है ।

Copyrighted material

दीर्घ संज्ञक राशि में हो तो सिर दीर्घ होता है। ह्रस्व संज्ञक का स्वामी ह्रस्व में हो तो ह्रस्व और सम संज्ञक का स्वामी सम संज्ञक में हो तो वह जातक का अवयव समान अर्थात् न बड़ा न छोटा होता है ॥६९॥

स्पष्टार्थ ह्रस्व-सम-दीर्घ चक्र

| मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं | मी. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ह्रस्व | ह्रस्व | सम | सम | दीर्घ | दीर्घ | दीर्घ | दीर्घ | सम | सम | ह्रस्व | ह्रस्व |

अथ ग्रहाणामुच्चराशयः ।

तत्र वराहः—

[1]अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा झषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।
दश-शिखि-मनुयुक्-तिथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥७०॥

सूर्यस्य मेष राशिः, उच्चं, स च दशमेंऽशे परमोच्चः । चन्द्रस्योच्चराशिः वृषस्तृतीयेंऽशे परमोच्चः । एवमन्यत्रापि ।

अब किस ग्रह की कौन सी उच्च राशि होती है और कौन सी नीच राशि है तथा उस उच्च नीच राशि में कितने अंश पर परम उच्च व परम नीच होता है इसको ग्रन्थकार वराह कथित वचन से बतलाते हैं—

सूर्य की मेष राशि उच्च व मेष के दशवें अंश में परमोच्च; चन्द्रमा की वृष राशि उच्च है तथा इसी के तीसरे अंश में परमोच्च स्थान ग्रह का होता है। इन उच्च राशियों से सातवों राशि ग्रह की नीच राशि होती है और नीच राशि में परमोच्चांश तुल्य अंश में परम नीच स्थान ग्रह का होता है। आगे दिये हुए चक्र से सरलता पूर्वक समस्त ग्रहों के उच्चादि का ज्ञान [illegible] में प्रस्तुत है ॥७०॥

तथा च यवनेश्वरोऽपि—

[2]सूर्यस्य भागे दशमे तृतीये चन्द्रस्य जीवस्य तु पञ्चमेंऽशे ।
शुक्रस्य विंशे त्वधिसप्तके च विद्यात्तथा पञ्चदशे बुधस्य ॥७१॥
भौमस्य विंशेऽष्टयुते च नूनं विंशे तथा सूर्यसुतस्य चोच्चम् ।
स्वोच्चात्तु यामित्रमुशन्ति नीचं त्रिंशल्लवो यश्च समानसङ्ख्यः ॥७२॥
एवं गणितनिमित्तं परमोच्चं परमनीचञ्च ज्ञेयम् ।

अन्यत्र 'रूपं स्वोच्चे, चरणरहितं स्वमूलत्रिकोणे स्वभेऽर्धम्' इत्यादौ दशमांशपर्यन्तं मेषे परमोच्चमर्कस्य । वृषे अंशत्रयपर्यन्तपरमोच्चमिन्दोः । अन्यथा चन्द्रस्य वृषे उच्चमूलत्रिकोणयोः सत्वेन तृतीयेंऽशे रूपं चतुर्थांशात्त्रिंशांशं चरणहितं पूर्वं पूर्वांशद्वये बलाभावप्रसक्तेः । एवमेव कन्यायां बुधस्य चतुर्दशांशपर्यन्तं बलाभावः । एवं राजयोगादौ उच्चपदेन संपूर्णराशिर्ज्ञेयः । परमोच्चपदेन सूर्यादीनां दशशिखीत्यादिपदेन सर्वे भागा ज्ञेयाः ।

---

१. बृहज्जातक (१ अ० १३ श्लो०) २. बृहज्जातक (१ अ० १३ श्लो०) भट्टो० में प्राप्त है।

Copyrighted material

अत एव वृद्धयवनेन राजयोगेषु 'स्वोच्चेषु स्वोच्चान् भागान्' इति बहुवचनेन सर्वेषां स्वोच्चत्वेन गृहीतत्वान्नैकोंऽश इति तत्त्वम् ।

अब यवनेश्वर आचार्य के वचन से भी ग्रहों की उच्च नीचादि राशियों को कहते हैं ।

सूर्य अपनी उच्च राशि में दशवें तक, चन्द्रमा वृष राशि में तीसरे अंश तक, कर्क में गुरु पांच अंश तक, मीन में शुक्र २७ अंश तक, कन्या में बुध १५ अंश तक, मकर में भौम २८ अंश तक और शनि तुला राशि में २० अंश तक उच्च का फल प्रदान करता है ।

अपनी-अपनी उच्च राशि से सप्तम राशि नीच तथा उच्चांश तुल्य अंश तक नीच जन्य फल होता है ॥७१-७२॥

परम उच्च परम नीच संज्ञा का प्रयोजन गणित के लिए है । जैसे अपनी उच्च राशि में फल पूर्ण, अपनी मूल त्रिकोण राशि में $\frac{3}{4}$, अपनी राशि में आधा इत्यादि ।

मेष राशि में सूर्य १० अंश तक परमोच्च तथा वृष राशि में चन्द्र तीन अंश तक परमोच्च में होता है । यदि ऐसा न होकर केवल १०वें ही अंश में सूर्य और चन्द्रमा को केवल तीसरे ही अंश में परमोच्च में मान लिया जायगा तो चन्द्रमा को वृष राशि उच्च व मूलत्रिकोण दोनों ही होने से तीसरे अंश में परमोच्च का फल और चतुर्थ अंश से तीस अंश तक मूलत्रिकोण का फल होगा । पूर्व के दो अंशों में फलाभाव हो जायगा । इस कारण से १-३ अंश तक परमोच्च संज्ञा ग्रंथकार के मत से ज्ञात होती है । इसी प्रकार कन्या राशि में बुध चौदह अंश तक निर्बल हो जायगा ।

**विशेष**—राजयोगादि विचार करने के लिये उच्च पद से संपूर्ण राशि समझनी चाहिये । तथा परमोच्च पद से १०, ३ इत्यादि अंश तक जानना चाहिए । इसलिये वृद्धयवनाचार्य ने राजयोगादि विचार में उच्च राशि में उच्च भागों को लेना चाहिये इस बहुवचन से समस्त राशि की उच्च संज्ञा मानी है, ऐसा प्रतीत होता है । न कि किसी अंश की उच्च संज्ञा है ।

स्वोच्चांश-स्वोच्चराश्योर्भिन्नप्रयोजनमाह गर्गः—

स्वोच्चगौ रविशीतांश जनयेतां महीपतिम् ।
उच्चस्थौ धनिनं ख्यातं स्वत्रिकोणगतावपि ॥७३॥

वृद्धयवनोऽपि—

स्वोच्चेषु स्वोच्चान् परिगृह्य भागान् तिष्ठत्सु सर्वेषु बलाधिकेषु ।
लग्ने शुभे पूर्णवपुष्मतीन्दौ त्रैलोक्यराज्याधिपतिः प्रसूतौ ॥७४॥

श्रीगर्गाचार्य जी ने स्वोच्चांश अर्थात् अपना परम उच्चांश और अपनी उच्च राशि का अन्य प्रयोजन बतलाया है—

जिस जातक की कुण्डली में सूर्य और चन्द्रमा परमोच्चांश में होते हैं वह राजा होता है तथा जिसकी कुण्डली में उच्च राशि में व मूल त्रिकोण राशि में भी सूर्य चन्द्र होते हैं वह जातक धनी होता है ॥७३॥

Copyrighted material

तथा वृद्धयवनाचार्य ने भी कहा है—जिस जातक की कुण्डली में चन्द्रमा को छोड़ कर समस्त अन्य ग्रह यदि अपनी-अपनी उच्च राशियों में स्थित होकर परमोच्चांश में हों तथा शुभ लग्न में परिपूर्ण चन्द्रमा विद्यमान हो तो तीनों लोकों का स्वामी (राजा) होता है ॥७४॥

**विशेष**—मेरे विचार से यह योग कुण्डली में घटित होना असंभव है। क्योंकि गणित की युक्ति से बुध शुक्र में इतना अन्तर सिद्ध नहीं होता है।

अत्र स्वोच्चांशा एव प्रधानतया उक्ताः। उच्चात्सप्तमराशौ तैरेव भागैः परमनीचं ज्ञेयम्। उक्तञ्च सूर्यजातके—

उच्चभात्सप्तमं नीचं गृहं यातो भवेत्खगः।
उच्चांशा एव नीचांशास्तत्र स्युः परमाभिधाः ॥७५॥

अतिनीचप्रयोजनमाह गर्गः—

[1]अन्धं दिगम्बरं मूकं परपिण्डोपजीविनम्।
कुर्यातामतिनीचस्थौ पुरुषं शशिभास्करौ ॥७६॥

तथा स्वोच्चे रूपं चरणरहितमित्यादिकमपि प्रयोजनं ज्ञेयम्।

यहाँ पर परमोच्चांश की प्रधानता उक्त वाक्य से सिद्ध होती है। उच्चराशि से सप्तम नीच राशि तथा उच्चांश तुल्य अंश परम नीचांश होता है ॥७५॥

सूर्य जातक में कहा है कि उच्चराशि से जब सप्तम राशि में संचार वश ग्रह जाता है तो ग्रह नीच राशि में है और उसी राशि के परमोच्चांश तुल्य अंश पर स्थित होने से ग्रह परम नीच में है ऐसा समझना चाहिये।

अब अति नीच अर्थात् परम नीचांश में ग्रह रहने का तात्पर्य गर्गाचार्य ने कहा है—

यदि कुण्डली में सूर्य व चन्द्र दोनों हो परम नीचांश में हों तो जातक–अन्धा, वस्त्र-रहित (नंगा), बोलने से असमर्थ, मूर्ख, अर्थात् विना पढ़ा लिखा और दूसरे के अन्न से जीवन यापन करने वाला होता है ॥७६॥

तथा अन्य प्रयोजन यह है कि परमोच्च में ग्रह १ और मूलत्रिकोण में $\frac{3}{4}$ का बल प्राप्त करता है। इत्यादि आगे कहे हुए वचन से जानना चाहिए।

**स्पष्टार्थ उच्च, नीच, परमोच्चांश, परमनीचांश चक्र—**

| | ग्रह | सूर्य | चन्द | भौम | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| उच्च | राशि | मेष | वृष | मकर | कन्या | कर्क | मीन | तुल |
| परमोच्च | अंश | १० | ३ | २८ | १५ | ५ | २७ | २० |
| नीच | राशि | तुला | वृश्चिक | कर्क | मीन | ।कर | कन्या | मेष |
| परमनीच | अंश | १० | ३ | २८ | १५ | ५ | २७ | २० |

रव्यादिक्रमेण मूलत्रिकोणराशीनाह श्रीसूर्यः—

सिंहो वृषस्तथा मेषः कन्या कोदण्डकः क्रमात्।
तुलाधरो घटो मतस्त्रिकोणभवनानि च ॥७७॥

---

१. बृ० जा० (१ अ० १३ श्लो०) की भट्टोत्पली में प्राप्त है तथा मूकं के स्थान पर 'मूर्खं' यह पाठान्तर भी है।

Copyrighted material

उच्चस्वत्रिकोणगैर्बलस्थैरित्याद्येषां प्रयोजनम् ।

अब सूर्यादि क्रम से ग्रहों की मूलत्रिकोण राशियों को भगवान् सूर्य के वचन से समझाते हैं ।

यथा—सूर्य की सिंह, चन्द्रमा की वृष, भौम की मेष, बुध की कन्या, गुरु की धनु, शुक्र की तुला और शनि की कुम्भ राशि मूल त्रिकोण राशि होती है ॥७७॥

अपनी मूलत्रिकोण राशि में ग्रह राजयोग कारक होता है यह इसका प्रयोजन है ।

स्पष्टार्थं मूलत्रिकोण राशि चक्र—

| ग्रह | सूर्य | चन्द्र | भौम | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राशि | सिंह | वृष | मेष | कन्या | धनु | तुला | कुम्भ |

नन्वत्र सूर्यस्य सिंहेऽधिकारद्वयं स्वगृहं मूलत्रिकोणञ्च । तथा बुधस्य कन्यायां स्वगृह-स्वोच्च-मूलत्रिकोणरूपास्त्रयोऽधिकाराः सन्ति । तत्र स्वोच्चे रूपं चरण-हितमित्याद्युक्तं सप्तवर्गजबलं किं रूपं ग्राह्यं, किं पादोनरूपं उतार्धमिति ।

यहाँ पर अर्थात् ग्रहों की स्वराशि-स्वोच्च राशि, मूलत्रिकोण राशि से शङ्का होती है कि सूर्य की सिंह राशि स्वराशि व मूल त्रिकोण राशि है और बुध की कन्या राशि स्वराशि, स्वोच्च राशि व मूल त्रिकोण राशि ये तीन संज्ञा कन्या राशि को प्राप्त हैं तो सूर्य व बुध सप्तवर्ग बल विचार में एक बल या एकोनचतुर्थांश वा आधा बल प्राप्त करेगा । अर्थात् बुध उच्च का या मूलत्रिकोण का वा स्वराशि का फल देगा । इसका उत्तर अंकों के आधार पर कल्याण वर्मा के वचन से आगे किया जाता है ।

अतोंऽशवशेनोच्च-स्वगृह-मूलत्रिकोणानां विभागमाह मिश्रकाध्याये कल्याणवर्मा[1]—

विंशतिरंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य ।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोः स्यात्त्रिकोणमपरेंऽशाः ॥७८॥
द्वादशभागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य ।
उच्चफलं कन्यायां बुधस्य तुङ्गांशकेः सदा चिन्त्यम् ॥७९॥
यत (परत) स्त्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैः स्वराशिजं परतः ।
दशभिर्भागैर्जीवस्य त्रिकोणफलं स्वभं परं चापे ॥८०॥
शुक्रस्याशास्तिथयस्त्रिकोणमपरे स्वराशिश्च ।
कुम्भे त्रिकोणनिजभे रविजस्य रवेर्यथा सिंहे ॥८१॥

शनेः कुम्भे विंशतिरंशास्त्रिकोणं दशांशाः स्वगृहमित्यर्थः । एतत्त्रिकोणकं स्मृतं सिंहे नखांशप्रमितं खगः । गृहं द्वा (वा) दशांशप्रमितमित्यादिश्लोकैः ।

अब सिंहादि राशियों में स्वगृहादि कितने-कितने अंश होते हैं इसे सारावली ग्रन्थ के आधार पर बतलाते हैं ।

सूर्य—सिंह राशि में १—२० अंश तक मूल त्रिकोण का तथा २१—३० अंश तक अपने घर का फल देता है ।

चन्द्रमा—वृष राशि में १—३ अंश तक उच्च का व ३—३० अंश तक मूल त्रिकोण का फल देता है ।

---

१. सारावली (५ अ० २१-२४ श्लो०) ।

Copyrighted material

भौम—मेष राशि में १—१२ अंश तक मूल त्रिकोण का तथा १३—३० अंश तक अपने घर का फल देता है।

बुध—कन्या राशि में १—१५ अंश तक उच्च का, १६—२० अंश तक मूल त्रिकोण का और २१—३० तक अपने घर का फल देता है।

गुरु—धनु राशि में १—१० अंश तक मूल त्रिकोण का व ११—३० तक अपने (स्वगृह) घर का फल देता है।

शुक्र—तुला राशि में १—१५ अंश तक मूल त्रिकोण का व १६—३० तक स्वगृह का फल प्रदान करता है।

शनि—कुम्भ राशि में १—२० अंश तक मूल त्रिकोण का और २१—३० अंश तक अपने घर का फल देता है।।७८-८१।।

श्रीमःसूर्येणाप्येवमेवोक्तम्। यत्तु 'सूर्यारजोवभृगुभानुभवा नखांशैः मूलत्रिकोणभवनम्' इति गुणाकरोक्तं निर्मूलत्वादुपेक्ष्यम्।

श्रीमान् सूर्य ने भी ऐसा ही कहा है। जो कि गुणाकर ने सूर्य-भौम-गुरु-शुक्र-शनि के विषय में १—२० अंश तक मूल त्रिकोण का फल वर्णन किया है वह प्रमाणान्तर के अभाव में त्याज्य है। अर्थात् गुणाकर के मार्ग का फलादेश में अनुसरण नहीं करना चाहिये।

इस सारावली कार के कथन में ग्रन्थान्तरों के कुछ प्रमाण पाठकों की सुविधा के लिये प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

यथा—वृहत्पाराशर में—'रवेःसिंहे नभांशाश्च त्रिकोणमपरे स्वभम्। उच्चमिन्दोर्वृषे त्र्यंशास्त्रिकोणमपरेंऽशकाः ।।५१।। मेषेऽर्कांशास्तु भौमस्य त्रिकोणमपरे स्वभम्। उच्चं बुधस्य कन्यायामुक्तं पञ्चदशांशकाः ।।५२।। ततः पञ्चांशकाः प्रोक्तं त्रिकोणमपरे स्वभम्। चापे दशांशाः जीवस्य त्रिकोणमपरे स्वभम् ।।५३।। तुले शुक्रस्य तिथ्यंशास्त्रिकोणमपरे स्वभम्। शनेः कुम्भे नखांशाश्च त्रिकोणमपरे स्वभम् ।।५४।।

(३ अ० ५१-५४ श्लो०) ।।

तथा शम्भु होरा प्रकाश में—'हरौ रवेर्नखा लवास्त्रिकोणकं परे गृहम्। वृषे विधोस्तु तुङ्गजा गुणाः परे त्रिकोणजाः। कुजस्य भास्करा अवौ त्रिकोणजाः परे स्वभम्। धनुर्धरे गुरोर्दिशस्त्रिकोणजाः परे स्वभम् ।। घटे भृगोः शरेन्दवस्त्रिकोणकाः परे स्वभम्। घटे शनेस्त्रिकोणजा नखाः परे-स्वगेहजाः। बुधस्य तुङ्गजाः स्त्रियां शरेन्दवः परे शराः। स्वभं परे त्रिकोणजा दिशस्तु संस्मृता बुधैः' (२ अ० १५-८ श्लो०)।

और भी जातकपरिजात में 'सितासितार्काङ्गिरसां नखांशास्त्रिकोणमादौ परतः स्वमन्दिरम्। वृषादिभागत्रयमुच्चमिन्दोर्मूलत्रिकोणं परतस्तु सर्वम्। मेषादिगा द्वादशभागसंज्ञाः कुजस्य कोणं परतः स्वभं स्यात्। कन्यार्द्धमुच्चं शनिजस्य कोणं दशांशकाः स्वर्क्षफलं शरांशाः। (१ अ० २६-२८ श्लो०)।

इस वचन में सूर्य, गुरु, शुक्र और शनि का १-२० अंश तक मूल त्रिकोण का फल वर्णित है जो कि ग्रन्थकार को मान्य नहीं है। इसकी समता गुणाकर के वचन से होती है। जातक पारिजातकार ने 'संगृह्य सारावलिमुख्यतन्त्रं' यह प्रतिज्ञा करके भी इस

Copyrighted material

इस विभाजन में कल्याण वर्मा का आश्रय नहीं लिया यह समझ में नहीं आता है ॥

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'उच्चबलं कन्यायां बुधस्य' प्रथम बुध से विभाजन किया हुआ पाठ प्राप्त होता है। तथा सारावली के वचन बृहज्जातक की (२ अ० १९ श्लो०) भट्टोत्पली में प्राप्त हैं और 'बुधस्य तुङ्गांशकैः' के स्थान पर 'तिथ्यंशकैः' यह पाठान्तर है। 'शुक्रस्यांशस्तिथयस्त्रिकोण' के स्थान पर 'शुक्रस्य तु त्रयोशास्त्रिकोण' यह है तथा प्रकाशित सारावली पुस्तक में 'शुक्रस्य तु त्रिकोणं पञ्चभिरपरे' यह पठान्तर उपलब्ध होता है। मेरी दृष्टि में प्रमाणान्तरों के आधार पर इस ग्रन्थ में कथित शुक्र के अंशों का ही विभाजन समुचित है।

अब यहाँ पर जिज्ञासा होती है कि सूर्यादि सात ग्रहों की तुङ्गादि राशियों का तो वर्णन किया किन्तु राहु केतु की कौन-कौन सी राशि उच्च, स्वगृह मूलत्रिकोण होती है इसका वर्णन क्यों नहीं किया। फलादेश में राहु केतु भी उपयुक्त होते हैं अतः पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ लिख देना आवश्यक है। यथा—बृहत्पाराशर में राहोस्तु वृषभं केतोर्वृश्चिकं तुङ्गसंज्ञकम्। मूलत्रिकोणकं ज्ञेयं युग्मं चापं क्रमेण च ॥ कुम्भाली च गृहौ प्रोक्तौ कन्यामीनौ च केनचित् (४७ अ० ३५-३६)। जातक पारिजात में—'कुम्भस्त्रिकोणं फणिनायकस्य तुङ्गं नृयुग्मं रमणीगृहं स्यात्' (१ अ० २८ श्लो०)। तथा प्रश्नभैरव में—'अङ्गीकृतं सौम्यगृहं सुहृत्त्वात् कन्याह्वयं तच्च विधुन्तुदेन। तत्सप्तमं यच्छिखिना गृहीतं मीनाह्वयञ्चेति बुधा वदन्ति ॥ स्यात् सिंहिकायास्तनयस्य तुङ्गं नृयुग्मसंज्ञं बुधदैवतञ्च। पुच्छस्य केतोर्गदितञ्च तुङ्गं तत्कार्मुकाख्यं गुरुदैवतञ्च' (जा० पा० टी० १ अं० २८ श्लो०)।

और भी ज्योतिष सार में—'कन्या राहोर्गृहं तथा। राहुर्युग्मेतु चापे च तमोवत्केतुजं फलम्' (९ अ० १ श्लो०)।

तथा भावकुतूहल में भी 'मिथुने तमसः शिखिनो धनुषि प्रथमे बुधमे गुरुभे भवनम्' (१ अ० ९ श्लो०) ॥

राहु केतु के तुङ्गादि विचार में भिन्नता प्राप्त होती है इसलिये अपने अनुभव से समझना चाहिये।

स्पष्टार्थ चक्र—

| ग्रह | राशि | मूलत्रिकोणांश | स्वगृहांश | उच्चांश |
|---|---|---|---|---|
| सूर्य | सिंह | १—०२०° तक | २१°—३०° तक | |
| चन्द्रमा | वृष | ४—३०° तक | | १°—३° तक |
| भौम | मेष | १°—१२° तक | १३°—३०° तक | |
| बुध | कन्या | १६°—२०° तक | २१°—३०° तक | १°—१५° तक |
| गुरु | धनु | १°—१०° तक | ११°—३०° तक | |
| शुक्र | तुला | १°—१५° तक | १६°—३० तक | |
| शनि | कुम्भ | १°—२०° तक | २१°—३० तक | |

Copyrighted material

(अथ) बलिष्ठराशेर्लक्षणमाह वराहः—

[1]अधिपयुतो दृष्टो वा बुधजीवनिरीक्षितश्च यो राशिः ।
स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः ॥८२॥

जन्म के समय जो राशि अपने स्वामी ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो अथवा बुध और गुरु से दृष्ट वा युक्त हो तथा अन्य ग्रहों से दृष्ट व युत न हो तो वह राशि बलवान् होती है ॥८३॥

[2]बादरायणोऽपि—

जीवस्वनाथशशिजैर्युतदृष्टा बलवतो होरा ।
शेषैर्बलहीना स्यादेवं मिश्रैस्तु मिश्रफला ॥८३॥
बलहीना यदि सर्वैर्निरीक्षिता नैव युक्ता वा ।

श्रीबादरायणजी ने भी कहा है कि जो होरा अर्थात् 'होरेतिलग्नं' राशि अपने स्वामी ग्रह से युक्त या दृष्ट हो अथवा बुध गुरु से दृष्ट वा युत हो और अन्य शेष ग्रहों से दृष्ट युत न हो तो वह राशि पूर्ण बलवान् होती है ।

जो राशि स्वामी ग्रह वा बुध गुरु से दृष्ट युत होकर अन्य ग्रहों से भी दृष्ट युत हो तो वह राशि मध्य बली होती है, और जो राशि किसी भी ग्रह से दृष्ट वा युत न हो तो वह राशि बलहीन होती है ॥८३॥

श्रीमत्सूर्येण चन्द्रदृष्टः शुभस्थानगतोऽपि राशिर्बली भवतीत्युक्तम्—

योऽधिनाथयुतो दृष्टो बुधजीवेन्दुवीक्षितः ।
शुभस्थानगतो राशिर्वीर्यवानन्यथा नहि ॥८४॥

श्री भगवान् सूर्य ने चन्द्रमा से दृष्ट और शुभ स्थान में गत राशि भी बलवान् होती है, यह विशेष कहा है इसको अब कहते हैं ।

जन्म काल या प्रश्न में जो राशि अपने स्वामी ग्रह से दृष्ट या युत वा बुध, गुरु चन्द्रमा से दृष्ट या युत हो और जो राशि शुभ स्थान में अर्थात् शुभ भाव में हो तो वह राशि बलवान् होती है । इसके विपरीत राशि निर्बल होती है ॥८४॥

राशीनां प्लवसंज्ञामाह कल्याणवर्मा—

[3]भवनाधिपदिग्राशिः प्लव इव यवनः प्रयत्नतः कथितः ।
तत् प्लवगो विनिहन्यादचिरेण महीपतिः शत्रून् ॥८५॥

अस्यार्थः—यस्य भवनस्य राशेः स्वामिनो या दिक् तस्यां दिशि स राशिः प्लवसंज्ञ इत्यर्थः ।

यथा मेषवृश्चिकयोः स्वामी भौमस्तस्य दिक् दक्षिणा अतस्तत्र मेषवृश्चिकौ प्लवसंज्ञावित्यन्यत्रापि ज्ञेयम् ।

अब राशियों के प्लव (झुकाव, ढरकाव वा निम्न भूतल) को कल्याण वर्मा के मत से कहते हैं ।

---

१. लघु० जा० १ अ० १४ श्लो० । २. बृ० जा० १ अ० १९ श्लो० की भट्टोत्पली टीका में प्राप्त है । ३. सारावली ३ अ० ३९ श्लो० ।

Copyrighted material

राशि स्वामी की जो दिशा होती है वह राशि की प्लव दिशा होती है ऐसा यवनाचार्यों का कथन है। उदाहरण के लिये जैसे मेष वृश्चिक राशि का स्वामी भौम है और भौम दक्षिण दिशा का स्वामी है इसलिये मेष वृश्चिक का प्लव दक्षिण में हुआ। इस प्रकार अन्य भी जानना।

इसका प्रयोजन यह है कि यदि राजा गमन के समय प्लव राशि की दिशा में यात्रा करे तो शीघ्र ही शत्रुओं को पराजित करता (मारता) है।

**विशेष**—यह पद्य बृ० जा० की (१ अ० २० श्लो०) भट्टोत्पली में इस प्रकार से प्राप्त है—भवनाधिपतिग्रामप्लव इह यवनैः प्रबन्धतः कथितः ॥८५॥

मेषादीनां वर्णा उक्ता लघुजातके—

[1]अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गौ।
पिङ्गलकर्बुरबभ्रूर्मलिना रुचयो यथासङ्ख्यम् ॥८६॥

अरुणो रक्तः। पाटलो श्वेतरक्तः। पिशङ्गः स्वर्णवर्णः। पाण्डुरीषच्छुक्लः। पिङ्गलः कपिलः। मलिना रुचयो मत्स्यवर्णाः। कर्बुरः श्वेतकपिलवर्णसंयोगः। बभ्रूर्नकुलवर्णः।

अब द्वादश राशियों के वर्णों को वराहमिहिर के मत से कहते हैं।

१ मेष का लाल, २ वृष का सफेद, ३ मिथुन का हरा, ४ कर्क का सफेद लाल मिला हुआ, ५ सिंह का अल्प सफेद, ६ कन्या का अनेक रङ्ग मिश्रित, ७ तुला का काला, ८ वृश्चिक का सुवर्ण के समान, ९ धनु का लाल पीला मिश्रित, १० मकर का श्वेत, लाल पीला मिश्रित, ११ कुम्भ का नकुल (न्यौला) के सदृश और १२ मीन राशि का मलिन (मछली के समान) वर्ण होता है ॥८६॥

[1]यत्तु सारावल्यां—

लोहितसितशुकहरिताः पाटलपरिधूम्रपाण्डुविचित्राश्च।
कृष्णः कनकाभपिङ्गाः कर्बुरबभ्रु(त्व) अजादिवर्णाः स्युः ॥८७॥ इति कन्यादिवर्णाः स्युरिति कन्यादिराशिषु वर्णान्यथात्वमुक्तं तच्चिन्त्यम्।

अब सारावली ग्रन्थ के आधार पर राशियों के वर्णों को कहते हैं।

१ मेष का लाल, २ वृष का सफेद, ३ मिथुन का तोता के समान हरा, ४ कर्क का लाल उजाला मिला हुआ, ५ सिंह का धूम्र, ६ कन्या का पाण्डु अल्प सफेद मिश्रित पीला, ७ तुला का अनेक वर्ण (रङ्ग) ८ वृश्चिक का काला, ९ धनु का सुवर्ण के समान, १० मकर का पिङ्ग अर्थात् लाल पीला मिला हुआ, ११ कुम्भ का कर्बुर-पीला कपिल मिश्रित और १२ मीन राशि का रङ्ग नकुल के समान होता है ॥८७॥

इस सारावली के वचन में कन्यादि राशियों के वर्ण वराहोक्त से विपरीत होने के कारण त्याज्य हैं। ऐसा ग्रन्थकार का आशय है।

एतत्स्पष्टमुक्तं भगवता सूर्येण—

रक्तः सितः शुकनिभः पाटलो धूम्रपाण्डुरः।
चित्रः कृष्णः सुवर्णाख्यः पिङ्गलः कर्बुरः स्थितः ॥८८

---

१. १ अ० ६ श्लो०।

Copyrighted material

बभ्रुर्मत्स्यनिभः पूर्वं राशेर्वर्णाः क्रमात्स्मृताः।
प्रयोजनन्तु सूतिकावस्त्रवर्तिकादिवर्णज्ञानम् ॥

इन राशियों के वर्णों को स्पष्टता से भगवान् सूर्य ने कहा है। अब उसे बतलाते हैं— १ लाल, २ सफेद, ३ तोता के समान हरा, ४ सफेद लाल मिला हुआ, ५ अल्प सफेद (धुआँ के सम) ६ अनेक रङ्ग, ७ काला, ८ सुवर्ण के समान, ९ लाल पीला मिला हुआ, १० श्वेत लाल पीला मिश्रित, ११ न्यौला के समान, १२ मछली के सदृश रङ्ग होता है।

राशियों के वर्ण कथन का प्रयोजन यह है कि सूतिका के वस्त्र, और दीपक की बत्ती का ज्ञान इन राशिवर्णों से करना चाहिये।

**विशेष**—इसके प्रयोजन के विषय में कल्याण वर्मा ने कहा है—'जन्मोदयगृहवर्णाः तदधिपतेः पूजिता प्रतिमा। हन्ति हरेरिव शत्रूनिन्द्रध्वजिनीव देवरिपून्' जन्म के समय लग्न में जो राशि हो उसके समान जातक का वर्ण कहना चाहिये। तथा जिस भाव में हानि प्रतीत होती हो तो उस समय राशि वर्ण के सदृश वर्ण की प्रतिमा बना कर पूजन करने से तज्जन्य दुःखादि का नाश होता है, जैसे इन्द्र की सेना द्वारा राक्षसों का नाश होता है ॥८८॥

अथ भावसंज्ञाः [1]वराहः—

तनु-धन-सहज-सुहृत्-सुत-रिपु-जाया-मृत्यु-धर्म-कर्मायाः।
व्यय इति लग्नाद्भावाश्चतुरस्राख्योऽष्टमचतुर्थे ॥८९॥
पातालहिबुकसुखवेश्मबन्धुसंज्ञाश्चतुर्थस्य ।
नवपञ्चमं त्रिकोणं नवमक्षं त्रित्रिकोणञ्च ॥९०॥
धीः पञ्चमं तृतीयं दुश्चिक्यं सप्तमञ्च यामित्रम्।
द्यूनं द्युनमस्तञ्च तच्छिद्राष्टमं द्वादशं रिष्फम् ॥९१॥

अब भावों की संज्ञा को वराहमिहिर के वचन से बतलाते हैं।

प्रथम भाव अर्थात् लग्न की तनु, २ य भाव की धन, ३ य की भ्रातृ, चतुर्थ की मित्र, पञ्चम की पुत्र, षष्ठ की शत्रु, सप्तम की स्त्री, अष्टम की मृत्यु, नवम की धर्म, दशम की कर्म, एकादश की आय और बारहवें की व्यय संज्ञा होती है अर्थात् लग्नादि बारहभावों को इन इन नामों से पुकारा जाता है।

चौथे व आठवें भाव की चतुरस्र संज्ञा होती है तथा चतुर्थ भाव के नामान्तर १ पाताल, २ हिबुक, ३ सुख, ४ गृह ५ बन्धु हैं, अर्थात् चतुर्थ भाव को नामान्तर से भी पुकारा जाता है। नवम व पञ्चम भाव त्रिकोण तथा केवल नवम की त्रित्रिकोण संज्ञा होती है। पञ्चम भाव को धी (बुद्धि), तृतीय की दुश्चिक्य, सप्तम की यामित्र, द्यून, द्युन, अस्त. अष्टम की छिद्र और बारहवें भाव को रिष्फ संज्ञा होती है ॥८९-९१॥

---

१. लघुजातक १ अ० १५-१७ श्लो०।

Copyrighted material

अब वराहमिहिर के मत से केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम संज्ञा को कहते हैं।

केन्द्रादिभवनानि उपचयभवनान्याह स एव (वराहः)—

[1]केन्द्रचतुष्टयकण्टकसंज्ञा लग्नास्तदशमचतुर्थानाम्।
संज्ञा परतः पणफरमापोक्लिमश्च तत्परतः ॥९२॥

लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम, भाव की केन्द्र, २, ५, ८, ११ भाव की पणफर और ३, ६, ९, १२ भाव की आपोक्लिम संज्ञा होती है ॥९२॥

त्रिषडेकादशदशमान्युपचयानि। एतद्भिन्नानि, अन्यथा, अपचयसंज्ञानीत्यर्थः।

अब भावों की उपचय, अपचय संज्ञा को बतलाते हैं।

३, ६, १०, ११ भावों की उपचय, १, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२ भावों की अपचय संज्ञा होती है।

तथा च सत्यः—

[2]दशमैकादशषष्ठतृतीयसंज्ञानि जन्मलग्नाभ्याम्।
उपचयभवनानि स्युः शेषाण्यृक्षाण्यपचयाख्यानि ॥९३॥

अब सत्याचार्य के मत से भावों की उपचय व अपचय संज्ञा को कहते हैं।

जन्मलग्न से ३, ६, १०, ११ भावों की उपचय संज्ञा और १, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२ भावों की अपचय संज्ञा होती है ॥९३॥

यत्र जन्मलग्नाभ्यामिति चोपलक्षणम्। यस्माद् भावाद् ग्रहादुपचयजिज्ञासा तस्मादेवैतान्युपचयानि।

तथा च यवनः—

[3]षष्ठं तृतीयं दशमं च राशिमेकादशं चोपचयर्क्षमाहुः।
होरागृहस्थानशशाङ्ककेभ्यः शेषाणि चैभ्योऽपचयात्मकानि ॥९४॥

यहाँ पर अर्थात् पूर्व कथित सत्याचार्य के वचन में जो जन्मलग्न से उपचयादि का कथन है वह केवल उपलक्षण मात्र है क्योंकि प्रत्येक भाव व ग्रह से उपचयादि जानने के लिये इष्ट भाव व ग्रह से ही उपचयादि का ज्ञान होता है।

इसमें यवनाचार्य का वचन देकर ग्रन्थकार कह रहे हैं कि लग्न, भाव व ग्रह से ३, ६, १०, ११ की उपचय संज्ञा और इनसे भिन्न स्थानों की अपचय संज्ञा होती है। केवल लग्न से ही ३,६, १०, ११ भावों को संज्ञा नहीं होती है ॥९४॥

अत्र केचित् त्रिषडेकादशदशमानि यदि पापग्रहेण (स्व) स्वामिशत्रुणा वा यदि दृष्टानि भवन्ति तदा ता (नि) नोपचयसंज्ञानि भवन्ति।

तथा च गर्गः—

[4]अथोपचयसंज्ञा स्यात् त्रिलाभरिपुकर्मणाम्।
न चेद् भवन्ति दृष्टास्ते पापस्वस्वामिशत्रुभिः ॥९५॥इति।

---

१. लघुजातक १ अ० १८ श्लो०। २. बृ० जा० (१ अ० १५ श्लो०) की भट्टोत्पली में प्राप्त है। ३. बृ० जा० (१ अ० १५ श्लो०) की भट्टोत्पली टीका में उपलब्ध है। ४. बृ० जा० (१ अ० १५ श्लो०) की भट्टोत्पली टीका में मिलता है।



Copyrighted material

यहाँ उपचयादि के विचार में गर्गाचार्य ने कुछ विशेष बात बतलाई है। उसे अब कहते हैं।

श्रीगर्गाचार्य की का कथन है कि ये (३, ६, १०, ११) उपचय स्थान यदि पाप-ग्रह वा अपने स्वामी ग्रह अथवा शत्रुग्रह से दृष्ट हों तो उपचय संज्ञक नहीं होते हैं। किन्तु यह पक्ष सर्वसम्मत नहीं है अर्थात् केवल गर्गाचार्य जी का है ॥९५॥

भावानां संज्ञान्तरं [1]सारावल्याम्—

कल्प-स्व-पौरुष गृह-प्रतिभा-व्रण-कामदेव-विवराणि ।
गुरु-मान-भव-व्ययमिति कथितान्यपराणि नामानि ॥९६॥

अत्र भावसंज्ञा फलनिर्देशप्रयोजना ज्ञेया।

अत्र लग्नस्य कल्पसंज्ञत्वाल्लग्नदेहवृद्धान्वेषणमारोग्यान्वेषणञ्च लग्नात्कार्यम्। द्वितीयस्य कुटुम्बसंज्ञत्वाद् धनजातिविचारो द्वितीयात्। एवं भ्रातृपुरुषार्थान्वेषणं तृतीयात्। बन्धुसुखार्थान्वेषणञ्च चतुर्थात्। पुत्रबुद्ध्यन्तरान्वेषणं पंचमात्। शत्रुरोगान्वेषणं षष्ठात्। भार्याकामविवाहान्वेषणं सप्तमात्। मृत्युपापभयान्वेषणमष्टमात् धर्ममातृ-पित्रादिगुरूणां तपसां चान्वेषणं नवमात्। आस्पदशब्दस्य स्थानवाचित्वादाज्ञाशब्दस्य (च ?) प्रभुत्ववाचित्वात् स्थानप्रभुत्व-सन्मान-कर्मविचारो दशमात्। भवशब्दस्य विद्यादिगुणसंपत्प्राप्तिवाचकत्वादेषां द्रव्यादिलाभस्य च विचार एकादशात्। सर्वव्ययविचारो व्ययभावादिति।

अब उक्त भावों के अन्य नामों को सारावली ग्रन्थ के आधार पर बतलाया जाता है।

प्रथम भाव की कल्प, द्वितीय की स्व (धन), तृतीय की पौरुष (पराक्रम), चतुर्थ की गृह (घर, भूमि), पञ्चम की प्रतिभा (योग्यता, विद्या), षष्ठ की व्रण (रोग, घाव), सप्तम की कामदेव, अष्टम की विवर (छिद्र), नवम की गुरु, दशम को मान (प्रतिष्ठा), एकादश की भव और बारहवें भाव की व्यय (खर्च) संज्ञा होती है ॥९६॥

यहाँ भावों के नामान्तरों का प्रयोजन यह है कि इन १२ भावों के आधार पर ही प्राणियों के नानाविध शुभाशुभ फल की जानकारी प्राप्त होती है।

यहाँ पर इस श्लोक में लग्न की कल्पसंज्ञा मानी है और लग्न से देह का ज्ञान होता है। इसलिये कल्प शब्द शक्तिवाची होने से देह की अल्प या महान् शक्ति का व शरीर की स्वस्थता का ज्ञान लग्न से अर्थात् प्रथम भाव से करना चाहिये।

द्वितीय की कुटुम्ब संज्ञा है, कुटुम्ब का पालन धन से होता है, इसलिये धन व जाति (स्ववंश) आदि का विचार द्वितीय भाव से करना चाहिये।

इस प्रकार भाई व पुरुषार्थ (पराक्रम) का तृतीय भाव से विचार करना चाहिये। बन्धु सुखादि का चतुर्थ से, पुत्र (सन्तान) बुद्धि (विद्या) आदि का पञ्चम से, शत्रु-रोग का षष्ठ से, स्त्री-काम-विवाहादि का सप्तम से, मृत्यु पाप भय का अष्टम से, धर्म, माता-पितादि, गुरु और तपस्या (धार्मिकता) का नवम भाव से विचार करना चाहिये।

---

१. १ अध्याय २७ श्लो०।

Copyrighted material

आस्पद शब्द स्थानवाची व प्रभुत्व (सामर्थ) वाची होने से स्थान-सामर्थ्य-सम्मान-कर्म (कार्य) आदि का विचार दशम से, भव शब्द विद्यादि गुण, लक्ष्मी प्राप्ति वाची होने से धनागम का एकादश भाव से और समस्त व्यय (खर्च) का बारहवें भाव से विचार करना चाहिये।

**विशेष**—इन १२ भावों से अन्य बातों का भी ज्ञान होता है ॥९६॥

अथैवं विचारणमुक्तं पराशरजातके—

लग्नादिव्ययपर्यन्तं भावाः संज्ञानुरूपतः।
फलदाः शुभसंदृष्टाः युक्ता वा शोभनप्रदाः ॥९७॥
पापदृष्टयुता भावाः कल्याणेतरदायकाः।
नितरां शत्रुनीचस्थैर्न मित्रोच्चगतैश्च तैः ॥९८॥
सौम्यैर्दृष्टयुता भावाः ग्रहवीर्यात्फलप्रदाः ॥इति॥

इन भावों की संज्ञा के विषय में पराशर जातक में इस प्रकार से विचार किया है।

लग्न से व्यय पर्यन्त अर्थात् प्रथम भाव से बारहवें भाव तक जो भावों को संज्ञा होती है उसी संज्ञा के अनुसार भाव, शुभग्रहों से दृष्ट या युत होने पर बली ग्रह के तुल्य भावजन्य शुभ फल को देता है और पापग्रहों से दृष्ट या युत होने पर तथा शत्रु नीच राशि में स्थित ग्रह से दृष्ट या युत भाव अशुभ फल प्रदान करता है। मित्र या उच्च राशिस्थ ग्रह भावजन्य अशुभ फल नहीं देता है ॥९७-९८॥

राशीनां बलमाह बादरायणः—

केन्द्रस्थाः सबलाः स्युर्मध्यमबलाः पणफराश्रिता ज्ञेयाः।
आपोक्लिमगाः सर्वे हीनबला राशयः कथिताः ॥९९॥

एतेन केन्द्रादिसंज्ञा भावानामेव न राशीनामिति सूचितम्। अन्यथा 'राशौ राशिबली वह्निरात्मदेहदाहको द्रष्टा स्वदृष्टदर्शक इत्यादिवद् विरुद्धार्थाप्रसक्तेः।

तथा च राशीनामेव केन्द्रादिसंज्ञेति सुन्दरमिश्रोक्तमपास्तम्। केन्द्रस्था इति ब्रुवतो वराहस्य शब्दाल्पत्वेनार्थाल्पिता स्पष्टैव।

॥इति राशिप्रभेदाध्यायः ॥१॥

अब भावस्थ राशियों के बल को बादरायण के वाक्य से कहते हैं।

केन्द्र (१, ४, ७, १०) में स्थित राशि बलवान् होती हैं। पणफरस्थ राशियाँ मध्य बली और आपोक्लिमस्थ राशियाँ निर्बल होती हैं।

इससे ज्ञात होता है कि केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम संज्ञा भावों की ही होती है न कि राशियों की। यदि राशियों की ही केन्द्रादि संज्ञा मानी जाय तो राशियों में बली अग्नि राशि होने से वह राशि अपने देह को जलाने वाली व जिसको देखेगी या जो इसको देखेगा वह जल जायगा। यह विरुद्ध अर्थ यहाँ प्राप्त होगा। इसलिये राशियों की जो केन्द्रादि संज्ञा सुन्दर मिश्र ने की है व सिद्ध नहीं हो पाती है ॥९७॥

Copyrighted material

अथ ग्रहयोनिभेदो निरूप्यते—
तत्र व्यवहारार्थं ग्रहपर्यायाः[1] शुकजातके—

सूर्यो भानुस्तथादित्यो रविः प्रभाकरस्तथा ।
दिनेशस्तमोहन्ता च दिनकर्त्ता दिवामणिः ॥१॥
शीतगुश्चन्द्रमा सोमो रजनीपतिरेव च ।
शीतरश्मिर्निशानाथः [2]रात्रीशो कुमुदिनीपतिः ॥२॥
आरो वक्रो महीसूनू रुधिरो रक्त एव च ।
अङ्गारक इति ख्यातः क्रूरदृक् क्रूरकृत्तथा ॥३॥
सौम्यो ज्ञोऽत्र बुधश्चेति सोमजो बोधनस्तथा ।
एते सौम्यस्य पर्यायाः कुमारश्च प्रभासुतः ॥४॥
गुरुर्जीवो देवमन्त्री देवतानां पुरोहितः ।
देवेज्य अङ्गिरासूनुः बृहस्पतिरिति स्मृतः ॥५॥
शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः आस्फुजिच्च सितस्तथा ।
उशना दैत्यपूज्यश्च कामः कविरिति स्मृतः ॥६॥
कोणो मन्दः शनिः कृष्णः सूर्यपुत्रो यमस्तथा ।
पंगुः शनैश्चरः सौ (शौ) रिः कालश्छायासुतोऽसितः ॥७॥
राहुस्तमोऽसुरोऽगुश्च स्वर्भानुश्च विधुन्तुदः ।
धाता च सैंहिकेयश्च भुजङ्गो भुजगस्तथा ॥८॥
शिखी केतुर्ध्वजो धूम्रो मृत्युपुत्रोऽनिलस्तथा ।

अब ग्रहयोनि भेद का निरूपण करते हैं। प्रथम लोकव्यवहार के लिये शुकजातक के आधार पर ग्रहों के नामान्तरों का वर्णन करते हैं।

**सूर्य के नाम**—१ सूर्य, २ भानु, ३ आदित्य, ४ रवि, ५ प्रभाकर, ६ दिनेश, ७ तमोहन्ता, ८ दिनकर्त्ता, ९ दिवामणि ये हैं।

**चन्द्रमा के पर्यायवाची शब्द**—१ शीतगु, २ चन्द्रमा, ३ सोम, ४ रजनीपति, ५ शीतरश्मि, ६ रात्रीश, ७ निशानाथ, ८ कुमुदिनीपति ये हैं ;

**मङ्गल के पर्यायवाची शब्द**—१ आर, २ वक्र, ३ महीसूनु, ४ रुधिर, ५ रक्त, ६ अङ्गारक, ७ क्रूरदृक्, ८ क्रूरकृत् ये हैं।

**बुध के पर्यायवाची शब्द**—१ सौम्य, २ ज्ञ, ३ बुध, ४ सोमज, ५ बोधन, ६ कुमार, ७ प्रभासुत ये हैं।

**गुरु के पर्यायवाची शब्द**—१ गुरु, २ जीव, ३ देवमन्त्री, ४ देवपुरोहित, ५ देवेज्य, ६ अङ्गिरासूनु, ७ बृहस्पति ये हैं।

**शुक्र के नामान्तर**—१ शुक्र, २ भृगु, ३ भृगुसुत, ४ आस्फुजित्, ५ सित, ६ उशना, ७ दैत्यपूज्य, ८ काम, ९ कवि ये हैं।

**शनि के नामान्तर**—१ कोण, २ मन्द, ३ शनि, ४ कृष्ण, ५ सूर्यपुत्र, ६ यम, ७ पङ्गु, ८ शनैश्चर, ९ सौरि, १० छायासुत ये हैं।

---

१. योनिभेदः इ० पाठान्तरम्। २. शशीति पुस्तकान्तरे।

Copyrighted material

**राहु के नामान्तर**—१ राहु, २ तम, ३ असुर, ४ अगु, ५ स्वर्भानु, ६ विधुन्तुद, ७ धाता, ८ सैंहिकेय, ९ भुजङ्ग, १० भुजग ये हैं।

केतु के पर्यायवाची शब्द—१ शिखी, २ केतु, ३ ध्वज, ४ धूम्र, ५ मृत्यु, पुत्र ६ अनिल ये हैं ॥१८॥

**विशेष**—इन ग्रहों के नामान्तर ग्रन्थान्तरों में अन्य भी प्राप्त होते हैं।

अथ कालपुरुषस्यात्मादिस्वरूपान् ग्रहानाह कल्याणवर्मा[1]—

आत्मारिवः शोतकरस्तु चेतः सत्त्वं धराजः शशिजोऽथ वाणी।
ज्ञानं सुखं चेन्द्रगुरुर्मदश्च शुक्रः शनिः कालनरस्य दुःखम् ॥९॥

अब काल रूप पुरुष के आत्मादि का विभाग अर्थात् कौन-सा ग्रह कालपुरुष के किस-किस अवयव का स्वामी होता है, इसे कल्याणवर्मा के आधार पर कहते हैं।

काल रूप पुरुष की आत्मा सूर्य है। चन्द्रमा चित्त (मन), भौम सत्त्व (बल), बुध वाणी (वचन), बृहस्पति ज्ञान व सुख, शुक्र मद (कन्दर्प, काम) और शनि दुःख है ॥९॥

[1]आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः।
दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः फलम् ॥१०॥

शनौ बलिनि दुःखाभावः। अबले दुःखप्राबल्यमित्यर्थः। इदं च फलं तत्तद् ग्रहाणां दशासु बोध्यम्।

अब ग्रहों की आत्मादि संज्ञा का क्या उपयोग होता है इसे बतलाते हैं।

जन्म के समय में अत्मादि (सूर्यादि) ग्रह बलवान् हों तो जातक के आत्मादि भी बली होते हैं। जैसे—जिसकी कुण्डली में सूर्य पूर्ण बली होता है उस जातक की आत्मा बलवान् होती है अर्थात् वह कठिन से कठिन कार्य भी करने में समर्थ होता है। जिसकी कुण्डली में चन्द्र बली होता है उस जातक का चित्त (मन) प्रबल होता है। इसी प्रकार से अन्य ग्रहों का बलाबल जानकर तत्तदवयव का फलादेश करना चाहिए।

यदि आत्मादि ग्रह निर्बल हों तो आत्मादि हीन बल समझना चाहिये। शनि का फल विपरीत होता है, अर्थात् शनि निर्बल हो तो दुःखों की अधिकता होती है और शनि के बलवान होने पर दुःखों का अभाव होता है, ऐसा जानना चाहिये। यह फल ग्रहों की दशा में होता है ॥१०॥

राजादि ग्रहाणामाह[2] स एव—

राजा रविः शशधरश्च बुधः कुमारः सेनापतिः क्षितिसुतः सचिवौ सितेज्यौ।
प्रेष्यस्तयोस्तरणिजः सबला नराणां कुर्वन्ति जन्मसमये निजमेव रूपम् ॥११॥

अब ग्रहों के राजत्वादि अधिकार को अर्थात् ग्रह समिति में कौन ग्रह राजा व कौन-कौन सा ग्रह मन्त्री राजकुमारादि होता है इसे कल्याण वर्मा के आधार पर बताया जाता है।

---

१. सारावली ४ अ० १ श्लो०। तथा लघुजातक २ अ० १ श्लो०।

२. सारावली ४ अ० ७२ श्लो०, तथा लघुजातक १ अ० ३ श्लो० में प्राप्त है।

Copyrighted material

ग्रह कौंसिल में सूर्य व चन्द्र राजा, बुध राजकुमार, मङ्गल सेनानायक, शुक्र गुरु मन्त्री और शनि प्रेष्य (सेवक) है। इसका प्रयोजन यह है कि जन्म के समय में जो ग्रह बलवान् होता है वह जातक को अपने राजत्वादि के समान बनाता है। यदि २, ३ ग्रह-बली हों तो जातक में उतने गुण अवश्य होते हैं ॥११॥

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में श्लोक के तृतीय पाद में 'भृत्यस्तयोश्च रविजः सबला नराणां' यह पाठान्तर है तथा प्रकाशित लघुजातक में भी श्लोक के तृतीय पाद में 'भृत्यस्तथा तरणिजः सबला ग्रहाश्च' यह पाठान्तर उपलब्ध होने पर भी अर्थ में कोई विरोध नहीं है।

इन वचनों से यह ज्ञात होता है कि २ ग्रह राजा, २ ग्रह मन्त्री हैं, १ नेता, १ कुमार, १ ग्रह सेवक है। किन्तु सर्वार्थचिन्तामणि के वाक्य में भौम को नेता व नायक न कह कर सेना बताया है। मेरी दृष्टि में यह उचित इसलिये नहीं है कि बृ० पा०.के उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि सेना तो राहु व केतु है तथा ग्रन्थान्तर में सर्वत्र भौम को सेना नायक या नेता ही माना गया है ॥११॥

अत्राऽर्को राजा चन्द्रो राज्ञी गुरुर्मन्त्री शुक्रो मन्त्रिणः पत्नी ज्ञेयः।
उक्तञ्च सूर्यजातके—

अहं राजा शशी राज्ञी नेता भूमिसुतः खगः।
सौम्यः कुमारो मन्त्री च गुरुस्तद्वल्लभा भृगुः ॥१२॥
प्रेष्यस्तथैव संप्रोक्तः सर्वदा तनुजो मम ॥

एषां प्रयोजनं जन्मनि प्रश्नलग्ने वा यो ग्रहः सबलः सराजत्वादिकं करोति। निर्बलो राजत्वादिनाशकरः। यद्वा जन्मनि प्रश्नकाले वा बलवानुपचयस्थो यो ग्रहः स्यात् तदा तदुक्तो राजादिकस्तस्य साधकः स्यादन्यथा हानिकरः।

यहाँ ग्रहों के राजादि विभाजन में सूर्य और चन्द्रमा को राजा, तथा गुरु शुक्र को मंत्री माना गया है किन्तु सूर्य जातक के वचन से सूर्य को राजा और चंद्रमा को रानी, एवं गुरु को मन्त्री और शुक्र को मन्त्री की पत्नी माना है उसे अब बतलाते हैं।

सूर्य भगवान् कहते हैं कि मैं (सूर्य) राजा हूँ। चन्द्रमा रानी, भौम नेता, राजकुमार बुध, गुरु मन्त्री, शुक्र गुरु की पत्नी और मेरा पुत्र शनि सेवक है ॥१२॥

ग्रहों के इस राजत्वादि विभाजन का प्रयोजन (उपयोग) यह है कि प्राणियों के जन्म के समय में अथवा प्रश्न के समय में जो ग्रह पूर्ण बली होता है उसके अनुसार राजत्वादिक गुण से युक्त जातक वा प्रश्न सम्बन्धी विचार होता है। बलहीन सूर्यादि के होने पर राजत्वादि का अभाव होता है अथवा जन्म व प्रश्न के समय में लग्न से उपचय स्थान में बलवान् जो राजादि ग्रह हो तो उसके अनुसार राजादि हो अथवा राजादि के द्वारा कार्य सिद्धि होती है। इसके विपरीत में उपचयस्थ सूर्यादि ग्रह निर्बल हों तो राजत्वादि का अभाव होता है।

Copyrighted material

वर्णानाह वराह[1]:—

रक्तः श्यामो भास्करो गौर इन्दुर्नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्च वक्रः।
दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुर्गौरगात्रः श्यामः शुक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ॥१३॥

प्रयोजनन्तु—बलिनः सदृशी मूर्तिरित्यादिना वर्णज्ञानम्। तथा प्रश्नकाले चौरादेर्वर्णज्ञानमपीति।

अब सूर्यादि सात ग्रहों के वर्णों को वराहमिहिर के आधार पर बताया जाता है। अर्थात् कौन से ग्रह का क्या रङ्ग है इसे कहते हैं।

सूर्य का लाल मिश्रित श्यामवर्ण है अर्थात् पाटल पुष्प के समान सूर्य का रङ्ग है। चन्द्रमा का सफेद वर्ण है। मङ्गल-सामान्य लम्बा और लालिमा से युक्त गौर (शुभ्र) वर्ण है। बुध का दूब के समान श्याम (हरा) वर्ण, गुरु का सफेद वर्ण, शुक्र का श्याम अर्थात् न अधिक सफेद, न ज्यादे कृष्ण वर्ण, तात्पर्य शुक्ल कृष्ण मिश्रित तथा शनि का रङ्ग काला होता है ॥१३॥

ग्रहों के वर्णों का प्रयोजन यह है कि जन्म के समय बलवान् ग्रह के समान जातक का रङ्ग होता है तथा प्रश्नकाल में जो ग्रह बली होता है उसके सदृश चोर का वर्ण जानना चाहिये।

अथ ग्रहाणां वर्णस्वामित्वं दिगीशत्वञ्च होरामकरन्दे[2]—

ताम्रः श्वेतः शोणनीलातिपीतश्चित्रः कृष्णश्चेति सूर्यादिवर्णाः।
प्राच्यादीशाः सूर्यशुक्रारदैत्याः मन्दश्चन्द्रः सौम्यजीवौ क्रमेण ॥१४॥

सूर्यादिवर्णाः सूर्यादिस्वामिका वर्णा इत्यर्थः। अन्यथा 'रक्तः श्यामः' इत्यादिना पौनरुक्त्या (क्तिः स्यात्)। तथा च ताम्रगुणविशिष्टद्रव्यस्य सूर्यः स्वामी। श्वेतरूपविशिष्टस्य चन्द्र इत्याद्यग्रे वक्ष्यति।

अब कौन सा ग्रह किस वर्ण व किस दिशा का स्वामी होता है। इसे होरामकरन्द ग्रन्थ के आधार पर समझाते हैं।

ताम्र वर्ण का सूर्य, सफेद का चन्द्रमा, अधिक लाल का भौम, नील का बुध, अधिक पीले का गुरु, अनेक वर्ण का शुक्र और काले रङ्ग का स्वामी शनि होता है।

दिशा स्वामी—पूर्व दिशा का सूर्य, पूर्व दक्षिण कोण का शुक्र, दक्षिण का मङ्गल, दक्षिण पश्चिम कोण का राहु, पश्चिम का शनि, पश्चिम उत्तर कोण का चन्द्रमा, उत्तर का बुध और उत्तर पूर्व कोण का बृहस्पति स्वामी होता है ॥१४॥

यहाँ इस श्लोक में 'सूर्यादि वर्णाः' इसका यह अर्थ है कि इन वर्णों के स्वामी सूर्यादि ग्रह हैं। न कि ये वर्ण सूर्यादि ग्रह के हैं। ये ताम्रादि वर्ण सूर्यादि ग्रहों के हैं ऐसा मानने पर 'रक्तः श्यामः' इस १३वें श्लोक से समता होने के नाते पुनरुक्ति दोष हो जायगा। इसलिये इन वर्णों के स्वामी सूर्यादि ग्रह होते हैं यही अर्थ उचित है।

एतत्स्पष्टमुक्तं सूर्यजातके—

ताम्रः शुभ्राणि रक्तानां तथा हरितपीतयोः।
विचित्रासितयोः सूत मन्मुखाः स्वामिनः स्मृताः ॥१५॥

---

१. बृहज्जातक २ अ० ४ श्लो०। २. २ अ० २ श्लो०।

Copyrighted material

प्रयोजनन्तु जन्मयात्राप्रश्नादौ बलिष्ठग्रहवर्णद्रव्यलाभः। अन्यथा हानिकरः (राः)। ग्रहदौष्ट्ये तत्तद्वर्णपुष्पैर्दिक्स्वामिपूजा कार्या। इति।

दिक्स्वामिप्रयोजनन्तु केन्द्रस्थे गृहे सूतिकागृहद्वारज्ञानम्। हृतनष्टादिषु चोरादेर्गमनीयदिग्ज्ञानम्।

वर्ण स्वामियों के विचार में स्पष्टतापूर्वक सूर्य जातक में इस प्रकार से कहा है कि सूर्य ताम्रवर्ण के चन्द्रमा सफेद रंग के, भौम लाल रंग के, बुध हरे रंग के, गुरु पीले रङ्ग के, शुक्र अनेक प्रकार के और शनि काले पदार्थों का स्वामी होता है।

इन वर्णों के स्वामियों का उपयोग जन्म के समय में वा यात्रा के समय में या प्रश्न आदि के समय में सबसे बली ग्रह के वर्ण के आधार पर द्रव्य लाभ के लिये होता है। जैसे—मान लिया कि किसी की कुण्डली में चन्द्रमा सबसे बली है। चन्द्रमा सफेद वस्तुओं का स्वामी है, इसलिये सफेद वस्तुओं से धनागम होगा ऐसा समझना चाहिये। इसी रीति से अन्य ग्रहों के वर्णों के आधार पर फलादेश करने में सुविधा होती है।

अन्यथा इसके विपरीत में अर्थात् ग्रहबलाभाव में तत्तत्पदार्थों से हानि होती है। अशुभ ग्रह शान्ति के लिये ग्रहों के वर्णतुल्य रंग के समान पुष्पों से ग्रहों की पूजा करनी चाहिये।

दिशाओं के स्वामियों का प्रयोजन यह है कि जन्म के समय में केन्द्रस्थ बली ग्रह से सूतिका के दरवाजे का ज्ञान होता है तथा चोरी हुई वा नष्ट हुई वस्तुओं के विचार में चोर के जाने की दिशा वा नष्ट वस्तु की दिशा जानने के लिये भी दिशा स्वामियों का उपयोग होता है।

प्रयोजनं सारावल्याम्[1]—

पावकजलगुहकेशवशक्रशचीवेधसः पतयः।
सूर्यादिग्रहदेवांस्तन्मन्त्रैः समभिपूज्य तामाशाम्।
कनकगजवाहनादीन् प्राप्नोति नृपोऽरिता शीघ्रम् ॥१६॥

दिशाओं के स्वामियों का अन्य प्रयोजन सारावली में वर्णित है उसे अब बताया जाता है।

सूर्य का अग्नि, चन्द्रमा का जल, भौम का कार्तिकेय, बुध का विष्णु, गुरु का इन्द्र, शुक्र का इन्द्राणी और शनि का ब्रह्मा अधिदेवता होता है।

इस प्रकार सूर्यादिग्रह का जो देवता होता है उसी देव की पूजा उसके मंत्रों से करके उसी दिशा में (जिस दिशा का वह स्वामी है) यात्रा करने पर शत्रु को जल्दी पराजित करके उससे सुवर्ण, रत्न, हाथी आदि का लाभ होता है।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'अर्कादि ग्रहदैवमन्त्रैः संपूज्य' तथा 'गतोऽरितः' यह पाठान्तर प्राप्त होता है तथा वृहज्जातक (२ अ० ५ श्लो०) की भट्टोत्पली में 'पूर्वादिग्रह-देवांस्तत्तमन्त्रैः' यह पाठान्तर मिलता है ॥१६॥

---

१. ४ अ० १२-१३ श्लो०।

Copyrighted material

यवनेश्वरोऽपि—

[1]देवा ग्रहाणां जलवह्निविष्णुप्रजापतिस्कन्दमहेन्द्रदेव्यः ।
चन्द्रार्कचान्द्र्यर्कजभौमजीवशुक्राश्च यज्ञेषु यजेत शश्वत् ॥१७॥

तथा चोरनामानयने बलवद्ग्रहोक्तदेवतापर्यायनाम वक्तव्यः ।

यवनाचार्य जी ने भी ग्रहों के अधिदेवता निम्न प्रकार से बतलाये हैं ।

जैसे—चन्द्रमा का जल, सूर्य का अग्नि, बुध का विष्णु, शनि का ब्रह्मा, भौम का कार्तिकेय, गुरु का इन्द्र और शुक्र का इन्द्राणी अधिदेवता होता है । इन देवग्रहों के नाम पर सदा आहुति यज्ञों में दी जाती हैं ॥१७॥

चोर का नाम जानने के लिये बलवान् ग्रह के अधिदेव के तुल्य नाम चोर का जानना चाहिये ।

अथ ग्रहाणां क्रूरसौम्यविभागो होरामकरन्दे[2]—

क्रूरग्रहाः कुजदिवाकर-सूर्यसूनु-
क्षीणेन्दवः शशिसुतः सहितस्तु तैः स्यात् ।
पूर्णेन्दु-जीव-भृगुजाः शुभसंज्ञिताः स्यु-
स्तैःसंयुतस्तुहिनरश्मिसुतोऽपि सौम्यः ॥१८॥

अत्र बुधो रवि-भौम-शनिभिर्युतः पापत्वमेति न तु क्षीणेन्दुसंयुतोऽपि ।

अब ग्रहों की क्रूर (अशुभ) सौम्य (शुभ) संज्ञा को बतलाते हैं । अर्थात् ग्रहों में कौन-कौन सा ग्रह शुभ तथा कौन-कौन सा अशुभ होता है इसको होरामकरन्द ग्रन्थ के आधार पर कहते हैं ।

भौम सूर्य-शनि-क्षीण चन्द्रमा और इनके साथ बुध की भी क्रूर (अशुभ) संज्ञा होती है अर्थात् ये ग्रह पापग्रह होते हैं ।

पूर्ण चन्द्रमा-गुरु-शुक्र इनकी सौम्य (शुभ) संज्ञा अर्थात् ये ग्रह शुभ ग्रह होते हैं और इनके साथ में यदि बुध हो तो बुध भी शुभग्रह होता है ॥१८॥

ग्रहों के इस शुभ पाप विभाजन में सूर्य-मङ्गल-शनि से युत होने पर ही बुध पापग्रह कहलाता है न कि क्षीण चन्द्रमा के साथ ।

यदाह कल्याणवर्मा[3]—

गुरुबुधशुक्राः सौम्याः शौ (सौ) रिकुजार्का निसर्गतः पापाः ।
शशिजोऽशुभसंयुक्तः क्षीणश्च निशाकरः पापः ॥१९॥

आयुर्दायविधौ कृष्णत्रयोदश्या शुक्लद्वितीयापर्यन्तं क्षीणत्वं क्रूरलग्नगतेन भवति । अत एव यवनेश्वरेण क्षीणचन्द्रस्य पापत्वेनोक्तम् ।

आचार्य कल्याणवर्मा ने कहा है कि स्वभाव से ही बुध, गुरु, शुक्र शुभग्रह हैं और शनि, भौम, सूर्य पापग्रह हैं तथा बुध अशुभ से युक्त हो तो अशुभ होता है एवं क्षीण चन्द्रमा पापी होता है ॥१९॥

---

१. बृहज्जातक (२ अ० ५ श्लो०) की भट्टोत्पली में प्राप्त है। २. २ अ० ३ श्लो०।
३. सारावली ४ अ० ९ श्लो०।

Copyrighted material

आयु के आनयन में कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी से शुक्ल पक्ष की द्वितीया तक चन्द्रमा क्षीण क्रूर लग्न में होने से होता है। इसलिये यवनाचार्य ने क्षीण चन्द्रमा का पापग्रह में वर्णन किया है।

तदुक्तम्—

[1]मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्तः पूर्णा शशी मध्यबलो दशाहे।
श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैश्च दृष्टो बलवान्सदैव ॥२०॥
क्रूरग्रहोऽर्कः कुजसूर्यजौ च [2]पापौ शुभाः शुक्रशशाङ्कजीवाः।
सौम्यस्तु सौम्यो व्यतिमिश्रितोऽन्यैर्वर्णैः स्वतुल्यप्रतिमत्वमेति ॥२१॥

यवनाचार्यजी के मत में चन्द्रमा कभी पापी नहीं होता यह बताया जाता है।

चन्द्र, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से दशमी तक मध्यबली, शुक्ल ११ एकादशी से कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तक पूर्ण बली और कृष्णपक्ष की षष्ठी से अमावास्या तक अल्प (थोड़ा) बली होता है। इस विभाजन से यह सिद्ध होता है कि चन्द्रमा कभी भी बलहीन नहीं होता है अर्थात् चन्द्र पापी नहीं होता है।

सूर्य-क्रूर, भौम शनि पापग्रह, शुक्र-चन्द्र-गुरु शुभग्रह और बुध भी शुभ होता है।

बुध में विशेषता यह है कि बुध जिस क्रूर, पाप, शुभ के साथ में रहता है उसी के अनुरूप जातक को फल प्रदान करता है ॥२०-२१॥

राहुकेत्वोः पापत्वमुक्तं वसिष्ठेन—

सूर्यभौमशनिराहुकेतवः क्रूरसंज्ञखचराः क्षयचन्द्रः।
पूर्णचन्द्रगुरुशुक्रचन्द्रजाः सर्वकर्मसु हि सौम्यखेचराः ॥२२॥

राहु केतु को भी पाप संज्ञा वसिष्ठ ऋषि ने की है अब उसी को कहते हैं।

वसिष्ठ ऋषि का कथन है कि सब कार्यों में सूर्य, भौम, शनि, राहु, केतु और क्षीण चन्द्रमा ये पाप ग्रह और पूर्ण चन्द्रमा गुरु-शुक्र बुध शुभग्रह होते हैं ॥ २२॥

ग्रहाणां विप्रादिवर्णाधीशत्वं [3]सूक्ष्मजातके—

जीवसितौ विप्राणां क्षत्रस्यारोष्णगू विशां चन्द्रः।
शूद्राधिपः शशिसुतः शनैश्चरः सङ्करजातीनाम् ॥२३॥
प्रयोजनन्तु हृतनष्टादिषु ग्रहबलाच्चौरादीनां जातिज्ञानम्।

तदुक्तञ्च—[4]वयोजातिश्च लग्नपादिति।

अब ग्रहों की वर्णाधीशता अर्थात् कौन सा ग्रह किस वर्ण का स्वामी होता है इसे लघुजातक के आधार पर बताया जाता है।

ब्राह्मण जाति के स्वामी गुरु व शुक्र, क्षत्रियों के सूर्य, मङ्गल, वैश्यों का स्वामी चन्द्र, शूद्रों का बुध और सङ्करजातियों (अन्त्यजनों) का स्वामी शनि होता है ॥२३॥

इन विप्रादि संज्ञाओं का प्रयोजन यह है कि चोरी हुई व नष्ट हुई वस्तु के प्रश्न में

---

१. बृ० जा० (२ अ० ५ श्लो०) की भट्टोत्पली में उपलब्ध है। २. पापाः पु० पा०। ३. लघुजातक ३ अ० ६ श्लो०। ४. षट्पञ्चाशिका ७ अ० १३ श्लो०।

Copyrighted material

बलवान् ग्रह से चोरादि की जाति का ज्ञान होता है अर्थात् चोर किस जाति का है इसका निर्णय करना चाहिये।

षट्पञ्चाशिका में कहा है कि प्रश्न लग्न के लग्नेश से अवस्था व जाति का ज्ञान करना चाहिये। विप्रादि वर्ण का ज्ञान तो इससे समझ में आता है किन्तु अवस्था का ज्ञान कैसे करना चाहिये। इस प्रश्न का उत्तर भी पाठकों की सुविधा के लिये यहाँ पर दिया जा रहा है।

ग्रन्थान्तर में कहा है—'वयांसि तेषां स्तनपानबाल्यव्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः। अतीववृद्धा (वय) रविचन्द्रभौमज्ञशुक्रवाग्मीनशनैश्चराणाम्॥' यदि चन्द्रमा प्रश्न लग्नेश हो तो चोर की अवस्था स्तनपान करने वाले बालक के समान, भौम हो तो चार वर्ष से अधिक, बुध हो तो ब्रह्मचारी बारह वर्ष तक, शुक्र हो तो जवान तीस वर्ष तक, गुरु हो तो ३१ से ५० तक, सूर्य हो तो ७० वर्ष तक और शनि हो तो ७० से ऊपर अवस्था का जानना चाहिये।

**विशेष**—प्रकाशित लघुजातक में 'क्षत्राणां रविकुजौ' तथा 'सङ्करभवानाम्' यह पाठान्तर है॥२३॥

एषामपघातेन वर्णोपघातो वाच्यः। यदाह सत्य—

[1]गुरुशुक्रौ रविभौमौ चन्द्रः सौम्यः शनैश्चरश्चेति।
विप्रक्षत्रियविट्शूद्रसङ्कराणां प्रभुत्वकराः॥२०॥
अजये जयेऽपि (ऽथ) तु (मु) ष्टावप्रीतौ वित्तनाशने लाभे।
[तेभ्यस्तेभ्यः कुर्युर्गुणांश्च दोषांश्च पक्षांस्तान्]॥२५॥

अब इन वर्ण संज्ञक ग्रहों की निर्बलता से उस वर्ण के मनुष्य से हानि होती है। यह सत्याचार्य जी के मत से कहते हैं।

ब्राह्मणों के स्वामी गुरु व शुक्र, क्षत्रियों के सूर्य व भौम, वैश्यों के चन्द्रमा, शूद्रों के बुध और अन्त्यज जाति का स्वामी शनि ग्रह होता है।

कुण्डली में जिस वर्ण का ग्रह बलवान् होता है जातक उसी वर्ण के जनों का नेता वा मुखिया वा उस वर्ण के मनुष्य से लाभ करता है। निर्बल ग्रह के वर्ण से लड़ाई में पराजय, लाभ में हानि इत्यादि ग्रहों के आधार पर तत्तद् वर्ण से अन्य भी जानना चाहिये॥२४-२५॥

अथ ग्रहाणां वेदेशत्वमुक्तं [2]सारावल्यां

ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदाधिपः सितः।
सामवेदाधिपो वक्रः शशिजोऽथर्ववेदपः॥२६॥

प्रयोजनन्तु शाखेशबले उपनयनादि प्राशस्त्यमिति।

अब ग्रहों के वेदेशत्व को अर्थात् कौन-सा ग्रह किस वेद का स्वामी होता है इसे सारावली ग्रन्थ के आधार पर बताया जाता है।

---

१. बृ० जा० २ अ० ७ श्लो० की भट्टोत्पली टीका में प्राप्त है। २. ४ अ० १९ श्लोक।

Copyrighted material

ऋग्वेद का स्वामी गुरु, यजुर्वेद का शुक्र, सामवेद का भौम और अथर्ववेद का बुध स्वामी होता है ।।२६।।

इन वेदाधीशों का प्रयोजन यह है कि इनके बलवान् होने पर यज्ञोपवीतादि संस्कार करना चाहिए । अर्थात् जिस वर्ण का जो वेदाधिपति होता है उसके बलवान् होने पर उसी के वार में उस ग्रह की राशि (लग्न) में यज्ञोपवीतादि संस्कार होने से शुभता होती है ।

**विशेष**—मुहूर्तचिन्तामणि में कहा है—'शाखेशवारतनुवीर्यमतीव शस्तं' तथा नारद का वचन भी इस प्रकार है 'शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः । शाखाधिपति-लग्नञ्च त्रितयं दुर्लभं व्रते' । यहाँ जातक ग्रन्थ में जो वेदाधीशता का वर्णन है वह मेरी दृष्टि में तत्तद्वर्णों के अधिपति ग्रह के बलवान् होने पर अपने वेद का अध्ययन जातक करेगा या नहीं इसका विचार करना चाहिये ।

तथा अन्य भी प्रयोजन यह है कि वेदाधीश यदि अनिष्ट स्थान में हो तो उसकी शान्ति के लिये तत्तद् वेदोक्त मन्त्रों से पूजा करने पर अशुभता नष्ट होती है ।

प्रकाशित सारावली में 'यजुर्वेदपतिः' तथा 'शशिजोऽथर्ववेदराट्' यह पाठान्तर है ।।२६।।

(अथ) ग्रहाणां पुंस्त्रीनपुंसकविभागः पञ्चतत्त्वविभागश्च बृहज्जातके[1]—

बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवती नराश्च शेषाः ।
शिखि-भू-ख-पयो-मरुद्गणानामधिपा भूमिसुतादयः क्रमेण ।।२७।।

जन्मनि चिन्तायां हृतनष्टादिषु बलवतः स्वपक्षमेव कुर्वन्तीति प्रयोजनम् ।

अब ग्रहों के पुरुष-स्त्री-नपुंसक विभाग व पञ्चतत्त्व विभाग को अर्थात् कौन-कौन सा ग्रह पुरुष संज्ञक, कौन-कौन सा स्त्री और कौन-कौन सा ग्रह नपुंसक होता है, तथा किस ग्रह का कौन सा तत्त्व है इसको बृहज्जातक के आधार पर बताया जा रहा है ।

बुध व शनि नपुंसक, शुक्र व चन्द्रमा स्त्री ग्रह और शेष (सूर्य, भौम, गुरु) पुरुष ग्रह होते हैं ।

भौम का अग्नि, बुध का भूमि, गुरु का आकाश, शुक्र का जल और शनि का वायु तत्त्व होता है । अर्थात् ये ग्रह इन तत्त्वों के स्वामी होते हैं ।।२७।।

इस पुरुष-स्त्री-नपुंसक विभाग का प्रयोजन है कि जन्म के समय जो ग्रह सबसे बलवान् होता है उसी के तुल्य जातक का स्वभावादि होता है तथा चुराई हुई व खोई वस्तु के प्रश्न में बलवान् ग्रह के आधार पर स्त्री-पुरुषादि का ज्ञान होता है ।

**विशेष**—प्रकाशित बृहज्जातक में 'मरुद्गणानां वशिनो भूमि·····'यह पाठान्तर है ।२७।

पञ्चभूतप्रयोजनं तत्रैव[2]—

छायां महाभूतकृतां च सर्वे निवृत्त(र्वृत्त)यन्ति स्वदशामवाप्य ।
क्वम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान्गुणांश्च नासास्यदृक्त्वक्श्रवणानुमेयान् ।।२८।।

अब ग्रहों के पंचमहाभूत विभाग का क्या प्रयोजन होता है। इसे बृहज्जातक के आधार पर कहते हैं ।

---

१. २ अ० ६ श्लो० । २. बृ० जा० ८ अ० २१ श्लो० ।

Copyrighted material

पूर्व (२७ श्लो०) श्लोक में सूर्य व चन्द्रमा के तत्त्वों का वर्णन नहीं किया गया है क्योंकि सूर्य का अग्नि और चन्द्रमा का जल तत्त्व होता है यह प्रसिद्ध है। समस्त ग्रह अपनी-अपनी दशा में अपने-अपने तत्त्व सम्बन्धिनी छाया और शारीरिक कान्ति को प्रकट करते हैं। नासिका, मुख, दृष्टि, त्वचा व कान के द्वारा ग्राह्य क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के गुण (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द) को भी अपनी-अपनी दशा में अभिव्यक्त करते हैं।

उदाहरणार्थ जैसे—सूर्य व भौम का महाभूत अग्नि है, और अग्नि की छाया इस देह में नेत्र है तथा उसका गुण रूप है। इसलिये कुण्डली में यदि सूर्य या भौम शुभद हो तथा इन्हीं की महादशा या अन्तर्दशा हो तो नेत्र में नीरोगता तथा सुन्दर-सुन्दर रूपों के दर्शन सुख होते हैं। इसी प्रकार बुध का तत्त्व पृथ्वी है, बुध की छाया नासिका की शोभा है तथा गुण गन्ध है। इसीलिये बुध की शुभ दशा में नाक की शोभा व नीरोगता रहती है और सुगन्धित द्रव्य से लाभ होता है वा सुगन्ध से सुख होता है। अशुभ दशा में उक्त अंग रोग से युक्त होता है तथा उक्त द्रव्यों से हानि होती है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी इन तत्त्वों के आधार पर फल समझना चाहिये।

**विशेष**—प्रकाशित बृहज्जातक में 'सर्वेऽभिव्यञ्जयन्ति' यह समुचित ही पाठ उपलब्ध होता है। 'निवृत्तयन्ति' इसका अर्थ यहाँ उचित नहीं प्रतीत होता है ॥२८॥

ग्रहाणां सत्त्वादिगुणं सप्रयोजनमाह गुणाकर[1]:—

सत्त्वं शशीज्योष्णकराः सितज्ञौ रजस्तमक्ष्मातनयार्कपुत्रौ।
यस्याभ्रवल्लृयंशगतो दिनेशस्तत्तुल्यसत्त्वादिगुणो नरः स्यात् ॥२९॥

अब ग्रहों के सत्त्वादि गुण विभाजन को अर्थात् किन ग्रहों की सत्त्व, किन की रज और किस ग्रह की तम संज्ञा होती है, इस विषय को गुणाकर के वाक्य से बताते हैं।

चन्द्रमा, गुरु व सूर्य की सत्त्व संज्ञा होती है अर्थात् ये ग्रह सात्विक प्रकृति के होते हैं। शुक्र बुध राजसी और भौम व शनि तामसी प्रकृति वाले होते हैं।

इस ग्रहों के सत्त्वादि विभाजन का उपयोग यह होता है कि कुण्डली में सूर्य जिस ग्रह के त्रिंशांश में होता है उस ग्रह की प्रकृति (सत्त्वादि गुण) के अनुसार ही जातक की अन्तःकरण की वृत्ति होती है ॥२९॥

वराहोऽपि—

[2]सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशांशे यस्य भास्करस्तादृक्। इति ॥

अत्र पूर्वोक्तपञ्चभूतलक्षणं सत्त्वादिगुणलक्षणञ्च वक्ष्यमाणपञ्चमहापुरुषराजयोगविचारे विस्तरेण लिख्यते। तत्रत एवावधार्यम्। नन्वर्कस्येन्दोश्च त्रिंशांशकाभावादनयोः सत्त्वादिगुणनिरूपणं व्यर्थं स्यादिति चेन्न। यतो बलवद्ग्रहवशादपि प्रकृतिर्भवति।

तदुक्तं देवकीर्तिना—

[3]बलवद्भिर्गुणो भवेज्जातः

१. २ अ० ४ श्लो०। २. लघुजातक ६ अ० २ श्लो०। ३. बृ० जा० २ अ० ७ श्लो० की भट्टोत्पली में प्राप्त है।

Copyrighted material

अत्र त्रिंशांशकतो गुणविचारो मुख्यः। यदाह श्रीसूर्यः—

यस्य त्रिंशांशगश्चाहं तद्गुणो जातको भवेत्।

सत्त्वादिप्रकृतिरन्तरात्मनो भवतीत्युक्तं शुकजातके—

सत्त्वादिप्रकृतिं स्वीयां प्रयच्छन्त्यन्तरात्मन इति।

आचार्य वराहमिहिर जी ने भी अपने लघुजातक ग्रन्थ में कहा है कि जन्म या आधान काल में सूर्य जिस सत्त्वादि ग्रह के त्रिंशांश में होता है तदनुरूप जातक में भी सत्त्वादि गुण का निवास रहता है।

इस ग्रन्थ में पूर्वकथित पञ्चभूत लक्षण तथा सत्त्वादि गुण लक्षण का विचार विस्तार से आगे कथित पञ्चमहापुरुष राज योग विचार प्रकरण में किया गया है। वहीं से इन दोनों को समझना चाहिये।

यहाँ यह शङ्का होती है कि त्रिंशांश गणना में सूर्य और चन्द्रमा के जब त्रिंशांश नहीं होते तो सत्त्वादि संज्ञा में इन दोनों की गणना व्यर्थ हो जायगी। किन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि सबसे बली ग्रह के आधार पर भी सत्त्वादि गुण का विचार होता है। केवल त्रिंशांश से ही सत्त्वादि गुण का विचार नहीं होता है।

श्री देवकीर्ति ने कहा है कि जन्म या आधान के समय में जो ग्रह सबसे बलवान् होता है, उसके आधार पर सत्त्वादि गुण का विचार करना चाहिए।

ग्रन्थकार का कथन है कि त्रिंशांश से सत्त्वादि गुण का विचार मुख्य है। क्योंकि श्री सूर्य भगवान् ने कहा है कि मैं (सूर्य) जिस ग्रह के त्रिंशांश में होता हूँ उस ग्रह के सत्त्वादि गुण के समान जातक होता है।

सत्त्वादि प्रकृति जातक की अन्तरात्मा से होती है। ऐसा शुक्रजातक में कहा है। ये ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसार जातक के अन्तःकरण में सत्त्वादि प्रकृति को देनेवाले होते हैं।

**विशेष**—ग्रहों के सत्त्वादि विभाजन में यवनेश्वराचार्य जी से मतभेद प्रतीत होता है क्योंकि यवनेश्वर ने कहा है—'सत्त्वाधिका भास्करभौमजीवा भृग्वात्मजो राजसिकः शशी च। शनैश्चरस्तामसिको बुधस्तु संयोगताऽस्माल्लभते विशेषान्' इस वाक्य में भौम को सत्त्व, चन्द्रमा की राजस और बुध की संयोगवश संज्ञा का वर्णन विपरीत है।

मेरी दृष्टि में ग्रन्थान्तरों से विरोध होने के नाते इस मत को ग्रन्थकार ने स्वीकार नहीं किया है क्योंकि वराह ने भी इसी प्रकार से ग्रहों की सत्त्वादि संज्ञा का वर्णन किया है।

जिस जातक की सात्त्विक प्रकृति होती है उसमें दया की भावना, स्थिरता, सत्यता, मृदुता और ब्राह्मण व देवता की भक्ति ये गुण होते हैं।

जिसकी राजसिक प्रकृति होती है वह जातक काव्यकला में अर्थात् रचना करने में निपुण या ग्रन्थ बनाने वाला, ललित कलाओं का विशेषज्ञ, यज्ञ करने वाला, स्त्रियों में दत्त चित्त अधिक पराक्रमी वीर होता है।

जिसकी तामसी प्रकृति होती है वह जातक अधिक क्रोधी, दूसरों को ठगने वाला, मूर्ख, आलसी और अधिक सोने वाला होता है। कहा है—

Copyrighted material

'यः सात्त्विकस्तस्य दयास्थिरत्वं सत्यार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः। रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः। तमोऽधिको वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधवरोऽतिनिद्रः' ॥२९॥

अथ ग्रहस्वरूपम्। तत्र वराहः[1]—

(सू०) मधुपिङ्गलदृक्चतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सवितात्पकचः।

(च०) तनुवृत्ततनुर्बहुवातकफः प्राज्ञश्चेन्दुर्मृदुवाक् शुभदृक् ॥३०॥

मधुपिङ्गलदृष्टिश्चतुरस्रतनुः प्रसारितभुजद्वयोच्छ्रायसमः। तनुवृत्ततनुः कृशवतुलाङ्गः।

(भौ०) क्रूरदृक्तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः।
क्रूरदृग् भौमः कृशमध्यस्तनूदरः श्लिष्टवाग् गद्गदभाषो।

(बु०) श्लिष्टवाक् सततहास्यरुचिज्ञः पित्तमारुतकफप्रकृतिश्च ॥३१॥

(गु०) बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्धजेक्षणो बृहस्पतिः श्रेष्ठमतिः कफात्मजः।

(शु०) भृगुः सुखी कान्तवपुः सुलोचनः कफानिलात्मा सितवक्रमूर्धजः ॥३२॥

(श०) मन्दोऽलसः कपिलदृक्कृशदीर्घगात्रः
स्थूलद्विजः परुषलोमकचोऽनिलात्मा।
स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्रवसासमज्जा
मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः ॥३३॥

स्थूला महान्तो द्विजा दन्ता यस्य स स्थूलद्विजः। मज्जा अस्थ्यन्तरगतो धातुविशेषः।

प्रयोजन्तु जन्मकाले यो ग्रहो बलवांस्तत्प्रकृतिकस्तद्धातुसारश्च तत्कालजातो भवति।

यद्वा हृतनष्टप्रश्ने एवंविधरूपाश्चौरादयः व्याधितप्रश्ने च लग्नस्वामिलग्ननवांशस्वामिवशेन तद्दोषोद्भवा पीडा च वक्तव्येति।

अब किस ग्रह का कैसा स्वरूप व प्रकृति होती है इसे वराहमिहिर के आधार पर बताते हैं।

**सूर्य**—इसके नेत्र की पुतलियाँ शहद के समान कुछ भूरापन से युक्त लाल होती हैं। शरीर की बनावट चौकोर है तथा इसकी पित्त प्रकृति और सिर के बाल थोड़े होते हैं।

**चन्द्रमा**—इसका शरीर नाटे कद का व गोलाकृति, त्रिदोषों में से वायु व कफ की प्रधानता होती है। यह विद्वान् अर्थात् विशेष जानकार होता है। इसकी बोली में मीठापन व नम्रता है और इसके नेत्र अच्छे हैं अर्थात् बुरी निगाह से देखने वाला नहीं है।

**मङ्गल**—इसके नेत्रों में क्रूरता है और तरुण अवस्था के सदृश इसका स्वरूप (आकृति) है। क्रोध से युक्त दृष्टि होते हुए भी स्वभाव से उदार है। त्रिदोषों में से पित्त की प्रधानता है अर्थात् पित्त की प्रकृतिवाला है। इसका चित्त अधिक चञ्चल है और इसका शरीर का मध्य भाग अर्थात् पेट छोटा है वा कमर पतली है।

---

१. वृहज्जातक २ अ० ८-१ श्लो०।

Copyrighted material

**बुध**—इसकी बोली में गद्गदता अर्थात् मधुरता होती है। हमेशा हँसने में प्रीति रखने का स्वभाव और त्रिदोष से युक्त अर्थात् कफ, वात, पित्त से युक्त प्रकृति वाला होता है।

**गुरु**—इसके शरीर की आकृति लम्बी और स्थूल होती है। मूर्धज-सिर के बाल व नेत्र भूरे होते हैं। इसकी बुद्धि श्रेष्ठ होती है या सत्कार्यों में प्रवृत्त होती है। इसमें कफ की प्रधानता होती है या इसकी कफ प्रकृति होती है।

**शुक्र**—यह सुखमय है अर्थात् इसके आधार पर कुण्डली में इसकी स्थिति से पता चलता है कि जीवन में सुख कैसा रहेगा। इसकी शुभता प्राप्त होने पर सुख अन्यथा अभाव होता है। इसके शरीर की बनावट अधिक सुन्दर व अच्छी दृष्टि होती है। इसकी कफ व वायु प्रकृति है या कुण्डली में यदि शुक्र मृत्यु देने वाला है तो कफ वा वायु वा दोनों के दोषजन्य व्याधि से अन्तकाल होता है। इसके सिर के बाल काले घुँघराले होते हैं।

**शनि**—यह आलसी है क्योंकि समस्त ग्रहों से इसकी कक्षा ऊपर है और इसे भगण भोगने में तीस वर्ष लगते हैं जब कि अन्य ग्रहों को इतना समय नहीं लगता, इससे कम समय में ही अपने भगण को पूर्ण कर लेते है। यदि कुण्डली में सबसे बलवान् ग्रह शनि हो या लग्नगत नवांश शनि का हो तो जातक का स्वभाव आलसी होता है अर्थात् इसके प्रत्येक कार्य धीरे-धीरे होते हैं। इसकी आँख भूरापन से युक्त लालिमा लिये हुए होती है। इसके शरीर की बनावट लम्बी किन्तु दुबली-पतली है। इसके दाँत बडे या मोटे हैं। इसके शरीर के लोम और बाल कठोर हैं। इसके शरीर में वायु की प्रधानता है अर्थात् इसकी वायु प्रकृति है। यदि कुण्डली में शनि मृत्युकारक है तो वायुजनित पीड़ा से मृत्यु होगी।

अब शरीर धातुओं में किस ग्रह की कौन धातु है अर्थात् किस धातु पर किस ग्रह का अधिकार है। इसे बताते हैं।

शनि की धातु शरीर में नस होती हैं। शनि की स्थितिवश से जातक की कैसी नसें हैं इसका ज्ञान करना चाहिये। सूर्य की अस्थि = हड्डी, चन्द्रमा की रुधिर = खून, बुध की त्वक् = खाल, (शरीर का ऊपरी भाग), शुक्र की शुक्र = वीर्य, गुरु की वसा = चर्बी और भौम की मज्जा = सार = हड्डी के भीतर की ताकत, धातु है।

इन ग्रहों के स्वरूपों व आकृतियों का तात्पर्य यह है कि जन्मकुण्डली में जो ग्रह सबसे बलवान् होता है उसके समान जातक की प्रकृति व तत्तुल्य धातु में पुष्टता होता है।

अथवा चोरी हुई वस्तु व खोई हुई वस्तु के प्रश्नकाल में जो ग्रह बली होता है उस ग्रह के समान ही चोर का स्वरूप व प्रकृति होती है, और रोगी के प्रश्नकाल में लग्नस्थ नवांश स्वामी ग्रह के समान वातादि से उत्पन्न पीड़ा होती है। अतः ग्रहों के स्वरूप व आकृति आदि का ज्ञान फलादेश में महत्त्व रखता है।

**विशेष**—प्रकाशित बृहज्जातक में 'प्राज्ञश्च शशी' तथा 'शुक्रवशे च मज्जा' यह पाठान्तर है ॥३१-३३॥

अथ ग्रहाणामवस्थावर्षाणि शुकजातके—

बालवयस्को भौमः कुमारवेषो बुधो गुरोस्त्रिंशत्।
शुक्रः षोडशवर्षो रविश्च पंचाशदब्दश्च ॥३३॥

Copyrighted material

चन्द्रः सप्ततिवर्षः शतवर्षं शनिराहुकेत्वोः (तूनां) स्यात् ।
येषां प्रसूतिसमये सदसत्फलदायकः खेटः ॥३५॥
बलसहितः स्वावस्थाकालस्वरूपं विशेषतः कुर्यात् ।

अब किस ग्रह की कितने वर्ष की अवस्था होती है। इसे शुकजातक के आधार पर कहते हैं। इस का ज्ञान चक्र से निम्न है।

| सू० | चं० | मं० | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | राहु | केतु |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ५० | ७० | ५ | १० | ३० | १६ | १०० | १०० | १०० |

५ वर्ष बालक अवस्था मङ्गल की, १० वर्ष कुमार बुध की, ३० वर्ष गुरु की, १६ वर्ष शुक्र की, ५० वर्ष सूर्य को, ७० वर्ष चन्द्रमा और शनि-राहु-केतु की सौ सौ वर्ष की अवस्था होती है। इन अवस्थाओं का प्रयोजन यह है कि जन्म के समय ग्रहों की शुभ वा अशुभ स्थिति से उक्त अवस्थाओं में शुभ वा अशुभ फल जातक को प्राप्त होता है ॥३४-३५॥

अथ ग्रहाणां वस्त्रज्ञानं धातुज्ञानञ्च जातकरत्नमालायाम्—

स्थूलं नूतनमेव वह्निकहतं वस्त्रं जलैराहतं
मध्यस्थं दृढमेव जीर्णकमिदं रव्यादितश्चिन्तयेत् ।
ताम्रं स्यान्मणिहेममिश्रितमतो रौप्यं तु मुक्ताऽयसी ।
प्रश्ने जन्मनि वा बलाधिकतराल्लाभादिकं चिन्तयेत् ॥३६॥

अब किस ग्रह का किस प्रकार का वस्त्र तथा धातु विशेष होता है इसको जातक-रत्नमाला के आधार पर बताया जाता है।

**वस्त्र**—सूर्य का स्थूल = मोटा, चन्द्रमा का बिलकुल नया, भौम का अग्नि से जला हुआ, बुध का जल से भीगा हुआ, गुरु का मध्यम अर्थात् न अति नवीन न अधिक पुराना, शुक्र का दृढ़ मजबूत और शनि का जीर्ण फटा हुआ वस्त्र होता है।

**धातु**—सूर्य की तामा, चन्द्रमा की मणि, भौम की सुवर्ण, बुध की मिश्रित कांसा आदि, गुरु की चांदी, शुक्र की मोती और शनि की लोहा धातु होती है।

इन ग्रहों की संज्ञाओं का प्रयोजन यह है कि प्रश्न काल के समय में वा जन्म के समय में बलवान् ग्रह के आधार पर चोर के वस्त्र का ज्ञान वा जन्म के समय सूतिका के वस्त्र का परिज्ञान होता है।

धातु संज्ञा का उपयोग प्रश्न के समय बली ग्रह से तत्सम्बन्धी धातु विशेष की चिंता वा जन्म के समय से सूतिका के घर में उस धातु की सत्ता वा जीवन में उससे लाभादि का ज्ञान होता है ॥३६॥

अत्र स्वगृहे स्थितगुरोः सुवर्णमपि वेदितव्यम् । एतदुक्तं बादरायणेन[1]—

अर्कस्य ताम्रं मणयो हिमांशोर्भौमस्य हेमेन्दुसुतस्य यु (शु)क्तिः ।
जीवस्य रौप्यं स्वगृहे स्थितस्य तस्यैव हेमोशनसश्च मुक्ता ॥३७॥
तीक्ष्णांशुदेहप्रभवस्य सीसं कृष्णायसं वा प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

प्रयोजनं सूतिकागृहे बलवद्ग्रहधातुसत्ता (मता) वाच्या । तच्छुभदशायां यद्-द्रव्यलाभः । अथाशुभदशायां तद्द्रव्यहानिर्ज्ञेया ।

१. बृहज्जातक २ अ० १२ श्लो० की टीका में उद्धृत है।



Copyrighted material

ग्रहों की धातु सम्बन्धी जानकारी के विषय में यदि गुरु अपनी राशियों में स्थित हो तो उससे सुवर्ण सोना भी जानना चाहिए। यह विशेष बात बादरायण ऋषि ने बतलाई है। अब उसी को कहते हैं।

सूर्य की धातु तामा, चन्द्रमा की मणि, मङ्गल की सोना, बुध की युक्ति (मिश्रित), गुरु की चांदी और अपने घर (धनु, मीन) में होने पर हेम अर्थात् सुवर्ण, शुक्र की मोती और शनि की सीसा या काला लोहा धातु है।

**विशेष**—भट्टोत्पली टीका में 'सीसं कृष्णायसं वा' इसके स्थान पर 'सीसकृष्णायसं च' यह पाठान्तर है। इसलिये सीसा और काला लोहा यह दोनों ही धातु हैं। यह भी शनि के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त होती है ॥३७॥

अथ ग्रहाणां रसस्थानानि सारावल्याम्[1]—

कटु-लवण-तिक्त-मिश्र-मधुराम्ल-कषायरसविशेषाणाम्।
सुरगृहकाग्निविहारार्थशयनपांसूत्कराणाञ्च ॥३८॥

रव्यादयः स्वामिन इति शेषः। कं जलगृहं, पांसू (शू) त्करोऽवकरस्थानम्।

प्रयोजनन्तु—

मासि तृतीये स्त्रीणां दौहृदकं जायते तथावश्यम्[2]।
मासाधिपस्वभावैर्विलग्ननयोगादिभिश्चान्यत् ॥३९॥

भोजनप्रश्ने च तद्ग्रहलग्ननवांशवशात्तत्तद्रसान्वितभोजनं वक्तव्यम्। उत्तरार्धप्रयोजनन्तु बलवद्ग्रहवशात्प्रसवस्थानज्ञानं हृतनष्टादौ तत्तत्स्थानज्ञानम्।

प्रत्येक ग्रह के वस्त्र व धातुओं को बताकर अब रस और स्थान को प्रयोजन के साथ सारावली ग्रंथ के आधार पर बताते हैं।

**रस** = सूर्य का कड़ुवा, चन्द्रमा का क्षार (क्योंकि समुद्र से उत्पत्ति है), भौम का तिक्त (तीता, बुध का मिश्र (मिला जुला), गुरु का मीठा, शुक्र का खट्टा और शनि का कसैला रस है।

**स्थान**—सूर्य का देव स्थान, चन्द्रमा का जलगृह, भौम का अग्नि, बुध का क्रीडा-स्थल, गुरु का धन-गृह, शुक्र का शयनागार और शनि का कतवारखाना स्थान है। अर्थात् रव्यादि ग्रह इन रस व स्थानों के स्वामी हैं।

सूर्यादि ग्रहों के रस व स्थान बतलाने का प्रयोजन यह है कि गर्भाधान के अनन्तर तीसरे मास में स्त्रियों को अनेक प्रकार की इच्छा होती है उनका ज्ञान उस मास के स्वामी के आधार पर करना चाहिये अर्थात् भोजन में कौन सा रस विशेष प्रिय और किस प्रकार की भूमि में निवास करने की इच्छा गर्भवती की है इत्यादि का ज्ञान करने के लिये ही रस व स्थानों का कथन है।

इन दोनों का विचार मासाधिप के स्वभाव तुल्य या आधान कालिक वा प्रश्नकालिक लग्नादि ग्रह योगवश पहिचाना जाता है।

भोजन के प्रश्न में अर्थात् यदि कोई भोजन करके आये और प्रश्न करे कि मैंने किस रस से मिश्रित भोजन किया है तो उस समय में प्रश्न लग्न में जो ग्रह स्थित हो उस ग्रह के बल पर वा लग्न नवांश स्वामी के आधार पर रस जानना चाहिये।

---

१. ४ अ० १५ श्लो०। २. सारावली ८ अ० ४३ श्लो०।

Copyrighted material

सूर्यादि ग्रहों के स्थान बताने का तात्पर्य यह है कि जन्माङ्ग में जो बली ग्रह हो उसी के स्थान में प्रसव हुआ है ऐसा जानना चाहिये। खोई हुई व नष्ट हुई वस्तु के प्रश्न में बलवान् ग्रह के आधार पर वस्तु का स्थान समझना चाहिये।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'सुरगृहकाग्नि' के स्थान पर 'सुरतोयाग्नि' यह व ३९वाँ प्रकाशित सारावली का ही है। प्राप्त होरारत्न की पुस्तक में 'दोहदको जायते रूपं वा अवश्यम्' 'मासाधिपस्य भावैर्लग्नयोगादिभिश्चिन्त्यम्' यह पाठान्तर मिलता है।

बृ० जा० की २ अ० १४ श्लो० भट्टोत्पली टीका में ३९वें श्लोक का अन्य पाठान्तर इस प्रकार से उपलब्ध है। जैसे—'दोहदको जायतेऽवश्यम्। स रसाधिपस्य भावैर्विलग्नयोगादिभिश्चिन्त्यः' ॥३८-३९॥

अथ ग्रहाणामयनादिस्वामित्वमृतुस्वामित्वं चोक्तं सारावल्याम्[1]—

अयनक्षणदिवसर्तुकमासाख्यतदर्धशरदां दिनेशाद्याः।
शिशिराद्यानामीशाः शनि (शि) सितभौमेन्दुबुधजीवाः ॥४०॥

अब ग्रहों के काल व ऋतु को अर्थात् कौन-सा ग्रह कितने काल का व कौनसी ऋतु का स्वामी होता है। इसे सारावली ग्रन्थ के आधार पर ग्रन्थकार बताते हैं।

अयन का स्वामी सूर्य, क्षण का = मुहूर्त = २ घटी का, चन्द्रमा, १ दिन का भौम, ऋतु = २ मास का बुध, १ मास का गुरु, १५ दिन का शुक्र और वर्ष का स्वामी शनि होता है।

ऋतु—शिशिर का शनि, वसन्त का शुक्र, ग्रीष्म का मंगल, वर्षा का चन्द्रमा, शरद् का बुध और हेमन्त ऋतु का अधिपति गुरु होता है।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में—'मासतदर्ध' व 'रादीनामीशाः' यह पाठान्तर प्राप्त हैं ॥४०॥

अयनादि स्वामोप्रयोजनमाह मणित्थः[2]—

लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नोदितांशसमसंख्यः।
वक्तव्यो रिपुविजये (षये) गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे ॥४१॥

अस्यार्थः। लग्ने यावन्तो नवांशा उदिता भवन्ति तावत्संख्यः कालोंऽशकः स्वामिवशेन वक्तव्यः। तद्यथा। यदि नवांशस्वामी रविर्भवति तदा तावदयनानन्तरं कार्यसिद्धिर्भवति। एवं चन्द्रे तावन्मुहूर्तानन्तरं, भौमे तावद्दिनानन्तरमित्यादि-ज्ञेयम्। एवं प्रश्नलग्नात्प्रसवेऽपि कालो ज्ञेयः।

केचित् प्रश्नलग्ने यस्य ग्रहस्य नवांशकोदयो भवति स च ग्रहस्तस्मान्नवांशकात् यावत्संख्ये नवांशे भवति तत्संख्यो नवांशस्वामिग्रहवशेनायनादिना वा कालो वक्तव्य इत्याहुः।

ऋतुस्वामिप्रयोजनन्तु नष्टजातके ऋतुनिर्देशः स च लग्ने यो ग्रहो भवति

१. ४ अ० १७ श्लो०। २. बृ० जा० २ अ० १४ श्लो० की भट्टोत्पली टीका में है।

Copyrighted material

तद्वशेन कार्यः। यदि च लग्ने न कोऽपि ग्रहस्तदा द्रेष्काणस्वामिवशेन। यदि च लग्ने द्व्याद्याः ग्रहाः भवन्ति तदा बलवद्ग्रहवशेन। तथा च मणित्थः—

द्व्याद्यैर्लग्नोपेतैर्यो बलवांस्तद्ग्रहस्तु निर्देश इति।

अब इन अयनादि काल स्वामी व ऋतु स्वामी ग्रहों का क्या प्रयोजन होता है इसे मणित्थ ऋषि के वचन से बताते हैं।

प्रश्न लग्न में जिस ग्रह का नवांश वर्तमान हो उस ग्रह के समान नवांश संख्या तुल्य अयनादि काल समझना चाहिये। अर्थात् यदि कोई प्रश्न करे कि मेरे कार्य की सिद्धि कितने काल में होगी तो इस प्रश्न के निर्णय में यदि सूर्य नवांशपति हो तो नवांश संख्या तुल्य अयन में, यदि चन्द्रमा हो तो नवांश संख्या तुल्य मुहूर्त में, यदि भौम हो तो नवांश संख्या सम दिन में कार्य सिद्धि होगी। इसी प्रकार अन्य ग्रहों से भी समझना चाहिये। इस रीति से शत्रु के जय-पराजय में या गर्भाधान के विषय में काल का ज्ञान करना चाहिये ॥४१॥

या किसी-किसी का तो यह मत है कि प्रश्न लग्न में जिस ग्रह का नवांश हो और वह ग्रह उस नवांश से जितनी संख्या के नवांश में स्थित हो तथा उस नवांश स्वामी ग्रह के आधार पर सूर्यादि ग्रह होने पर अयनादि काल समझना चाहिये।

ऋतु स्वामी ग्रहों का प्रयोजन नष्टजातक ज्ञान में ऋतु ज्ञान के लिये होता है। जैसे प्रश्न लग्न में जो ग्रह हो वह जिस ऋतु का स्वामी हो वह ऋतु जन्म की होती है। यदि प्रश्न लग्न में कोई ग्रह न हो तो द्रेष्काण के स्वामी ग्रह की ऋतु समझना चाहिये। यदि प्रश्न लग्न में दो तीन चार आदि ग्रह हों तो बली ग्रह के आधार पर ऋतु को जानना चाहिये।

अथ दृष्टिः। (तत्र) वराहः[1]—

दशमतृतीये नवपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रे च।
पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ॥४२॥

अन्यच्च[2]—

पूर्णं पश्यति रविजस्तृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः।
चतुरस्रं भूमिसुतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रञ्च ॥४३॥

अत्र चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन कुजार्कीज्यानां समुच्चयात्सप्तमे सर्वं एव संपूर्णदृष्टय इत्यर्थः।

अब ग्रहों की दृष्टि के विषय में अर्थात् किस ग्रह को किस स्थान पर पूर्ण व पाद दृष्टि होती है इसे वराह मिहिर के आधार पर बताते हैं।

समस्त ग्रह अपने-अपने स्थान से दशम व तृतीय स्थान को एक चरण ($\frac{1}{4}$) दृष्टि से, नवम व पञ्चम स्थान को दो चरण ($\frac{1}{2}$) दृष्टि से, चौथे व आठवें स्थान को तीन चरण ($\frac{3}{4}$) दृष्टि से और सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं तथा चरण के अनुपात से दृष्टिजन्य फल को देते हैं।

---

१. लघुजातक २ अ० १२ श्लो०। २. लघुजातक २ अ० १३ श्लो०।

Copyrighted material

इस कथित दृष्टि में विशेषता यह है कि शनि तीसरे व दशवें स्थान को, गुरु पंचम व नवम स्थान को, भौम चौथे व आठवें स्थान को और शुक्र, सूर्य, बुध, चन्द्रमा सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

इस श्लोक में च शब्द अकथित ग्रह समूह का द्योतक है। इस च शब्द से भौम-शनि-गुरु ये ग्रह भी सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं यह सिद्ध होता है ॥४२-४३॥

यवनेश्वरोऽपि—

जा[1] (या) मित्रभे दृष्टिफलं समग्रं स्वपादहीनं चतुरस्रयोश्च।
त्रिकोणयोर्दृष्टिफलार्धमाहुर्दुश्चिक्यसंज्ञे दशमे च पादम् ॥४४॥
फलं विशेषं प्रवदाम्यथातो भौमस्य पूर्णं चतुरस्रभे स्यात्।
फलं च जीवस्य यथा त्रिकोणं पूर्णं शनेः स्याद्दशमे तृतीये ॥४५॥
स्वाक्रान्तभात्सप्तमभे समस्तं फलं दृगुत्थं निखिलग्रहाणाम्।

यवनाचार्य जी ने भी ग्रहों की दृष्टि निम्न प्रकार से बतलाई है।

सप्तम स्थान पर ग्रहों की दृष्टि का पूर्ण फल, चतुर्थ व अष्टम पर एक चतुर्थांश कम, नवम व पंचम पर आधा और दशम व तृतीय पर चतुर्थांश दृष्टि फल होता है। इस दृष्टि से ग्रहों की विशेष दृष्टि इस प्रकार होती है। जैसे—गुरु नवम व पंचम स्थान को, भौम चतुर्थ व आठवें स्थान को, शनि दशम व तृतीय स्थान को तथा समस्त ग्रह अपने से सप्तम राशि को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ॥४४-४५॥

सूर्यजातके श्री सूर्योऽपि—

तृतीयदशमे सौ (शौ) रिः जीवस्तद्वत् त्रिकोणगे (के)।
चतुरस्रं धरासूनुः कलत्रे निखिला ग्रहाः ॥४६॥
पूर्णं पश्यन्ति सर्वत्र प्रयच्छन्ति फलं तथा। इति।
[2]दुश्चिक्यदशगान् सौरिः त्रिकोणस्थान् बृहस्पतिः ॥
चतुर्थाष्टमगान् भौमः शेषाः सप्तमसंस्थितान् ॥४७॥
भवन्ति वीक्षणे नित्यमुक्ताधिकफला ग्रहाः ॥इति॥

अत्र भौमशेषाः सप्तमसंस्थितानिति पाठो लेखकदोषजो ज्ञेयः अन्यथा पूर्वोपन्यस्तमुनिवचनैर्विरुद्धता स्यात्। केवलं भ्रमादेव भौमादीनां सप्तमे पूर्णदृष्टिर्न वदन्ति तच्चिन्त्यम्।

सूर्य जातक में भगवान् सूर्य ने भी ग्रहों की दृष्टि इसी प्रकार से वर्णन की है।

गार्गी ने भी शनि, गुरु, भौम को छोड़कर शेष ग्रहों की सप्तम स्थान पर पूर्ण दृष्टि का कथन लेखक के दोष से ही प्रतीत होता है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो पूर्व कथित मुनि वाक्यों से इस गार्गी के कथन में विपरीतता उत्पन्न हो जायेगी। केवल भ्रम से ही भौमादिक (मं० गु० श०) ग्रहों की सप्तम स्थान पर पूर्ण दृष्टि नहीं कही गई है यह जो कहते हैं वह विचारणीय है ॥४६-४७॥

---

१. बृ० जा० २ अ० १३ श्लो० की भट्टोत्पली टीका में ४४वाँ मात्र प्राप्त है।

२. बृ० जा० २ अ० १३ श्लो० को भट्टोत्पली में प्राप्त है।

Copyrighted material

**विशेष**—शनि तीसरे व दशम स्थान को, गुरु पञ्चम व नवम स्थान को और भौम चौथे व आठवें स्थान को पूर्ण दृष्टि से क्यों देखते हैं। इसका उत्तर यह है कि शनि, ग्रह परिषद में सेवक है। सेवक की मुख्य पराक्रम पर ही निगाह होती है तृतीय स्थान से पराक्रम का परिचय प्राप्त होता है तथा दशम, राज्य व कर्म स्थान होता है राजा की रक्षा अपने कर्त्तव्य से करना सेवक का धर्म होता है इसलिये इन दोनों स्थानों पर शनि की दास संज्ञा होने से पूर्ण दृष्टि होती है।

**गुरु**—पञ्चम विद्या व नवम धर्म स्थान कहा गया है। विद्या व धर्म की रक्षा करना गुरु का कर्तव्य होता है इसलिये विद्या (पञ्चम) व धर्म (नवम) पर गुरु की पूर्ण दृष्टि होती है।

**भौम**—इसकी नेता संज्ञा कथित है। नेता मृत्यु व सुख की रक्षा करता है। चौथा स्थान सुख संज्ञक व अष्टम मृत्यु संज्ञक होता है। इसलिये भौम की पूर्ण दृष्टि ४, ८ पर होती है ॥४७॥

स्पष्टार्थ दृष्टि चक्र

| | सू० | चं० | मं० | बु० | गु० | शु० | श० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पूर्ण | ७ | ७ | ४,८,७ | ७ | ५,७,९ | ७ | ३,७,१० |
| त्रिपाद | ४, ८ | ४, ८ | | ४, ८ | ४, ८ | ४, ८ | ४,८ |
| आधी | ५, ९ | ५, ९ | ५, ९ | ५, ९ | | ५, ९ | ५,९ |
| चौथाई | ३,१० | ३,१० | ३,१० | ३,१० | ३,१० | ३,१० | × |

अथ मित्रामित्रविभागः। सत्याचार्यः—

[1]सुहृदस्त्रिकोणभवनाद् ग्रहस्य सुतभे व्ययेऽथ धनभवने।
स्वजने निधने धर्मे स्वोच्चे च भवन्ति न (नो) शेषाः ॥४८॥

अस्यार्थः—ग्रहस्य स्वात्त्रिकोणभवनाच्छुभं ज्ञेयं चरमभवने व्यये द्वादशे, धनभवने द्वितीये, स्वजने चतुर्थभवने, निधनेऽष्टमभवने, धर्मे नवमे, स्वोच्चे भवने च सुहृदस्तद्भवनस्वामिनो मित्राणीत्यर्थः। शेषा अनुक्तराशिस्वामिनः शत्रवः। तत्र द्विराशिस्वामी मित्रं एकराशिस्वामी समः।

सूर्यचन्द्रमसोस्तु एकराशिस्वामित्वेऽपि मित्रत्वमिति वेदितव्यम्।

तद्यथा। सूर्यमूलत्रिकोणं सिंहस्तस्माद् द्वादशस्थानं कर्कस्तत्स्वामी चन्द्रः सच एकराश्यधिपोऽपि स्वमित्रमेव। एवं सिंहात्पञ्चमाष्टमौ धनुर्मीनौ तत्स्वामी गुरुः सोऽपि स्थानद्वयस्याधिपत्याद् रवेर्मित्रमेव। एवं सिंहाद् द्वितीयभवनं कन्या तत्स्वामी बुधः एकराश्यधिपत्वाद् रवेः सम एव। एवमनुक्तस्थानस्वामिनौ शुक्रशनी शत्रू इति। एवं चन्द्रादीनामपि।

अब किस ग्रह का कौन-कौन सा ग्रह मित्र, कौन शत्रु, कौन ग्रह न शत्रु, न मित्र होता है अर्थात् जिसे सम कहा जाता है। इसे सत्याचार्य जी के वचन से प्रथम कहते हैं।

---

१. बृ० जा० २ १५ श्लो० की भट्टोत्पली में प्राप्त है।

Copyrighted material

प्रत्येक ग्रह अपनी मूल त्रिकोण राशि से २, ४, ५, ८, ९, १२ व स्वोच्च राशि व इन उक्त स्थानों के स्वामी ग्रह मित्र होते हैं। अवशिष्ट राशियों के स्वामी ग्रह शत्रु होते हैं। इसमें विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि उक्त दो राशियों के स्वामी ग्रह मित्र, उक्त एक राशि स्वामी ग्रह सम (न मित्र, न शत्रु) होते हैं किन्तु सूर्य व चन्द्रमा में यह नियम लागू नहीं होता क्योंकि ये दोनों एक-एक राशि के स्वामी होते हैं। इसलिये उक्त एक राशि स्वामी होने पर भी मित्र होते हैं। उदाहरण के लिए जैसे सूर्य की मूल त्रिकोण राशि सिंह है। सिंह से बारहवीं राशि कर्क होती है और कर्क का स्वामी चन्द्रमा एक राशि का स्वामी होने पर भी सूर्य का मित्र हुआ। इसी प्रकार सिंह से पञ्चम राशि धनु व अष्टम राशि मीन हुई इन दोनों का स्वामी गुरु है अतः दो राशियों के स्वामी होने से यह भी सूर्य का मित्र हुआ। इसी प्रकार सिंह से द्वितीय राशि कन्या होती है कन्या का स्वामी बुध है। दूसरी मिथुन राशि ११ वीं राशि होने से अनुक्त है। अतः एक राशि स्वामी होने से बुध सूर्य का सम है। इसी प्रकार सूर्य की मूल त्रिकोण राशि सिंह से चौथी वृश्चिक राशि व नवम मेष राशि हुई। तथा सूर्य की मेष राशि उच्च है इसलिये सूर्य का भौम मित्र हुआ। सिंह से ३, ६, ७, १०, ११ राशियाँ अनुक्त राशियाँ हैं। इनमें ३, (तुला) व १० (वृष) का स्वामी शुक्र और ६ (मकर) व ७ (कुम्भ) का स्वामी शनि है। अतः अनुक्त राशियों के स्वामी ग्रह शुक्र व शनि सूर्य के शत्रु ग्रह होते हैं। बुध अनुक्त राशियों में १ राशि का स्वामी होने से उदासीन अर्थात् सम होता है। इससे सूर्य के मित्र ग्रह चन्द्रमा, गुरु, भौम, शत्रु ग्रह शनि व शुक्र और समग्रह बुध सिद्ध होते है।

इसी प्रकार चन्द्रमा की मूल त्रिकोण राशि वृष होती है इससे चतुर्थ राशि सिंह हुई इसका स्वामी सूर्य है सूर्य एक राशि का स्वामी होने पर भी मित्र होता है क्योंकि दूसरी राशि का सूर्य को आधिपत्य प्राप्त नहीं है। वृष से दूसरी राशि मिथुन व पञ्चम राशि कन्या हुई इन दोनों का स्वामी बुध है अतः उक्त दो राशियों के स्वामी होने से बुध चन्द्रमा का मित्र हुआ। वृष से सप्तम राशि वृश्चिक व द्वादश राशि मेष है इन दोनों का स्वामी भौम होता है। इसमें द्वादश राशि तो उक्त है और सप्तम राशि अनुक्त होने से एक राशि के स्वामी वश भौम सम हुआ। वृष से अष्टम धनु व एकादश में मीन राशि है। इनका स्वामी गुरु है। अष्टम उक्त और एकादश अनुक्त राशि है। अतः एक राशि स्वामी होने से चन्द्रमा का गुरु सम हुआ। चन्द्रमा की वृष उच्च राशि है। वृष से छठी राशि तुला होती है। इन दोनों का स्वामी शुक्र है। इनमें वृष तो उच्चत्वेन उक्त है और छटी तुला अनुक्त है अतः एक राशित्वेन चन्द्रमा का शुक्र सम हुआ। वृष से नवम व दशम राशि मकर व कुम्भ हैं। इन दोनों का स्वामी शनि होता है। इसमें नवम तो उक्त राशि है और दशम अनुक्त राशि है। इसलिये उक्त एक राशि स्वामी होने से चन्द्रमा का शनि सम होता है। इसी रीति से अर्थात् ग्रहों की मूल त्रिकोण राशि से कथित स्थानों के आधार पर एक राशि स्वामी वश व दो राशि स्वामी वश निर्णय करना चाहिये ॥४८॥

Copyrighted material

अनयैव रीत्या रव्यादीनां मित्र-सम-शत्रून् सिद्धवत्कृत्याह वराहः—

[1]शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तोक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ॥
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ ।
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥४९॥
सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा ।
सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी ॥
शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयो ।
ये प्रोक्ताः स्वत्रिकोणभादिषु पुनस्तेऽमी मया कीर्तिताः ॥५०॥

अब श्री सत्याचार्य जो के बतलाये हुए मार्ग से सूर्यादिग्रहों के मित्र-सम-शत्रु सिद्ध करके श्री वराह मिहिर के वचन से कहते हैं ।

सूर्य के—शनि, शुक्र शत्रु, बुध सम और शेष ग्रह अर्थात् चन्द्रमा, मंगल व गुरु ये मित्र होते हैं । चन्द्रमा के सूर्य व बुध मित्र और अवशिष्ट भौम, गुरु, शुक्र, शनि सम होते हैं ।

भौम के—गुरु, चन्द्र व सूर्य मित्र, बुध शत्रु और शुक्र व शनि सम होते हैं ।

बुध के—सूर्य-शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु और भौम, बुध, गुरु व शनि सम हैं ।

गुरु के—बुध व शुक्र शत्रु, शनि सम और सूर्य, चन्द्रमा, भौम मित्र होते हैं ।

शुक्र के—बुध व शनि मित्र, भौम तथा गुरु सम और सूर्य व चन्द्रमा शत्रु होते हैं ।

शनि के—शुक्र व बुध मित्र, गुरु सम, सूर्य, चन्द्रमा भौम शत्रु होते हैं ।

पूर्व में सत्याचार्य जी के बतलाये हुए स्वत्रिकोणादि से जिस प्रकार शत्रु मित्रादि का ज्ञान होता है उसी प्रकार से मैंने अर्थात् वराह मिहिर ने वर्णन किया है ॥४९-५०॥

श्रीसूर्योऽपि—

शत्रू मन्दसितौ सौम्यः समो मित्राणि मेऽपरे ।
अहमिन्दुसुतो मित्रं शशिनोऽन्ये समाः खगा ॥५१॥
अहमिन्दुगुरू मित्रे ज्ञोऽरिः शुक्रयमौ समौ ।
भौमस्याथ विदो मित्रः शुक्रोऽहमरिरब्धिभूः ॥५२॥
अतोऽन्येऽपि गुरोः सौम्यसितौ शत्रू यमः समः ।
सुहृदोऽन्ये भृगोः सौम्ययमौ मित्रे समौ स्मृतौ ॥५३॥
गुर्वारावरयोऽन्ये स्युः मित्रे शुक्रबुधौ शनेः ।
गुरुः समो वैरिणोऽन्ये एवं मित्रादिकाः स्मृताः ॥५४॥इति॥

श्री सूर्य भगवान् ने सूर्य जातक में भी इसी प्रकार से ग्रहों के मित्र सम शत्रुओं का वर्णन किया है ॥५१-५४॥

वसिष्ठोऽपि—

[2]रवेः समो ज्ञः सितसूर्यपुत्रावरी परेन्ये सुहृदोंऽबराटाः ।
चन्द्रस्य नारी रविचन्द्रपुत्रौ मित्रे समाः शेषनभश्चराः स्युः ॥५५॥

---

१. बृ० जा० २ अ० १५-१६ श्लो० । २. व० सं० ३२ अ० १९७-२०० श्लो० ।

Copyrighted material

समौ सितार्की शशिजश्च शत्रुर्मित्राणि शेषाः पृथिवीसुतस्य ।
शत्रुः शशी सूर्यसितौ च मित्रे समाः परे स्युः शशिनन्दनस्य ॥५६॥
गुरोर्ज्ञशुक्रौ रिपुसंज्ञकौ तु शनिः समोऽन्ये सुहृदो भवन्ति ।
शुक्रस्य मित्रे बुधसूर्यपुत्रौ समौ कुजार्यावितरावरी तौ ॥५७॥
शनेः समो वाक्पतिरिन्दुसूनुशुक्रौ च मित्रे रिपवः परेऽपि ।
ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननेन शत्रुत्वमित्रत्वसमत्वमुक्तम् ॥५८॥

वसिष्ठ ऋषि ने भी ग्रहों के मित्र सम शत्रुओं का विभाग इसी प्रकार से ही किया है ॥५५-५८॥

[1]कश्यपोऽपि—

रवे· समो ज्ञो मित्राणि चन्द्रारेज्याः परावरी ।
इन्दोर्न [2]शत्रवो मित्रे [3]रविज्ञावितरे समाः ॥५९॥
समौ कुजस्य शुक्रार्की बुधोऽरिः सुहृदः परे ।
ज्ञस्य चन्द्रो रिपुर्मित्रे शुक्रार्कावितरे समाः ॥६०॥
गुरोः कुजेन्द्विनाः मित्राण्यार्किर्मध्यो परावरी ।
भृगोः समावीज्यकुजौ मित्रे ज्ञार्की परे रिपू ॥६१॥
शनेर्गुरुः समो मित्रे ज्ञशुक्रौ शत्रवः परे ।

नारदेनाप्येवमुक्तम् ।

अब कश्यप ऋषि ने भी इसी प्रकार से शत्रु-मित्रादि का वर्णन किया है उसे कहते हैं ।

सूर्य के—चन्द्रमा, भौम व गुरु मित्र, बुध सम और शुक्र शनि शत्रु होते हैं ।

चन्द्रमा के—शत्रु ग्रह नहीं होते हैं । सूर्य व बुध मित्र और भौम, गुरु, शुक्र, शनि सम होते हैं ।

भौम के—शुक्र व शनि सम, बुध शत्रु और सूर्य, चन्द्रमा गुरु मित्र होते हैं ।

बुध के—चन्द्रमा शत्रु, शुक्र व सूर्य मित्र और बुध, गुरु शनि सम होते हैं ।

गुरु के—भौम, चन्द्र, सूर्य मित्र, शनि सम और बुध व शुक्र शत्रु होते हैं ।

शुक्र के—गुरु व भौम सम, बुध शनि मित्र और सूर्य व चन्द्र शत्रु होते हैं ।

शनि के—गुरु सम, बुध शुक्र मित्र तथा सूर्य, चन्द्रमा, भौम शत्रु होते हैं ॥५९–६१॥

इसी प्रकार नारद ऋषि ने भी शत्रु सम मित्रादि का वर्णन किया है ।

केचित्तु, अन्यथा निसर्गमैत्रीमाहुः सा च यवनेश्वरोक्ता ।
यथा—[4]रवेर्गुरुर्मित्र[5]मतोऽन्यथान्ये गुरोस्तु भौमं परिहृत्य सर्वे ।
चान्द्रेरनर्का भृगुनन्दनस्य रवीन्दुवर्ज्यं सुहृदः प्रदिष्टाः ॥६२॥

---

१. मुहूर्त चिन्तामणि विवाह प्रकरण श्लो० सं० २७-२८ की पीयूषधारा टीका में प्राप्त है । २. शत्रू स्तो पु० में है । ३. रविजा यह पुस्तक में पाठ है । ४. वृ० जा० २ अ० १५ श्लो० की भट्टोत्पली में प्राप्त है । ५. समोऽन्यथा पु० में पाठ है ।

Copyrighted material

भौमस्य शुक्रः शशिजश्च[1] मित्रे इन्दोर्बुधं देवगुरुञ्च विद्यात् ।
सौरस्य मित्राण्य[2] कुजेन्दुसूर्याः शेषानरीन् विद्धि श्रुतञ्च तद्वत् ॥६३॥

अत्र वसिष्ठ-कश्यप-नारदादिमुनीनां सत्यादिबहूनामाचार्याणामसम्मतेश्च वराहादीनामनादर एव ।

किसी आचार्य ने यवनेश्वराचार्य के मतानुसार ग्रहों की नैसर्गिक मैत्री के विषय में पूर्वोक्त के विपरीत वर्णन किया है । अब उसे कहते हैं ।

सूर्य का गुरु मित्र और अन्य (चं० भौ० बु० शु० श०) ग्रह शत्रु होते हैं । गुरु के भौम को छोड़ कर सब ग्रह (सू० चं० बु० शु० श०) मित्र होते हैं । भौम शत्रु होता है । बुध के सूर्य को छोड़ कर अर्थात् चन्द्रमा, भौम, गुरु, शुक्र, शनि, मित्र तथा सूर्य शत्रु होता है । शुक्र के सूर्य-चन्द्रमा का त्याग करके अर्थात् भौम, बुध, गुरु, शनि मित्र तथा सूर्य चन्द्रमा शत्रु होते हैं । भौम के शुक्र व बुध मित्र और सूर्य, चन्द्रमा, गुरु, शनि शत्रु होते हैं । चन्द्रमा के बुध और गुरु मित्र तथा सूर्य, भौम, शुक्र, शनि शत्रु होते हैं । शनि के भौम, चन्द्रमा, सूर्य को छोड़कर अर्थात् बुध, गुरु, शुक्र मित्र और सूर्य चन्द्र भौम शत्रु ग्रह होते हैं ॥६२-६३॥

बृहज्जातक में कहा है—'जीवो जीवबुधौ सितेन्दुतनयौ व्यर्का विभौमाः क्रमाद्वीन्द्वर्का विकुजेन्द्विनाश्च सुहृदः केषाञ्चिदेवं मतम्' वृ० जा० २ अ० १५ श्लो० ॥६२-६३॥

यहाँ यवनेश्वराचार्य की नैसर्गिक मैत्री में वसिष्ठ-कश्यप-नारदादि ऋषि की असम्मति के अभाव में वराहमिहिराचार्य जी का भी समादर न होने से यह यवनाचार्य जी का प्रकार समुचित नहीं है क्योंकि ऋषि प्रणीत नैसर्गिक शत्रु मित्रादि के प्रकार से भिन्न है तथा सम्मति वाक्यों का अभाव होने से त्याज्य है ॥

स्पष्टार्थं यवनोक्त नैसर्गिक मैत्री चक्र—

| ग्रह | सू० | चं० | मं० | बु० | गु० | शु० | श० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मित्र | गु० | गु० बु० | बु० शु० | चं० मं० गु० शु० श० | सू० चं० बु० शु० श० | मं० बु० गु० श० | बु० गु० शु० |
| शत्रु | चं० मं० बु० शु० श० | सू० मं० शु० श० | सू० चं० गु० श० | सू० | मं० | सू० चं० मं० | सू० चं० |

स्पष्टार्थं सर्वसम्मत मैत्री चक्र—

| ग्रह | सू० | चं० | मं० | बु० | गु० | शु० | श० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मित्र | चं० मं० गु० | सू० बु० | सू० चं० गु० | सू० शु० | सू० चं० मं० | बु० श० | बु० शु० |

१. शशिजस्य पु० में पाठ है । २. णि कुजे''''पु० में पाठ है ।

Copyrighted material

| सम | बु० | मं० गु० शु० शु० श० श० | मं० गु० श० | श० | मं० गु० | गु० |
|---|---|---|---|---|---|---|
| शत्रु | श० शु० | × | बु० | चं० | बु० शु० | सू० चं० | सू० चं० मं० |

तात्कालिकमैत्रीमाह श्रीभगवान् सूर्यः—

दशायबन्धुसहजस्वान्त्यस्थास्ते परस्परम् ।
सुहृद्भवेदधिसुहृत्समो मित्रं परः समः ॥६४॥
तथा त्रिकोणषष्ठाष्टसप्तैकस्थानखेचराः ।
अन्योन्यं रिपुतां यान्ति तत्कालं वनितासुतः ॥६५॥
परोऽधिशत्रुर्भवति ग्रहः शत्रुर्भवेत्समः ।
मित्रग्रहश्च समतां तत्कालं याति सारथे ॥६६॥

अभी पूर्व में ग्रहों के नैसर्गिक अथवा स्वभाव से मित्र सम शत्रु का वर्णन करने के बाद अब ग्रहों की तात्कालिक मैत्री एवं पंचधा मैत्री को सूर्य भगवान् के वचन से कहते हैं। इसमें ग्रहों के ग्रह शत्रु मित्र हो होते हैं समता रखने वाले ग्रह नहीं होते हैं।

तात्कालिक मैत्री देखने के समय विचारणीय ग्रह से दशम, एकादश, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और बारहवें स्थान में स्थित ग्रह आपस में मित्र होते हैं तथा पंचम, नवम, षष्ठ, अष्टम, सप्तम और प्रथम (उसी में) स्थान में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं।

इन दोनों (नैसर्गिक, तात्कालिक) से ग्रहों की स्थिति पाँच प्रकार से होती है उसे पंचधा मैत्री कहते हैं। यथा—

१—जो ग्रह जिस ग्रह का दोनों (नैसर्गिक व तात्कालिक) प्रकार से मित्र हो वह अधिमित्र अर्थात् अधिकमित्र होता है।

२—जो दोनों प्रकार से शत्रु हो वह अधिशत्रु या अधिकशत्रुता करने वाला होता है।

३—जो एक प्रकार से मित्र और दूसरी रीति से शत्रु हो वह सम अर्थात् न शत्रु न मित्र होता है।

४—जो एक प्रकार से मित्र व दूसरे प्रकार से सम हो वह मित्र होता है।

५—जो एक प्रकार से सम तथा दूसरे प्रकार से शत्रु हो वह शत्रु होता है।

॥ ६४-६६ ॥

यवनेनापि मुख्यतया पूर्वोक्तमैत्री उक्ता। तद्यथा—

[1]मूलत्रिकोणाद्धनकर्मबन्धुपुत्रव्ययस्थानगता ग्रहेन्द्राः ।
तत्कालमेते सुहृदो भवन्ति स्वोच्चे च यो यस्य विकृष्टवीर्यः ॥६७॥

श्रीयवनाचार्य जी ने भी पूर्व कथित तात्कालिक मैत्री का ही मुख्यरूप से वर्णन इस प्रकार किया है कि ग्रह अपनी मूलत्रिकोण राशि से द्वितीय, दशम, चतुर्थ, पंचम, द्वादश

१. बृ० जा० २ अ० १८ श्लोक की भट्टोत्पली में प्राप्त है। २. स्वोच्चाधिपो मुख्यतया च मैत्री यह पुस्तक में है। मूल में उत्पलोद्धृत दिया गया है।

Copyrighted material

स्थान में स्थित हों और जो ग्रह जिस ग्रह की उच्च राशि में स्थित हो तो मित्र होते हैं ॥६७॥

[1]कल्याणवर्मा च—

व्यया १२ म्बु ४ धन २ खा १० येषु ११ तृतीये मित्रमाश्रिताः ।
तत्कालरिपवः षष्ठसप्ताष्टैकत्रिकोणगाः ॥६८॥

हितसमरिपुसंज्ञा ये निसर्गान्निरुक्ता
अधिहितहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्राः ।
रिपुसमसुहृदाख्या सूतिकाले ग्रहेन्द्रा
अधिरिपुरिपुमध्या शत्रवश्चिन्तनीयाः ॥६९॥

अब तात्कालिक मैत्री व पंचधा मैत्री को सारावलीकार श्रीकल्याणवर्मा के कहे हुए मार्ग से कहते हैं ।

अभीष्टकाल (जन्माऽङ्ग) में जो ग्रह जिस राशि में विद्यमान हो उस राशि (स्थान) से (व्यय) १२, (अम्बु) ४, २, १०, ११ और ३ तृतीय स्थान में रहने वाला ग्रह उस ग्रह का तात्कालिक मित्र होता है तथा ६, ७, ८, १, ५, ९ इन स्थानों में विद्यमान ग्रह विचारणीय ग्रह राशि से तात्कालिक शत्रु होता है ।

पञ्चधा मैत्री—

१—जिस ग्रह का जो ग्रह नैसर्गिक मित्र हो तथा तात्कालिक भी मित्र हो तो वह अधिमित्र होता है ।

२—जिस ग्रह का जो ग्रह नैसर्गिक सम हो एवं तात्कालिक मित्र हो तो मित्र होता है ।

३—यदि नैसर्गिक रिपु और तात्कालिक मित्र हो तो सम होता है ।

४—यदि नैसर्गिक शत्रु हो तथा तात्कालिक भी शत्रु हो तो अधिशत्रु होता है ।

५—यदि नैसर्गिक सम व तात्कालिक शत्रु हो तो शत्रु होता है ।

६—यदि नैसर्गिक मित्र हो और तात्कालिक शत्रु हो तो सम होता है ।

इस प्रकार तात्कालिक व नैसर्गिक मैत्री से अधिमित्र, मित्र, सम, अधिशत्रु, शत्रु इस पंचधा ( पाँच प्रकार की ) मैत्री का निर्णय करके ही फलादेश करना चाहिये ।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'तृतीये सुहृदः स्थिता' 'हिततमहितमध्यास्तेऽपि तत्कालमित्रैः' 'शत्रुभिश्चिन्तनीयाः' यह पाठान्तर है । तात्कालिक मैत्री के विचार में यवनाचार्यजी ने अपनी मूलत्रिकोणराशि से २, १०, ४, ५ और १२वीं राशि में ग्रह रहने पर तथा जो ग्रह जिस ग्रह की उच्च राशि में स्थित हो वह उसका मित्र होता है यह मत सर्वसम्मत नहीं प्रतीत होता है क्योंकि ग्रंथान्तर में ऐसा वर्णन नहीं है ।

बृहत्पाराशर में कहा है—'दशबन्ध्वायसहजस्वान्त्यस्थास्ते परस्परम् । तत्काले मित्रतां यान्ति रिपवोऽन्यत्र संस्थिताः' (३ अ० ५६ श्लो०)

---

१. सारावली ४ अ० ३०-३१ श्लो० ।

Copyrighted material

तथा बृहज्जातक में भी—'अन्योन्यस्य धनव्ययायसहजव्यापारबन्धुस्थितास्तकाले सुहृदः (२ अ० १८ श्लो०)।

और भी सर्वार्थचिन्तामणि में—भवन्ति तात्कालिकमित्रभूताः सर्वे च वाक्सोदरबन्धुयुक्ताः (१ अ० ६१ श्लो०)।

एवं शम्भुहोराप्रकाश में भी—'तात्कालिकाः सुहृदो नभोगाः खविक्रमायाम्बुधनव्ययस्थाः। एकर्क्षसप्ताष्टमधर्मपुत्रोपगारिगास्ते रिपवो निरुक्ताः। (२ अ० २३ श्लो०)।

और भी फलदीपिका में—अन्योन्यं त्रिसुखस्वखान्त्यभवगास्तत्कालमित्राण्यमी (२ अ० २३ श्लो०)।

इससे सिद्ध होता है कि यवनाचार्य जी का मत सर्वसम्मत मत नहीं है। इन दोनों (स्वाभाविक, तात्कालिक) प्रकार की मैत्री से पञ्चधा मैत्री का निर्णय होता है। अधिमित्र का तात्पर्य है अत्यन्त मित्रता रखने वाला व अधिशत्रु का अर्थ है अधिक शत्रुता वाला।

उदाहरण के लिए मान लिया किसी का जन्माङ्ग यह है—

जन्माङ्गम्

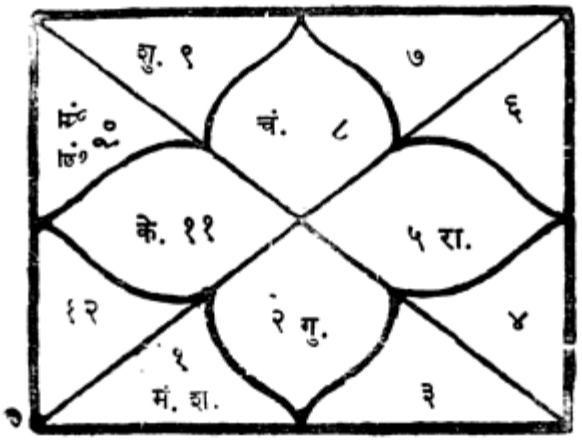


इस जन्माङ्ग में सूर्य मकर राशि में है सूर्य से चतुर्थ स्थान में मङ्गल व शनि हैं तथा ११ वें चन्द्रमा व १२ वें शुक्र है इसलिये सूर्य के मङ्गल, शनि, चन्द्रमा और शुक्र तात्कालिक मित्र हैं। सूर्य के साथ अर्थात् प्रथम राशि में बुध है व पञ्चम राशि में गुरु है अतः ये दोनों (बुध, गुरु) सूर्य के शत्रु हुए। बुध भी मकर में है इसलिये मङ्गल, शनि चन्द्रमा, शुक्र मित्र हैं तथा सूर्य, गुरु बुध के शत्रु हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा से द्वितीय राशि में शुक्र, तृतीय में सूर्य, बुध होने से ये शुक्र, सूर्य बुध, मित्र हैं, एवं षष्ठ में मंगल व शनि तथा सप्तम में गुरु होने से ये मङ्गल, शनि, गुरु चन्द्रमा के शत्रु हैं। इसी रीति से अन्य ग्रहों के शत्रु मित्र समझना चाहिये ॥६८-६९॥

स्पष्टार्थ तात्कालिक मैत्री चक्र

| सू० | चं० | मं० | बु० | गु० | शु० | श० | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मं० श० | शु० सू० | सू० गु० | मं० श० | मं० श० | सू० बु० | सू० गु० | |
| शु० चं० | बु० | बु० | शु० चं० | | चं० | बु० | मित्र |
| गु० बु० | मं० श० | चं० श० | सू० | चं० शु० | मं० श० | मं० चं० | शत्रु |
| | गु० | शु० | गु० | सू० बु० | गु० | शु० | |

Copyrighted material

स्पष्टार्थं पञ्चधा मैत्री चक्र

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सू० | चं० | मं० | बु० | गु० | शु० | श० | |
| मं० | सू० | गु० | शु० | चं० | बु० | बु० | अधिमित्र |
| चं० | बु० | सू० | | मं० | | | |
| × | शु० | × | मं० | श० | × | गु० | मित्र |
| | | | श० | | | | |
| सू० शु० श० | × | बु० | सू० | सू० चं० | श० सू० | शु० सू० | सम |
| | | चं० | | | चं० | | |
| | | | | बु० | | चं० | अधिशत्रु |
| × | × | × | × | | × | | |
| | | | | शु० | | मं० | |
| बु० | मं० गु० | चं० | गु० | | मं० | | शत्रु |
| | श० | श० | | × | गु० | × | |
| | | शु० | | | | | |

यहाँ तात्कालिक मैत्री चक्र में सूर्य के मङ्गल व चन्द्रमा दोनों मित्र हैं एवं नैसर्गिक मैत्री चक्र में भी मित्र हैं इसलिये ये दोनों सूर्य के अधिमित्र हुए। शुक्र शनि तात्कालिक मैत्री चक्र में मित्र ग्रह हैं और नैसर्गिक मैत्री चक्र में सूर्य के ये दोनों शुक्र, शनि शत्रु हैं अतः सम हुए। सूर्य का गुरु तात्कालिक मैत्री में शत्रु है तथा नैसर्गिक मैत्री में मित्र है इस लिये सूर्य का गुरु भी सम है अर्थात् न शत्रु है, न मित्र है, उदासीन हो सम होता है। सूर्य का बुध तात्कालिक मैत्री में शत्रु है तथा नैसर्गिक मैत्री में सम है इसलिए सूर्य का बुध शत्रु हुआ। इसी रीति से अन्य ग्रहों के अधिमित्रादि सिद्ध करके पञ्चधा मैत्री चक्र में दिये गये हैं ॥६८-६९॥

## अथ ग्रहाणां षड्बलानि

तत्र दिक्-स्थान-काल-चेष्टाबलान्याह कल्याणवर्मा[1]—

दिक्स्थानकालचेष्टाकृतं बलं सर्वनिर्णयविधाने।
वक्ष्ये चतुःप्रकारं ग्रहश्च रिक्तो भवेदबलः ॥७०॥
लग्ने जीवबुधौ दिवाकरकुजौ व्योम्नि द्युने भास्करि-
र्बन्धाविन्दुसितौ निशाकृतमिदं स्वोच्चे त्रिकोणे स्वभे
मित्रस्वांशकसंस्थितः शुभफलैर्दृष्टो बलीयान् ग्रहः
स्त्रीक्षेत्रे शशिभार्गवौ नरगृहे शेषा बले स्थानजे ॥७१॥
जीवार्कास्फुजितोऽह्नि विच्च सततं मन्देन्दुभौमा निशि
होरामासदिनाधिपाश्च बलिनः सौम्याः सितेऽन्येऽसिते।
सङ्ग्रामे जयिनो विलोमगतयः संपूर्णगावो ग्रहाः
सूर्येन्दू पुनरुत्तरेण बलिनो सत्योक्तचेष्टाबले ॥७२॥

१. सारावली ४ अ० ३४-३६ श्लो०।

Copyrighted material

अब ग्रहों की पंचधा मैत्री बतलाकर ग्रहों के ६ प्रकार के बलों बतलाया जाता है। षड्बलों में ४ प्रकार के बलों को श्रीकल्याणवर्मा के वचन से उनकी आवश्यकता बतलाते हुए कहते हैं।

जीवन में आने वाले समस्त शुभाशुभ फल ज्ञान के लिये ग्रहों के दिक्, स्थान, काल, चेष्टा इन ४ प्रकार के बलों को मैं कल्याणवर्मा कहता हूँ। इन चारों बलों से हीन ग्रह निर्बल होता है।

दिग्बल या दिशाबल अर्थात् कौन सा ग्रह पूर्वादि काल दिशा में बली होता है। कुण्डली में जन्म लग्न में गुरु और बुध, दशम में सूर्य व भौम, सप्तम में शनि और चतुर्थ भाव में चन्द्रमा व शुक्र बली होते हैं। इसे दिग्बल कहते हैं।

**विशेष**—दिग्बल में लग्न को पूर्व, दशम को दक्षिण, सप्तम को पश्चिम और चतुर्थ को उत्तर दिशा समझना चाहिये क्योंकि वृहत्पाराशर ३।३५ तथा सर्वार्थचिन्तामणि १।६४ में इसी प्रकार का विवेचन प्राप्त होता है।

इस सर्वार्थचिन्तामणि के वाक्य से ज्ञात होता है कि बुध व गुरु सप्तम में, सूर्य, भौम चतुर्थ में, शनि लग्न में और चन्द्रमा व शुक्र दशमभाव में दिग्बल से हीन होते हैं अर्थात् उक्त स्थानों में उक्त ग्रहों का दिशाबल शून्य होता है। इसके मध्य में ग्रह होने पर अनुपात द्वारा दिशा बल का ज्ञान करना चाहिए। यह विशेष बात मालूम होती है।

सिद्धान्त ग्रंथों के आधार पर भी लग्नादि की पूर्वादिसंज्ञा स्पष्ट है। कहा है—यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद् ग्रहाद्यमिह लग्नमुच्यते। प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे।

अब ग्रहों के स्थान बल को बतलाते हैं।

**स्थानबल**—ग्रह किस राशि नवांशादि में और सम विषमादि राशि में स्थित है इस स्थिति से स्थानबल का ज्ञान होता है।

जो ग्रह अपनी उच्चराशि में, या अपनो मूल त्रिकोण राशि में, या अपनी राशि में; वा अपनी नवांश राशि में हो और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो बली होता है। सम राशियों में चन्द्रमा व शुक्र एवं विषम (पुरुष) राशियों में शेष (सूर्य, भौम, बुध, गुरु, शनि) ग्रह बली होते हैं। इसे स्थानबल कहते हैं।

कालबल—समय के आधार पर इसका ज्ञान होता है। जैसे दिन में जन्म होने पर गुरु, सूर्य व शुक्र, दिन या रात्रि सब समय में बुध, रात्रि में शनि, चन्द्रमा, भौम बलवान् होते हैं। जिस होरा में जन्म हो उस होरा का स्वामी अर्थात् होरेश, मास में मासेश, दिन में दिनपति, वर्ष में वर्षेश बली होता है। शुक्लपक्ष में शुभग्रह, कृष्णपक्ष में पाप ग्रह बली होते हैं। इसे कालबल कहते हैं।

वृहत्पाराशर में कहा है—'निशायां बलिनश्चन्द्रकुजसौरा भवन्ति हि। सर्वदा ज्ञो बली ज्ञेयो दिने शेषा द्विजोत्तम। कृष्णे च बलिनः क्रूराः सौम्या वीर्ययुताः सिते' (३ अ० ३६ श्लो०)

Copyrighted material

**चेष्टाबल**—ग्रहों की मार्गी, वक्री, युद्ध, अयन, किरणादि स्थितिवश इसका ज्ञान करना चाहिये।

जो ग्रह युद्ध में विजयी हो, जो वक्रगति हो, जिन ग्रहों की किरणपूर्ण हों वे ग्रह बली होते हैं। रवि और चन्द्रमा उत्तरायण में बली होते हैं। यह सत्याचार्यजी के मत से चेष्टाबल होता है।

**विशेष** – सूर्य और चन्द्रमा कभी भी वक्री नहीं होते हैं। शेष भौमादि ग्रह ही कभी वक्री कभी मार्गी होते हैं। इसीलिये इन्हीं भौमादि ग्रहों में युद्धादि का विचार किया जाता है। इन भौमादि ग्रहों का सूर्य के साथ अस्तमन और चन्द्रमा के साथ समागम होता है।

आचार्य विष्णुचन्द्रजी ने कहा है–'दिवाकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहिता नाम्। कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्' (वृ० जा० भ० टी० २० श्लो०) ॥७०-७२॥

जयलक्षणन्तु ग्रहयुद्धप्रकरणे निरूपितं वराहेण—

'विपुलस्तिग्मो द्युतिमान्' उत्तरदिक्स्थो जयी ज्ञेय, इति।

ग्रहपराजयलक्षणं तत्रैव—

[1]दक्षिणदिक्स्थः पुरुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽगुः।
अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥७३॥ इति।

अत्र विपुलादि लक्षणयुक्तो दक्षिणदिक्स्थो विजयी ज्ञेय इति विलोमगतयो वक्रिणः। संपूर्णगावः संपूर्णरश्मयः।

अब तारा ग्रहों के युद्ध में कौन सा ग्रह विजयी होता है इसको वराहमिहिराचार्य के द्वारा निर्मित वृहत्संहिता ग्रंथ के ग्रहयुद्धाध्यायोक्त वचन से बतलाते हैं।

जो ग्रह पराजित लक्षणों से विपरीत लक्षण युत (उत्तर दिशा में स्थित, स्निग्ध, कम्पन से रहित, दूसरे ग्रह को प्राप्त करने वाला, ऊपर में स्थित और तेजस्वी) हो, तथा दक्षिण में स्थित होने पर भी यदि विपुल, निर्मल कान्तियुक्त बिम्ब वाला ग्रह हो तो विजयी होता है।

बृहत्संहिता में ही ग्रहों के पराजित होने का भी लक्षण निम्न प्रकार से है। जो ग्रह युद्ध में दक्षिण दिशा में स्थित हो, रूक्ष, कम्पायमान, दूसरे ग्रह के पास में न जाकर अर्थात् किसी से संयोग न करके लौटने वाला, सूक्ष्म बिम्ब वाला, अन्य ग्रह से आक्रान्त, विकारयुत, तेजहीन, (किरण रहित) विवर्ण हो वह पराजित होता है।

**विशेष**—विजयी या जेता ग्रह का लक्षण वृहत्संहिता में इस प्रकार है—

उक्तो विपरीतलक्षणसम्पन्नो जयगतो विनिर्देश्यः। विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः (१७ अ० १० श्लो०)।

तथा गर्गाचार्य जी ने भी जयी ग्रह का लक्षण यह बताया है—

द्युतिमान् रश्मिसम्पन्नः प्रसन्नो रजतप्रभः।
बृहद्रूपधरश्चैव यः समेत्य ग्रहो भवेत् ॥
प्रभावर्णाधिको यश्च ग्रहमावृत्य तिष्ठति।
तादृशं जयिनं विद्याद्ग्रहं ग्रहसमागमे ॥
(बृ० सं० १७ अ० १० श्लो० भट्टो० टी०)

---

१. बृहत्संहिता १७ अ० १० श्लो०।

Copyrighted material

यहाँ जेता ग्रह के निर्णय में पुलिशाचार्य जी ने यह विशेष बताया है कि समस्त ग्रह उत्तर में विजयी होते हैं किन्तु शुक्र दक्षिण दिशा में भी विजयी होता है।

यथा 'सर्वे जयिन उद्क्स्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः' (बृ० सं० १७ अ० १० श्लो० भट्टो० टी०)।

आचार्य पराशर ने दश लक्षणों से पराजित ग्रह का वर्णन किया है वह इस प्रकार से है—

'विवर्णः परुषः सूक्ष्मो, याम्याशामार्गस्थोऽधिरूढो, निष्प्रभो, विकृताऽभिहतोऽप्राप्य निवृत्तो, वेपनश्च' इति।

श्रीगर्गाचार्य जी ने सत्रह प्रकार से पराजित का लक्षण बताया है। यथा—

अरश्मिर्लोहितः श्यामः परुषः सूक्ष्म एव च।
अपसव्यगतो यश्च चक्रान्तःपतितस्तथा॥
च्युतः स्थानाद्धतो यश्च प्रतिस्तब्धस्तथैव च।
निष्प्रभो विकृतश्चापि जवेनाभिहतश्च यः॥
अप्राप्य वा निवृत्तो यो वेपनः कृष्ण एव च।
लक्षणैः सप्तदशभिर्ग्रहं विन्द्यात्पराजितम्॥

एवं सूर्य सिद्धान्त में भी जित-पराजित का लक्षण बताया है। यथा—

अपसव्ये जितो युद्धे पिहितोऽणुरदीप्तिमान्।
रूक्षो विवर्णो विध्वस्तो विजितो दक्षिणाश्रितः।
उदक्स्थो दीप्तिमान् स्थूलो जयी याम्येऽपि यो बली॥ (७ अ० २०-२१ श्लो०)॥

तथा शुक्र के विषय में—'उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशो बली' (७ अ० २३ श्लो०)॥७३॥

नोट—यद्यपि जिताजित तो युद्ध में होता है। ग्रहों में जिताजितलक्षण बतलाने का तात्पर्य है कि ताराग्रहों में, भिन्न-भिन्न कक्षा में रहने पर भी (१ भेद, २ उल्लेख, ३ अंशुमर्दन, ४ अपसव्य नामक) चार प्रकार से युद्ध का वर्णन मिलता है।

भेद—अधः स्थित बिम्ब से ऊर्ध्वस्थित बिम्ब आच्छादित होने से।

उल्लेख—एक बिम्ब की परिधि से दूसरे बिम्ब की परिधि स्पर्श करने से।

अंशुमर्दन—आसन्नस्थित दोनों ग्रहों के परस्पर किरण का संयोग होने से।

अपसव्य—ठीक दक्षिणोत्तर में स्थित होने से।

यहाँ विपुलादि लक्षण से युक्त ग्रह दक्षिणदिशा में बली होता है। विलोम गति का अर्थ है वक्री। सम्पूर्णगावः का अर्थ है समस्त रश्मियाँ॥७३॥

[1]उत्तरमयनं प्राप्ताः शशिशुक्रकुजार्कसुरमन्त्रिणो बलिनः।
याम्ये रविशशिपुत्रौ द्वयेऽपि शशिजः स्ववर्गस्थः॥७४॥

अब कौन सा ग्रह किस अयन में बलवान् होता है यह कहते हैं। इसे अयन बल कहते हैं।

१. सारावली ४ अ० ३७ श्लो०।



Copyrighted material

अयन बल—उत्तर अयन में चन्द्र, शुक्र, भौम, सूर्य, गुरु बली होते हैं।

दक्षिण अयन में चन्द्रमा व शनि और अपने वर्ग में स्थित होने पर बुध उत्तर व दक्षिण दोनों अयनों में बली होता है ॥७४॥

[1]पुंस्त्रीनपुंसकाख्याः क्षेत्रेष्वाद्यन्तमध्यमं प्राप्ताः।
सूर्यान्निर्गत्य सदा नवोदिता यवनराजमतम् ॥७५॥
प्राग्रात्रिभागेऽतिबली शशाङ्कः शुक्रो निशार्द्धेऽवनिजो निशान्ते।
प्रातर्बुधो मध्यदिने च सूर्यः सर्वत्र जीवोऽर्कसुतो दिनान्ते ॥७६॥
कृष्णारबुधगुरुसिताः शशिसूर्यावुत्तरोत्तरं बलिनः।
स्वाभाविकबलमेतद्बलसाम्ये चिन्तयेन्मतिमान् ॥७७॥

अब कल्याण वर्मा के अनुसार ग्रहों के द्रेष्काण, दिन रात्रि विभाग और नैसर्गिक बल को कहते हैं।

द्रेष्काण बल—पुरुष ग्रह (सूर्य, भौम, गुरु) किसी भी राशि के प्रथम द्रेष्काण में स्त्रीग्रह (शु० चं०) तृतीय द्रेष्काण में और नपुंसक ग्रह (शनि बुध) दूसरे द्रेष्काण में बली होते हैं। सूर्य के सान्निध्य से निकलकर ही ग्रह बली होते हैं ऐसा यवनराज का मत है। इसे द्रेष्काण बल कहते हैं।

दिनरात्रि त्रिभाग बल—रात्रि के प्रथम त्रिभाग में चन्द्र, मध्य रात्रि (निशार्ध) में शुक्र, अन्तिम त्रिभाग में भौम बली होता है।

एवं दिन के प्रथम त्रिभाग में बुध, द्वितीय त्रिभाग में सूर्य और अन्तिम त्रिभाग में शनि, तथा समस्त दिन में सूर्योदय से सूर्यास्त तक गुरु बली होते हैं।

नैसर्गिक बल—शनि, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, चन्द्र, सूर्य ये क्रम से उत्तरोत्तर बली होते हैं। अर्थात् शनि से भौम, भौम से बुध, बुध से गुरु इत्यादि। इसे स्वाभाविक बल कहते हैं। यदि अन्य बलों में समता हो तो जिसका स्वाभाविक बल अधिक हो वह बलवान् होता है ॥७५-७७॥

[2]उच्चराशौ विलोमे (च) बलं नान्यैरिहेष्यते।
कालस्यातिबहुत्वात्स्यात्तस्मात् क्रूरेऽतिवक्रिते ॥७८॥

अब उच्चराशि में वक्री होने पर बल का अभाव अन्य आचार्यों को अभीष्ट नहीं होता इसको कल्याणवर्मा के वचन से कहते हैं।

यदि उच्चराशि में स्थित ग्रह वक्री हो तो अन्य आचार्यों का कहना है कि यह निर्मल होता है। एवं उच्चराशि में अतिवक्र हो तो काल की अधिकता से बल का अभाव होता है।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'बलं' के स्थान पर 'फलं' यह पाठान्तर होने से फल का अभाव होता है। तथा 'बहुत्वात्स्यात्' के स्थान पर 'बहुत्वाच्च' एवं 'क्रूरेऽति-वक्रिते' के स्थान पर 'उच्चेऽतिवक्रिते' यह पाठान्तर मिलता है ॥७८॥

---

१. सारावली ४३८-४० श्लो०। २. सारावली ५ अ० १४ श्लो०।

Copyrighted material

[1]स्वोच्चे स्थिताः श्रेष्ठ (फ)लाः भवन्ति मूलत्रिकोणे स्वगृहे च मध्याः ।
इष्टेक्षिता मित्रगृहाश्रिता वा वीर्यं कनीयः समुपो (पा) द्वहन्ति ॥७९॥

अब उच्चादि बल में श्रेष्ठ, मध्य, अल्पबल को कल्याणवर्मा के वचन से कहते हैं। ग्रह अपनी उच्चराशि में श्रेष्ठ बली या उत्तम फल को देता है। तथा मूल त्रिकोण राशि व अपनी राशि में मध्यबलवान् या मध्य फलद और मित्र ग्रह से दृष्ट या मित्र ग्रह की राशि में अल्पबली या अल्प फल देने वाला होता है ॥७९॥

[2]शुक्लः प्रतिपद्दशके मध्यबलः कीर्तितो यवनवृद्धैः ।
श्रेष्ठो द्वितीयदशके स्वल्पबलश्चन्द्रमा तृतीये च ॥८०॥

अब यवनाचार्य जी द्वारा कथित चन्द्रबल में श्रेष्ठादि बल का कथन कल्याण वर्मा के वचन से कहते हैं।

यवनाचार्य जी का कहना है कि चन्द्रमा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से दशमी तक उत्तम बली, शुक्ल एकादशी से कृष्ण पञ्चमी पर्यन्त मध्यबली और कृष्ण पक्ष की षष्ठी से अमावास्या तक अल्पबली होता है ॥८०॥

[3]आहृतकलासमूहः प्रसन्ननिजमण्डलश्च परिपूर्णः ।
अप्रतिहतमिह कुरुते भूपतिबलमुड् गणाधिपतिः ॥८१॥

अब परिपूर्ण चन्द्रमा होने पर जातक राजा होता है, इसको कल्याण वर्मा के वचन से कहते हैं।

यदि जन्म के समय चन्द्रमा समस्त किरणों से युत प्रसन्न मण्डलपूर्ण हो तो जातक को किसी से पराजित न होने वाला राजा बना देता है ॥८१॥

[4]राशेस्तदीश्वरस्य च बलेन परिकल्प्यमृक्षभेदफलम् ।
युगपत्फलोपलब्धौ निवृत्तिरेकस्य कर्तव्या ॥८२॥

राशि व राशीश के बल से राशि भेद फल (बल भेद) का ज्ञान करके यदि दोनों (राशि, राशीश) का एक सा फल (बल) हो तो एक को ग्रहण करना चाहिये ॥८२॥

[5]होराग्रहबलसाम्ये निसर्गतश्चिन्तनीयमाचार्यैः ।
लग्नाधिपेन तुल्यं बलमिह चूडामणिर्वदति ॥८३॥

उच्चमूलत्रिकोणस्वगृहविभागस्तु प्रागुक्त एव ।

अब फल भेद का निर्णय कल्याणवर्मा के कथित वाक्य से कहते हैं।

यदि राशि व ग्रह के बल में समता हो तो नैसर्गिक बल के आधार पर बली का निर्णय होता है अर्थात् जिसका नैसर्गिक बल अधिक हो उसे बलवान् समझना चाहिए। ऐसा पक्ष बहुत आचार्यों का है किन्तु चूड़ामणि आचार्य का कहना है कि राशि व ग्रह बल समता में राशीश ही बली होता है ॥८३॥

उच्च मूल त्रिकोणादि विभाग तो पूर्व में कह दिया है।

---

१. सा० व० ५ अ० १५ श्लो०। २. सा० व० ५ अ० १६ श्लो०। ३. सा० व० ५ अ० १७ श्लो०। ४. सा० व० ५ अ० १९ श्लो०। ५. सा० व० ५ अ० २० श्लो०।

Copyrighted material

अथ दीप्तादिफलञ्चाह गुणाकरः[1]—

दीप्तः स्वोच्चगतः स्ववेश्मनि भवेत्स्वस्थस्तथा हर्षितो
मित्रर्क्षे शुभवर्गगो गगनगः शान्तः प्रदिष्टो बुधैः।
शक्तो रश्मिवितानभृच्च विकलः सूर्यांशलुप्तद्युतिः
दीनो नीचगतः खलोऽशुभयुतः खेटोर्दितः पीडितः ॥८४॥

अब ग्रहों की दीप्तादि अवस्था व उन अवस्थाओं के फल को गुणाकर के कहे हुए वाक्य से बतलाते हैं।

ग्रह अपनी उच्चराशि में दीप्त, अपनी राशि में स्वस्थ, मित्र की राशि में हर्षित, शुभग्रह के वर्ग में शान्त, अपनी किरणों से युक्त अर्थात् अनस्तङ्गत शक्त, सूर्य की किरणों से अस्त विकल, नीच राशि में दीन, पापग्रह के युक्त खल और युद्ध से पराजित ग्रह पीड़ित अवस्था को प्राप्त होता है ॥८४॥

दीप्ते प्रतापविजिताखिलशत्रुपक्षो
लक्ष्मीयुतः समदकुञ्जरराजकेलिः।
स्वस्थे गृहाश्च मणिधान्यकुटुम्बयुक्तः
सेनापतिर्भवति हन्त्यखलारिपक्षान् ॥८५॥

अब इन अवस्थाओं के फल को कहते हैं।

यदि दीप्त अवस्थागत ग्रह हो तो जातक अपने प्रताप (पराक्रम) से समस्त शत्रुओं को मारनेवाला, धन से युक्त और मतवाले हाथियों से राजा के समान क्रीडा करनेवाला होता है।

यदि स्वस्थ अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—मणि, धान्य व परिवार से युक्त सेनापति और समस्त शत्रुओं को मारने वाला होता है ॥८५॥

कनकयुवतियुक्तो हर्षितो निर्जितारिः,
ससुखधनविलासो धर्मधीयुक् प्रशान्ते
वसनकुसुमकान्ता केलिनिष्ठश्च (स्त्व)शक्ते
व्रजति गतधनत्वं दैन्ययुक्तस्तु दीने ॥८६॥

यदि हर्षित (मुदित) अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—सुवर्ण वस्त्रों से युक्त और शत्रुओं को जीतने वाला होता है।

यदि प्रशान्त अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—सुखी, धनी, विलासी, धर्मात्मा और बुद्धिमान् होता है।

यदि शक्त अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—वस्त्र, पुष्प और स्त्री के लिए प्रेम करने वाला होता है।

यदि दीन अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—निर्धनी और दीनता से युक्त होता है ॥८६॥

स्थानच्युतः क्षतधनो विकलेऽरिभीतिः,
स्यात्पीडिते गदयुतो बहुदुःखशोकः।
दुःखान्वितो गतधनो वनितावियुक्तो
देशान्तरं व्रजति वीतसुहृत् खलाख्ये ॥८७॥

---

१. २ अ० ३५-३८ श्लो०।

Copyrighted material

यदि विकल अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—अपने स्थान से परिभ्रष्ट, निर्धन और शत्रु से भय करने वाला होता है।

यदि पीड़ित अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—रोगी, अनेक प्रकार से दुःखी और विविध शोकों से युक्त होता है।

यदि खल अवस्थागत ग्रह हो तो जातक—दुःखी, निर्धन, स्त्री से त्यक्त होकर देशान्तर में घूमने वाला होता है ॥८७॥

बलवतां (शुभपाप) ग्रहाणां संक्षेपेण फ (ब) लमाह कल्याणवर्मा—

[1]आचारसत्यशुभशौचयुताः सुरूपा-
स्तेजस्विनः स्मृतिविदो[2] द्विजदेवभक्ताः।
[3]सद्वस्त्रमाल्यजलभूषणसंप्रियाश्च
सौम्यग्रहैर्बलयुतैः पुरुषा भवन्ति ॥८८॥

अब कल्याण वर्मा के कहे हुए वाक्य से संक्षेप में ग्रहों के बल के आधार पर फल को कहते हैं। बलवान् शुभग्रहों का फल—

यदि जन्मकाल में समस्त शुभग्रह बलवान् हों तो जातक—अच्छे आचरण वाला, सत्यवादी, शुभ, पवित्रता से युत, सुन्दर स्वरूपवान्, तेजस्वी, स्मरण करने वाला वा धर्मात्मा (कार्यकुशल) ब्राह्मण और देवता का भक्त, (माला) अच्छे वस्त्र, इत्र जल और अलङ्कारों में प्रीति रखने वाला होता है ॥८८॥

लुब्धाः कुकर्मनिरता निजकार्यनिष्ठाः
पापान्विताः[4] सकलहाश्च तमोऽभिभूताः।
क्रूराः शठा वधरता मलिनाः कृतघ्नाः
पापग्रहैर्बलयुतैः पिशुनाः कुरूपाः ॥८९॥

अब बलवान् पापग्रहों के फल को कहते हैं—

यदि जन्म के समय समस्त पापग्रह बलवान् हों तो जातक—लोभी, दुष्कर्म में प्रीति करने वाला, स्वार्थ परायण (सज्जन द्वेषी), कलही (कलहमति), तामसी, क्रूर, शठ, हिंसक, मलिन वा तेजहीन, कृतघ्न, चुगलखोर और कुरूप होता है ॥८९॥

[5]पुंराशिषु ग्रहेन्द्रैर्वीराः[6] सङ्ग्रामकाङ्क्षिणो बलिनः।
[7]निःस्नेहाः सुकठोराः क्रूरा मूर्खाश्च जायन्ते ॥९०॥

अब विषम राशि गत ग्रह फल को कहते हैं—

यदि जन्म के समय में पुरुष अर्थात् विषम राशिस्थ बलवान् ग्रह हों तो जातक—वीर और लड़ाई की इच्छा करने वाला होता है। यदि विषम राशिगत निर्बल ग्रह हों तो जातक कठोर, क्रूर और मूर्ख होता है ॥९०॥

युवतिभवनस्थितेषु च मृदवः संप्राप्तभीरवः पुरुषा।
जलकुसुमवस्त्रनिरताः सौम्याः सकलाश्च वस्त्रसंहृष्टाः ॥९१॥

इति ग्रहयोनिप्रकरणम् ॥

---

१. प्रकाशित सरावली उपर्युक्त अ० ५ श्लो० ४५.४६ व ५१.५२ में निम्नांकित पाठान्तर मिलते हैं—२. कृतिविदो, ३. लग्नवस्त्र, ४. साधुद्विषः, ५. पुंराशिगैः शुभखगैः ६. धीराः, ७. निश्चेष्टौ।

Copyrighted material

अब सम राशिस्थ ग्रह फल को बतलाते हैं ।

यदि जन्म के समय में स्त्री (सम) राशिस्थ ग्रह हों तो जातक—सरलस्वभावी, डरपोक, जल, पुष्प, वस्त्र में प्रीति करने वाला, सौम्य, कलाओं से युक्त और वस्त्रों से प्रसन्न होने वाला होता है ॥९१॥

इस प्रकार ग्रहयोनि प्रकरण समाप्त हुआ ।

## अथाधानप्रकरणम्

अथ वृद्धयवनः—

आधान[1]पृच्छोद्भवसाम्यमुक्तं फलं यतस्तस्य परीक्षणार्थम् ।
योगान् विचित्रान् [2]प्रवदाम्यतोऽहं चिह्नैर्यथा जन्तु विनिश्चयं स्यात् ॥१॥
लग्नं [3]यदा पश्यति सूर्यसूनुः नीचाश्रितः सौम्यदृशा विहीनः ।
तदाऽन्यजातं प्रवदन्ति मर्त्यं सूर्यस्य वीर्येण दिवाप्रसङ्गात् ॥२॥
भौमो [4]यदा वैश्यसमुद्भवेन सक्षीणचन्द्रो नृपसंभवेन ।
अस्तङ्गतो ज्ञो द्विजवीर्ययोगात्सवैरथो म्लेच्छसमुद्भवेन ॥३॥

अब गर्भाधान नामक प्रकरण को वृद्धयवनाचार्य जी के वाक्यों से कहते हैं—गर्भाधान एक संस्कार को भी कहते हैं । स्त्रियों को प्रथम मासिक धर्म होने पर वस्त्र कालादि से उनके शुभाशुभ का विचार किया जाता है । ऋतु काल में ही पुरुष के संयोगवश वंश वृद्धि होती है । वंशवृद्धि का बड़ा महत्त्व शास्त्रों में वर्णित है । रजो दर्शन से चार दिन तक निषेक नहीं होना कहा है 'नाद्याश्चतस्रो तु निषेकयोग्याः' पाँचवें दिन से सोलहवें दिन तक ही स्त्री पुरुष संयोगवश सन्तान का प्रादुर्भाव होता है अर्थात् इन्हीं दिनों में गर्भ की स्थिति होती है । इसका ज्ञान ज्योतिष शास्त्र में प्रश्न के आधार पर गर्भ का शुभाशुभ, स्त्री पुरुष की स्थिति, मैथुन प्रकार, गर्भपतनादि समय का ज्ञान जिस प्रकरण में किया जाता है उसे गर्भाधान या निषेक कहते हैं ।

वृद्धयवनाचार्य जी का कथन है कि आधान काल (गर्भाधान समय) और प्रश्न काल के फलों में समता होती है इसलिये इस समता की परीक्षा हेतु जिन योगों के चिह्नों से जन्तु का निश्चय होता है ऐसे विचित्र योगों को मैं कहता हूँ ।

यदि शुभग्रह की दृष्टि से रहित प्रश्न या जन्म लग्न को नीच राशि में बैठा हुआ शनि देखता हो तो जातक को दूसरे से अर्थात् पर पुरुष से उत्पन्न, तथा सूर्य के बली होने पर दिन के संयोग में जातक उत्पन्न हुआ है ऐसा जानना चाहिये ।

यदि नीचाश्रित भौम से प्रश्न लग्न दृष्ट हो तो वह परपुरुष वैश्य (बनिया), क्षीण चन्द्र से दृष्ट होने पर राजपुरुष या राजकीय पुरुष, एवं सप्तम में स्थित बुध से लग्न दृष्ट हो तो ब्राह्मण और समस्त ग्रहों से दृष्ट हो तो म्लेच्छ जाति का समझना चाहिये ॥१-३॥

---

१. पृष्टो पु० में । २. प्रवदे स्मतो पु० । ३. लग्न पु० । ४. यथा पुस्तक में है ।

Copyrighted material

एषां मृतिर्भीः जननादिनीचैः द्वाभ्यां बहूनि विकृतिर्नरैश्च ।
चतुष्पदे मूर्तिषु कल्पयित्वा आप्येक्षिते स्वस्तकरे नृसंज्ञे ॥४॥
कीटे विलोमं प्रवदन्ति भावं वाच्यं विलग्नाधिपतेः स्वभावात् ।
कलत्रतः सङ्गविधिः प्रदिष्टो विकारवैकृत्यसमो ग्रहाच्च ॥५॥

अब पूर्वोक्त अन्यजात योग के आधार पर जातक का शुभाशुभ फल तथा गर्भाधान के समय स्त्री पुरुष की मनोभाव स्थिति को कहते हैं ।

प्रश्न या जन्म के समय में पूर्वोक्त अधिक ग्रह नीच राशि में स्थित हों तो जातक को मरण भय, दो ग्रह नीच में होकर लग्न को देखते हों तो शरीर में विकार होता है ।

यदि लग्नेश चतुष्पद में हो तो चतुष्पद (चार पैर वाले) के समान, यदि जलचर राशिस्थ ग्रह से लग्नेश दृष्ट हो तो जलचर जीव की तरह, यदि लग्नेश अपनी किरणों से युक्त पुरुष ग्रह हो तो पुरुष की भाँति और कीट संज्ञक राशि में हो तो विपरीत भावना के साथ गर्भाधान के समय मन की भावना होती है ।

सप्तम भावस्थ राशि व ग्रह के आधार पर ही सुरति कुरति का ज्ञान करना चाहिए ॥४-५॥

यदा रविर्नेक्ष्यति जन्मलग्नं सदान्धकारे सुरतप्रयोगः ।
तस्मिन्नुदक्स्थे स्वनवांशभागे दिवा प्रसङ्गः सविता च रात्रौ ॥६॥
सर्वैरदृष्टे प्रवदेदरण्ये जलस्य मध्ये जललग्नसंस्थे ।
कलत्रगः शीतमयूखमाली यदा रविर्मूर्तिगतस्तदा स्यात् ॥७॥
सन्ध्याप्रसङ्गो व्ययगेऽथ भौमे ऊर्ध्वं प्रशस्तं रविनन्दनेन ।
सीत्कारमिश्रं सुरपूजितेन शश्वत्क्षतक्रान्तमुरुप्रचण्डम् ॥८॥
शुक्रेण लीनं शशिना विदग्धं स्यात् सोमजेनैव नितान्तदीर्घम् ।

अब किस समय व किस भावना के साथ स्त्री पुरुष का संयोग हुआ है इसको बताते हैं ।

यदि जन्म लग्न सूर्य से अदृष्ट हो तो रात्रि के समय अन्धकार में गर्भाधान होने से जातक का जन्म हुआ है, ऐसा जानना चाहिए । यदि जन्माऽङ्ग में सूर्य उत्तर दिशा में अपने नवांश में स्थित हो तो दिन में गर्भाधान समझना चाहिए ।

यदि लग्न समस्त ग्रहों से अदृष्ट हो तो वन में, जलचर राशिलग्न में जल के मध्य में यदि सप्तम में चन्द्रमा और लग्न में सूर्य व बारहवें भौम हो तो सन्ध्या के समय में, शनि से दृष्ट लग्न हो तो ऊपरी भाग में सुरत का प्रयोग हुआ है ।

अब संभोग के समय स्त्री पुरुष की चेष्टा को बतलाते हैं ।

यदि लग्न गुरु से दृष्ट हो तो सीत्कार युक्त, निरन्तर प्रचण्डता से युत संभोग, शुक्र से तल्लीनता युक्त, चन्द्रमा से विदग्धता (कुशलता) युत और बुध से दृष्ट होने पर अधिक समय तक संभोग की स्थिति का ज्ञान होता है ॥६-८½॥

आद्यस्य मासस्य भृगुर्विधाता तस्मिन् भवेच्छोणितशुक्रसङ्गः ॥९॥

Copyrighted material

[1]तद्रूपचेष्टाबलहानिदीप्त्या गर्भस्य वाच्यं स्वफलं जनन्याः ।
द्वितीयमासाधिपतिः कुजश्च तस्मिन् घनं तस्य भवेत् समन्तात् ॥१०॥
जीवस्तृतीयस्य [2]कराङ्घ्रिवक्त्रग्रीवादिकं तत्र भवेत्समग्रम् ।
सूर्यश्चतुर्थस्य पतिः प्रदिष्टः अस्थीनि तत्र प्रभवन्ति पुंसाम् ॥११॥
मज्जा च मेदश्च सुमांसरक्तं व्यक्तिं समायाति विभागतश्च ।
तस्मिन् स सौरिःकिल पञ्चमस्य तस्मिन् समन्तात् [3]कृतिमाकृणोति ॥१२॥
प्राप्नोति पुष्टिं विविधाञ्च गर्भः व्यक्तिं समागच्छति कायजातम् ।
षष्ठस्य चन्द्रो विभुतामुपैति रोमाणि तत्र प्रभवन्ति गात्रे ॥१३॥
नखाश्च जिह्वागुदरन्ध्रभावे गुप्तं स्वरं ब्रह्मभवे हि तत्र ।
स्याच्चन्द्रसूनुः किल सप्तमस्य तस्मिन् स्मृतिः स्यात् सततं नराणाम् ॥१४॥
पञ्चेन्द्रियत्वञ्च[4] विवेकिता च कोऽहं कुतोऽत्राश्रयमभ्युपेतः[5] ।
लग्नाधिनाथस्त्वथवाष्टमस्य मासस्य तस्मिन् प्रचुरा बुभुक्षा ॥१५॥
भवेन्मनुष्यस्य ततः सुतृप्तिः भुङ्क्ते जनित्र्या रसभावसङ्गात् ।
नक्षत्रनाथो नवमस्य नाथस्तस्मिन् विरक्तिर्विविधा नराणाम् ॥१६॥
गर्भाश्रयाद् दुःखमनन्तमेकं कृतं स्मृतिः पूर्वशुभाशुभस्य ।
दिवाकरस्तत्परतोऽधिनाथस्तस्मिन् प्रदिष्टः प्रसवो नराणाम् ॥१७॥
तस्मिन् यदि स्याद् व्ययगः शशाङ्कः स्यादष्टमो भूतनयः प्रपातः ।
यो यस्य मासस्य भवेद्धि नाथः संयोगमेनं तु यदा प्रयाति ॥१८॥
अर्वाक् विधत्ते [6]स तदास्य जन्म वीर्येण हीनो यदि वात्मजेन ।

अब गर्भ के १० मासों के स्वामियों को, प्रति मास में गर्भ के स्वरूप को और गर्भवती की प्रति मास में क्या-क्या इच्छा होती है इसको बतलाते हैं ।

प्रथम मास में गर्भाधान के अनन्तर रजवीर्य का संगम होता है । तथा इस मास का स्वामी शुक्र होता है । गर्भाधान के समय शुक्र की स्थिति वश प्रथम मास के शुभाशुभ फल का ज्ञान एवं जननी के रूप, इच्छा, बल, गर्भपतन, कान्ति का ज्ञान तत्तत् मासों के अधिपति से करना चाहिये । द्वितीय मास का अधिपति भौम होता है । भौम की सत्ता से गर्भ के द्वितीय मास का शुभाशुभ फल समझना चाहिये । द्वितीय मास में गर्भ का स्वरूप घन अर्थात् पिण्डात्मक होता है ।

तीसरे मास का स्वामी गुरु होता है । गर्भाधान के समय गुरु की स्थिति वश तृतीय मास का शुभाशुभ फल जानना चाहिये । इस मास में मर्भस्थ जीव के हाथ, पैर, मुख, ग्रीवादि अवयव उत्पन्न होते हैं ।

चौथे महीने का स्वामी सूर्य होता है । इस चौथे मास में अस्थि, (हड्डी) मज्जा, मेदा, मांस, रक्त का विभाग स्पष्ट होता है ।

---

१. तद्रूपविष्ठा पु० में है । २. कराङ्घ्रिवक्र पु० में पा० है । ३. मावृणोति पु० में है । ४. पञ्चेन्द्रियस्तं पु० पाठ है । ५. त्राऽश्रममम्युपेतः पु० पाठ है । ६. य सदास्य ऐसा पाठ पु० में है ।

Copyrighted material

पाँचवें मास का स्वामी शनि होता है। इसमें आकृति (बनावट) होती है। तथा अनेक प्रकार से गर्भ की पुष्टता होकर शरीर का रूप बन जाता है।

छठे मास का स्वामी चन्द्रमा होता है। इस मास में शरीर में रोम, नख बनते हैं तथा जिह्वा गुदादि छिद्रों में ब्रह्माण्ड में गुप्तस्वर होता है।

सातवें मास का स्वामी बुध होता है। इसमें पाँचों इंद्रियाँ स्पष्ट होकर विवेकता आने से निरन्तर स्मरण शक्ति इस प्रकार होती है कि मैं कौन हूँ और कहाँ से मैंने इस गर्भ में आश्रय किया है।

आठवें मास का स्वामी लग्नेश होता है। इसमें गर्भस्थ जीव को अधिक भूख लगती है और माता के खाये हुए पदार्थों के रस से भूख की तृप्ति करता है।

नवम मास का स्वामी चन्द्रमा होता है। इसमें अनेक प्रकार की विरक्ति और गर्भाश्रय से अनेक दुःख प्राप्त करके अपने पूर्वजन्मार्जित कर्मों का स्मरण जीव को होता है।

दसवें मास का स्वामी सूर्य होता है। इसमें गर्भ से जीव बाहर आता है।

यदि सूर्य से व्यय स्थान में चन्द्रमा और अष्टम में भौम हो तो गर्भपात होता है अर्थात् दशम मास से पूर्व ही गर्भ बाहर आता है। जो जिस मास का स्वामी होता है वह यदि आत्मीय बल से निर्बल हो और उससे १२वें चन्द्रमा व अष्टम भौम हो तो उस मास से पूर्व ही गर्भ बाहर आता है ॥८½-१८½॥

योगो यदाधानगतः[1] सुतारिद्वितीयदुश्चिक्यगतैः समस्तैः ॥१९॥
भवेत् प्रसूतिर्दशमे[2] परेण तदा नराणां [3]न च योषितानाम्।
सूर्येण तासां प्रवदन्ति शेषं योगं नृणां बाध्यमनेकरूपम् ॥२०॥

अब आधानकालीन ग्रह स्थिति के आधार पर अन्य योगों को कहते हैं।

यदि आधान लग्न से ५, ६, २, ३ भावों में समस्त ग्रह हों तो दशम मास के अनन्तर पुरुष का जन्म होता है। न कि कन्या का जन्म। सूर्य से उन प्रसूतियों के बाधक अनेक प्रकार के शेष योगों को कहते हैं ॥१८½-२०॥

क्लीबोदये क्लीबयुते[4] नवांशे क्लीबस्य जन्म प्रभवेन्नराणाम्।
एवं पुमांसः[5] प्रभवन्ति नार्यो स्त्रीभावयोगाद्-बहुधा विशेषः ॥२१॥

अब लग्न के आधार पर पुरुष, स्त्री, नपुंसक जन्म को कहते हैं।

यदि नपुंसक ग्रह की राशि लग्न में हो और नपुंसक ग्रह राशि का नवांश भी हो तो नपुंसक का जन्म, यदि पुरुष ग्रह की राशि लग्न में हो व पुरुष ग्रह राशि नवांश हो तो पुरुष का जन्म यदि स्त्री ग्रह राशि लग्न में हो स्त्री ग्रह राशि का नवांश हो तो स्त्री का जन्म होता है। इन स्त्री पुरुषादि ज्ञान में इस विशेषता का ध्यान रखना चाहिये॥२१

नवांशनाथश्च[6] यदा विलग्नं पश्येत् सुहृत्केन्द्रगतः सुदीप्तः।
तदात्मवर्गेण करोति जन्म प्रधानभूतं मनसा नराणाम् ॥२२॥

---

१. सुतारो पु० में पा०। २. दशमो पु० में पा०। ३. वन पु० पाठा०। ४. क्लीभवो पु० पा०। ५. पुमांसं पु० पा०। ६. नाथस्य पु० पा०।

Copyrighted material

दुश्चिक्यजामित्रगताः प्रचण्डाः सौम्या यदा कोशत्रिकोणसंस्थाः।
पुंजन्मदास्तत्र भवन्ति [1]दृष्टाश्चन्द्रेण जीवेन शशाङ्कजेन ॥२३॥

अब पुत्र जन्मप्रद योगों को कहते हैं।

यदि आधान लग्न वा प्रश्न लग्न वा जन्म लग्न स्वमित्र की राशि में केन्द्रस्थ बली नवांशेश से दृष्ट हो तो नवांशेश के स्वभावानुसार पुरुष का जन्म होता है।

यदि आधान के समय तृतीय व सप्तम में पापग्रह और द्वितीय, पंचम व नवम में शुभ ग्रह चन्द्रमा, गुरु और बुध से दृष्ट हों तो पुरुष (पुत्र) का जन्म होता है ॥२२-२३॥

मन्दारयोः सप्तमराशिसंस्थयो[2]र्यदा निषेको मरणं तदा पितुः।
रवेः शशाङ्कात् त्वथ तज्जनन्या [3]एकान्तरोधः पुरुषस्य[4] वाच्यः[5] ॥२४॥

अब आधान समय के आधार पर आधान कर्त्ताओं (पिता-माता) के अशुभ योग को बताते हैं।

यदि आधान के समय सूर्य से सप्तम भाव में अर्थात् गर्भाधान के समय सूर्य जिस राशि में हो उससे सप्तम राशि में भौम शनि हों तो आधान कर्त्ता का अर्थात् जातक के पिता का मरण होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा से सप्तम राशि में भौम शनि होने पर माता का निधन होता है ॥२४॥

यदा हिमांशुर्व्ययगो दिवाकरश्छिद्रं गतो भूतनयश्चतुर्थे।
मृत्युस्तदा संभवति ह्युभाभ्यां शस्त्रेण सौरेण तु बन्धनेन ॥२५॥

अब पिता-माता के एक साथ मृत्यु योग कारक ग्रह स्थिति को बताते हैं।

यदि आधान के समय में व्यय भाव में चन्द्र, अष्टम में सूर्य, चतुर्थ में मङ्गल हो तो दोनों (माता-पिता) की एक साथ शस्त्र से मृत्यु की सम्भावना होती है।

यदि गर्भाधान के समय चन्द्रमा व्यय में, सूर्य अष्टम में और शनि चतुर्थ में हो तो जातक के पिता-माता की मृत्यु बन्धन अर्थात् कारागार से होती है ॥२५॥

मृत्युङ्करः शीतकरश्च[6] रिष्फे सुखस्थितः सूर्यसुतः सभौमः।
न गर्भसंभूतिरिह प्रदिष्टा योगैः ससौम्यैः प्रवदन्ति कृच्छ्रात् ॥२६॥
मूर्तिस्थितस्तोक्षणकरः कुजो वा [7]सक्षीणमूर्तिर्विधुरिष्फगो[8] वा।
वृथाफलः स्यात्सुरतोपचारो नीचाश्रितैस्त्र्यादिभिरेव पुंसाम् ॥२७॥

अब गर्भाधान काल में गर्भ स्थिति की असम्भवता और निष्फल सुरतोपचार जन्य ग्रह स्थिति को बताते हैं।

यदि गर्भाधान के समय में द्वादश भाव में या राशि में चन्द्रमा और चतुर्थ भाव में शनि व भौम हों तो गर्भस्थिति रहने की सम्भावना नहीं होती है अर्थात् गर्भ का विनाश होता है। उक्त योग में यदि शुभ ग्रहों का योग व दृष्टि हो तो कष्ट से गर्भ की सम्भावना होती है।

---

१. दृष्ट्वा पु० पा०। २. संस्था० पु० पा०। ३. एकं निरोधाः पु० पा०। ४. पुरुषः पु० पा०। ५. प्रवाच्य पु० पा०। ६. स्व० पु० पा०। ७. संक्षीण पु० पा०। ८. रिष्फगे पु० पा०।

Copyrighted material

यदि गर्भाधान के समय लग्न में सूर्य वा भौम अथवा द्वादश में क्षीण चन्द्रमा हो तो सुरतोपचार वृथा अर्थात् निष्फल होता है अथवा आधान के समय तीन-चार ग्रह नीच राशि में हों तो गर्भ की सम्भावना नहीं होती है ॥२६-२७॥

क्लीबस्य लग्ने बुधसौरयुक्ते सुतस्थिते वा त्वथ रिष्फगे वा।
क्लीबस्य जन्म प्रवदन्ति पुंसां शुभेक्षिते तत्र यथा स्वरूपम् ॥२८॥

अब नपुंसक योग को बताते हैं।

यदि आधान के समय नपुंसक ग्रह राशि लग्न (३, ६, १०, ११) में बुध व शनि हों वा पञ्चम में वा द्वादश भाव में हों तो जातक नपुंसक होता है। इस योग में जिस शुभ-ग्रह की दृष्टि हो उसके समान स्वरूप जातक का होता है ॥ २८॥

यदा कुजः सप्तमराशिमाश्रितः शनैश्चरो वा रविणा समाहितः।
न मूर्तिगो देवगुरुः सितो वा तदा न गर्भं प्रवदन्ति योषिताम् ॥२९॥

अब पुनः गर्भ स्थिति अभाव के योग को कहते हैं।

यदि गर्भाधान के समय सप्तम राशि में भौम वा सूर्य के साथ शनि हो और लग्न में गुरु व शुक्र का अभाव हो तो गर्भ नहीं रहता है ॥२९॥

[1]नभस्थलस्थो यदि वा सुरार्चितस्त्रिकोणगो देवगुरुः सशीतगुः।
गर्भस्तदा संभवति प्रजानां[2] नवांशको वा हिमरश्मिजस्य ॥३०॥

अब गर्भ की सम्भावना के योग को कहते हैं।

यदि गर्भाधान काल में दशम वा सप्तम भाव में शुक्र और चन्द्रमा के साथ गुरु नवम वा पञ्चम में हो तो गर्भ की सम्भावना होती है वा बुध का नवांश हो तो भी गर्भ की सम्भावना होती है ॥३०॥

तृतीयजामित्रगतौ सितार्कौ [3]शनैश्चरो लाभगतो यदा स्यात्।
पुमांस्तदा गर्भगतः प्रवाच्यो जीवोऽथवा स्वोच्चगतस्त्रिकोणे ॥३१॥
पुंवर्गगे सूर्यसुते महीजे दिवाकरे लग्नमुपाश्रिते[4] वा।
गर्भे पुमान् [5]शीतकरेऽथवाम्बरे स्वतुङ्गगे शुक्रदृशा समन्विते ॥३२॥

अब प्रश्न लग्न वा आधान लग्न के आधार पर गर्भ में पुत्र है या कन्या इसके उत्तर में पुत्र जन्मप्रद योग को बतलाते हैं।

यदि आधान या प्रश्न के समय लग्न से तृतीय व सप्तम में शुक्र और सूर्य हों तथा लाभ (ग्यारहवें) भाव में शनैश्चर हो अथवा पञ्चम वा नवम में उच्च राशिस्थ गुरु हो तो गर्भ से पुत्र का जन्म होता है।

यदि गर्भाधान या प्रश्न के समय पुरुष राशियों के वर्ग में शनि, भौम, सूर्य हों वा लग्नस्थ हों अथवा दशम में उच्चस्थ चन्द्रमा शुक्र से दृष्ट हो तो गर्भ में पुरुष (पुत्र) होता है। पाठान्तर से पुरुष राशि में वा वर्ग में सूर्य, भौम, शनि हों और लग्न में चन्द्र हो अथवा दशम में मीन राशि में शुक्र हो तो पुत्र जन्म होता है ॥३१-३२॥

---

१. अस्तालयस्थो यदि वा समर्चितः पु० पा०। २. नवांबरस्थे पु० पा०। ३. शनिश्चरो पु० पा०। ४. मुयाश्रिटेन पु० पा०। ५. शीतकरोऽथवाम्बरे स्वतुंगगः शुक्रन् राशि मन्वितः पु० पा०।

Copyrighted material

कुम्भे विलग्ने मिथुनेऽथ कन्ये नपुंसके [1]तत्सुतवर्गगे वा।
नपुंसकाख्यं प्रवदन्ति गर्भं तदा नराणां च नवांशके वा ॥३३॥
सौम्यान्विते तत्र यथा स्वरूपं नरं स्त्रियं वा तनयैर्विहीनम्।
पापान्विते चार्धमुशन्ति नार्या अर्धं नरस्यैव भवेद्धि गर्भे ॥३४॥

अब गर्भ में नपुंसक का जन्म होगा यह बतलाते हैं।

यदि गर्भाधान या प्रश्न के समय में कुम्भ, मिथुन, कन्या लग्न में शनि बुध हों वा पञ्चम में इन राशियों में नपुंसक ग्रह का वर्ग हो तो गर्भ में नपुंसक का जन्म कहना तथा उक्त लग्न राशि में पुरुष ग्रह राशि का नवांश शुभ ग्रह या बुध से युत हो तो उस ग्रह के स्वरूप तुल्य गर्भस्थ का स्वरूप होता है। यदि पापग्रह से युक्त उक्त योग हो तो सन्तान से रहित गर्भ होता है अथवा गर्भ में अर्धभाग स्त्री का व आधा पुरुष का होता है ॥३३-३४॥

स्त्रीलग्नगे रात्रिकरे खशुक्रे समस्थिते सूर्यसुते सजीवे।
स्त्रीगर्भमुक्तं धरणीसुतेन स्ववर्गसंस्थे [2]शशिना च दृष्टे ॥३५॥
यदा हिमांशुः सुरपूजितोऽथवा शुक्रेण दृष्टः समराशिसंस्थितः।
तदाबला गर्भगता[3] नृणां च शनैश्चरे वा रविभागमाश्रिते ॥३६॥

अब गर्भ में कन्या है इसको कहते हैं।

यदि गर्भाधान या प्रश्न के समय में स्त्रीसंज्ञक राशि लग्न में, चन्द्रमा व शुक्र दशम में स्थित हो व गुरु के साथ शनि समराशि में स्ववर्गस्थ भौम व चन्द्रमा से दृष्ट हो तो गर्भ से कन्या (स्त्री) उत्पन्न होती है।

यदि समराशिस्थ चन्द्रमा वा गुरु शुक्र से दृष्ट हो तो गर्भ में कन्या वा शनि सूर्य के नवांश में हो तो पुत्र समझना चाहिये ॥३५-३६॥

द्विदेहलग्ने हिमरश्मियुक्ते बुधे स्वसंस्थे रविजे च लाभे।
युग्मं वदेल्लग्नगतं[4] बुधेन दृष्टं स्त्रियत्वं प्रवदेद्द्वुभाभ्याम् ॥३७॥
शनैश्चरे मूर्तिगते शशाङ्के षष्ठे बुधे सप्तमगे च शुक्रे।
सूर्येऽष्टमे सौम्यविवर्जिते च त्रयः पुमांसः प्रवदन्ति गर्भे ॥३८॥
एवं कुजे संप्रवदन्ति[5]नार्यो नपुंसकाख्यानि दिवाकरे[6] च।

इति वृद्धयवने आधानाध्यायस्तृतीयः।

अब गर्भ में एक से अधिक सन्तति हैं इसको कहते हैं।

यदि गर्भाधान के समय में द्विस्वभाव राशि लग्न में चन्द्रमा, अपनी राशि (३, ६) में बुध और लाभ भाव में शनि हो तो गर्भ से यमल (दो) सन्तान का जन्म होता है।

यदि द्विस्वभाव लग्नस्थ चन्द्रमा बुध से दृष्ट हो तो दो कन्याओं का जन्म समझना। चाहिये।

---

१. तत्सुतर्क्षणे वा पु० पा०। २. ज्ञसिता पु० पा०। ३. गते पु० पा० ४. लग्नते बुधेन दृष्टे स्वयं राशिवर्दिदुभाभ्यामिति पु० पा०। ५. भार्यो पु० पा०। ६. दिवाकरण पु० पा०।

Copyrighted material

यदि आधान वा प्रश्न के समय में शनि चन्द्र लग्न में, बुध षष्ठ में, शुक्र सप्तम में और सूर्य अष्टम में शुभग्रह से रहित हो तो गर्भ से तीन पुत्र सन्तान उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार पूर्वोक्त योग में लग्न में भौम हो तो तीन कन्या और लग्न में सूर्य व अष्टम में शनि हो तो तीन नपुंसकों का जन्म होता है ॥३७-३८॥

(अथ) सूति कालः

लग्नं यदा पश्यति देवमन्त्री सितोऽथवा रात्रिकरः प्रपूर्णः।
स्वोच्चाश्रितः केन्द्रगतः स्ववर्गे सुशुद्धवीर्यस्य भवेत्प्रसूतिः ॥१॥

अब वृद्धयवनोक्त सूति काल के योगों का वर्णन करते हैं। प्रथम शुद्ध वीर्य से (अपने पिता से) उत्पन्न के योग को बतलाते हैं।

यदि जन्म के समय में गुरु से दृष्ट लग्न हो अथवा परिपूर्ण अपने वर्ग में स्वोच्चाश्रित केन्द्रस्थ चन्द्रमा से लग्न दृष्ट हो तो जातक का जन्म शुद्धवीर्य से अर्थात् अपने पिता से गर्भाधान होने पर हुआ है, ऐसा समझना चाहिये ॥१॥

लग्नाश्रिते शीतकरे बुधे वा नीचाश्रिते वा गुरुणा तु दृष्टे।
लग्नेऽथवा सूर्यसुतेन दृष्टा अन्येन जातं प्रवदन्ति मानवम् ॥२॥
शनैश्चरे लग्नगते च नीचगे पापांशके पापयुते च दृष्टे।
पापस्य लग्ने गुरुणा विमुक्ते पापात्प्रसूतिं प्रवदन्ति चन्द्रे ॥३॥

अब जातक अपने पिता से उत्पन्न है या अन्य से गर्भाधान होने पर पैदा हुआ है ऐसे योगों को कहते हैं।

यदि जन्म के समय लग्न में चन्द्रमा व बुध हों वा चन्द्र बुध नीच राशि में हों और गुरु से दृष्ट हों तो जातक अन्य से अर्थात् अपने पिता से अतिरिक्त व्यक्ति के गर्भाधान से पैदा हुआ है। अथवा बुध चन्द्रमा लग्न में हों और शनि से दृष्ट हों तो भी जातक परजात होता है।

यदि जन्म के समय में नीच राशिगत शनि लग्न में पापग्रहों के नवांश में पापग्रह से दृष्ट वा युत हो तो भी जातक परजात होता है। अथवा पापग्रह राशि में चन्द्रमा गुरु से अदृष्ट हो तो भी जातक अन्य जात होता है ॥२-३॥

स्वनीचसंस्थे रविणा समन्विते लग्ने चरे सूर्यसुतेन वक्रे।
व्ययस्थिते वा[1] धनगे च चन्द्रे पितुः परोक्षस्य भवेत् प्रसूतिः ॥४॥

अब पिता को अनुपस्थिति में जातक के जन्म योग को कहते हैं।

यदि जन्म के समय में भौम अपनी नीच चर राशि में लग्नस्थ होकर सूर्य से या शनि से या दोनों से युक्त हो व बारहवें वा द्वितीय चन्द्रमा हो तो जातक का जन्म पिता के परोक्ष में होता है ॥४॥

द्वारं [2]वदेत्केन्द्रमुपागताच्च तत्र ग्रहाभावत एव लग्नात्।
दीपोऽर्कतः लग्नवशेन वर्तिः स्नेहं शशाङ्कात्प्रवदेद्यथावत् ॥५॥

---

१. चेद्धनगे च पु० पा०। २. वदेत्केन्द्रमुपागतस्य ग्रहस्य योऽभावतदेव लग्नात्, इति पु० में पा०।

Copyrighted material

विलग्नभावोद्गममूर्तिकाः स्युर्नाथाद् वदेद् वर्णविशेषमेषाम्[1]।
[2]शय्या विभागाद्गृहमुच्चनीचात्तेषां वराङ्गानि तथा परेषाम् ॥६॥

अब सूतिका के द्वार को अर्थात् जन्म के समय सूतिका के घर के दरवाजे का मुख किस दिशा में था एवं दीपक, वर्ति, (बत्ती) तेल, वर्ण शय्या की स्थिति इत्यादि को कहते हैं।

द्वार (दरवाजे) का ज्ञान—जन्म के समय केन्द्र (१, ४, ७, १०) में जो ग्रह बलवान् हो उस ग्रह की दिशा में सूतिका के घर का दरवाजा होता है।

अथवा लग्न में बली ग्रह हो तो पूर्व, चतुर्थ में बली ग्रह हो तो उत्तर, सप्तमस्थ बली ग्रह से पश्चिम और दशमस्थ बली ग्रह से दक्षिण दिशा समझना चाहिये।

यदि केन्द्र में ग्रहों का अभाव हो तो लग्न राशि जिस दिशा में हो उस दिशा में प्रसूति के घर का दरवाजा होता है।

दीप ज्ञान—सूर्य की सत्तावश दीपक जानना चाहिये। सारांश यह है कि यदि सूर्य चर राशि में हो तो जन्म के समय दीपक चलायमान रहता है। स्थिर राशि में होने से दीपक स्थिर और द्विस्वभाव राशिस्थ सूर्य हो तो दीपक कभी चल, कभी अचल अर्थात् द्विस्वभाव राशि के पूर्वार्ध में हो तो स्थिर, उत्तरार्ध में दीपक चंचल रहता है ऐसा जानना चाहिये। एवं जिस दिशा की सूर्य राशि हो उस दिशा में दीपक की स्थिति होती है।

आशय यह है कि लग्नादि द्वादश भाव के अनुसार सूर्य जिस दिशा में हो उस दिशा में जन्म के समय दीपक होता है। द्वादश भाव का भोग्यांश (उत्तरार्ध) प्रथम भाव तथा द्वितीय भाव का पूर्वार्ध ये मिलकर पूर्व दिशा होती है यदि इसमें सूर्य हो तो सूतिका के घर में पूर्व दिशा में दीपक की स्थिति समझनी चाहिये। द्वितीय भाव का उत्तरार्ध और तृतीय का पूर्वार्ध ये दोनों मिलकर १ भाव हुआ यदि इसमें सूर्य हो तो दीपक की दिशा ईशान कोण होती है इसी प्रकार उत्तर में दो भाव, वायव्य में १ भाव, पश्चिम में दो भाव, नैऋत्य में १ भाव, दक्षिण में २ भाव और अग्निकोण में १ भाव का न्यास करने से द्वादश भाववश सूर्य की दिशा का ज्ञान करना चाहिये। सारांश २, २ भाव पूर्वादि दिशाओं में और १, १ कोणों में कल्पना करके दीपक की दिशा का ज्ञान करना चाहिये।

वर्ति (बत्ती) ज्ञान—यदि प्रारम्भिक अंशों में लग्न जन्म के समय में हो तो दीपक में बत्ती पूर्ण, अन्तिम अंशों में लग्न हो तो बत्ती का अभाव या अल्प, मध्य में अनुपात से जानना चाहिये।

तेल का ज्ञान—यदि जन्म के समय चन्द्रमा प्रारम्भिक अंशों में हो तो तेल पूर्ण, अन्तिम अंशों में तेल का अभाव, मध्य में अनुपात से ज्ञान करना चाहिए।

अब जातक के स्वरूप व वर्ण को कहते हैं।

जन्म के समय लग्न में जो ग्रह होता है उसके समान यदि अधिक ग्रह हों तो बलवान् ग्रह के समान जातक का स्वरूप और लग्नेश के वर्ण के समान वर्ण होता है। ऐसा समझना चाहिये।

---

१. मासामिति पु० पा०। २. सव्यात्रिभागो गृहमुच्चनीचा इति पु० पा०।

Copyrighted material

सूतिका की शय्या का ज्ञान घर की तरह अर्थात् पूर्वादि दिशा में दो-दो राशि एवं कोणों में एक-एक राशि न्यास करने से शय्या की स्थिति का ज्ञान करना चाहिये।

शय्या में १२ भावों का न्यास इस प्रकार करना चाहिये—लग्न व द्वितीय भाव को शिर की ओर, तृतीय भाव को शिर के दक्षिण पावा पर, चतुर्थ व पञ्चम भाव को दक्षिण पाटी पर, षष्ठ भाव को दाहिने पैर के पावे पर, सप्तम व अष्टम भाव को पैर की पाटी पर, नवम भाव को बायीं ओर पैर के पावे पर, दशम व एकादश को बायीं पाटी पर और बारहवें भाव को शिर के बायीं ओर पावा पर न्यास करके सूतिका की शय्या के शुभाशुभ का विचार तत्तद्भावों में स्थित उच्च नीचादि शुभाशुभादि वश उस स्थान को समझकर शय्या के उस अङ्ग का फलादेश करना चाहिये ॥५–६॥

यदा शनिः पञ्चमधर्मगोऽथवा भौमोऽथ बन्धुव्ययगः कथञ्चन।
तदाऽङ्गभङ्गं प्रवदेत् समग्रं [1]कृष्टं बलोनं प्रवदन्ति किञ्चित् ॥७॥

अब जातक के अङ्ग भङ्ग अर्थात् शरीर को क्षति पहुँचाने वाले योग को कहते हैं।

यदि जन्म के समय में बली शनि पञ्चम भाव में अथवा नवम भाव में हो और बलवान् भौम चतुर्थ या व्यय में हो तो जातक का समग्र शरीर भङ्ग होता है। यदि भौम शनि निर्बल हों तो कुछ शरीर कष्ट होता है ॥७॥

हिमांशुमाली स्वनवांशकस्थितः स्वोच्चेऽथ केन्द्रे सुरनाथपूजितः।
तुल्यं तदा धातुविवृद्धगात्रं शुक्रेण बध्नाति समन्वितञ्च ॥८॥

यदि जन्म के समय चन्द्रमा अपने नवांश में हो तथा गुरु केन्द्र में वा उच्च में हो तो समान रूप से शरीर के धातुओं की वृद्धि एवं जातक वीर्य से युक्त होता है ॥८॥

भौमेऽष्टमे सूर्यसुते विलग्ने नभस्थलस्थे हिमरश्मिजे च।
वने प्रसूतिं प्रवदन्ति योषितां सूर्येण मार्गे मनुजैर्विवर्जिते ॥९॥

अब जातक का जन्म वन में, मनुष्य रहित मार्ग में हुआ है इसको बतलाते हैं।

यदि जन्म के समय में भौम अष्टम में, शनि लग्न में और बुध दशम में हो तो जातक का जन्म वन में हुआ है तथा उक्त योग में दशम में सूर्य हो तो मनुष्य रहित मार्ग में हुआ है ऐसा समझना चाहिये ॥९॥

शनैश्चरे मूर्तिगते हिमांशुजे [2]व्ययस्थिते नीचगते प्रभाकरे।
विलोमजन्म प्रवदन्ति भूमिजे सभार्गवे नालविवेष्टितस्य ॥१०॥

अब नालवेष्टित विलोम जन्म योग को कहते हैं।

यदि जन्म के समय लग्न में शनि, व्यय (१२) में बुध, सूर्य नीच राशि में और भौम व शुक्र एक राशि में हो तो जातक का जन्म नाल में बँधा हुआ विलोम (पैर से) होता है ॥१०॥

चन्द्रेऽम्बरस्थे शशिजे च कामे बृहस्पतौ मूर्तिगते स्तनान्तरे।
गर्भस्य तल्लांच्छनमुक्तमाद्यैर्विपर्यये पृष्ठविभागतश्च ॥११॥

---

१. दृष्टं बलेशं प्रवदन्ति किञ्चित्। इ० पु० पा०। २. विपस्थिते इ० पु० पा०।

Copyrighted material

जीवे विलग्ने भृगुजे व्ययस्थे शशाङ्कजे लाभमुपाश्रिते च ।
वामाङ्गसंस्थस्तिलकः प्रवाच्यः षड्वर्गशुद्धौ त्वथ दक्षिणस्थः ॥१२॥

अब जातक के शरीर में कहाँ पर लहसन वा तिल है इसको कहते हैं ।

यदि जन्म के समय में चन्द्रमा दशम में, बुध सप्तम में और गुरु लग्न में हो तो जातक के स्तनान्तर अर्थात् छाती पर लहसन का चिह्न होता है ।

यदि ये उक्त ग्रह उक्त विपरीत भावों में स्थित हों तो पीठ पर लहसन का चिह्न समझना चाहिये ।

यदि जन्म के समय में गुरु लग्न में, शुक्र बारहवें में और बुध लाभ भाव में हो तो जातक के वाम भाग में तिल का चिह्न होता है । यदि ये उक्त ग्रह षड्वर्ग से शुद्ध हों अर्थात् शुभ हों तो दक्षिण भाग में चिह्न समझना चाहिये ॥११-१२॥

व्यये शशी लाभगतः खरांशुस्त्रिकोणगः सूर्यसुतः सपापः ।
हीनाङ्गतां तत्र वदन्ति भूमिजे गात्राधिकत्वं प्रवदन्ति भागतः ॥१३॥

यदि जन्म के समय में चन्द्रमा बारहवें हो व सूर्य ग्यारहवें हो और त्रिकोण में पाप-ग्रह के साथ शनि हो तो जातक का कोई अङ्ग हीन होता है ।

यदि १२वें भौम व ११वें सूर्य और सपाप शनि त्रिकोण में हो तो जातक का कोई अंग अधिक होता है ॥१३॥

शनैश्चरे वीर्ययुते तु तेजसं सूर्येण ताम्रोद्भवमेव भूषणम् ।
चन्द्रेण माणिक्यभवं हिरण्यजं सौम्येन शुक्रेण च रीतिसम्भवम् ॥१४॥
जीवेन नानाविधमिष्टकामदं भौमेन विन्द्याद्बहुवस्त्रसम्भवम् ।

अब बली ग्रह के आधार पर भूषण की प्रधानता को बतलाते हैं ।

यदि जन्म के समय में शनि पूर्ण बली हो तो जातक तेजस वा चमकीले, सूर्य से ताँबे के समान, चन्द्रमा से माणिक्य के समान, बुध से सुवर्ण से युत, शुक्र से पीतल के, गुरु से नाना प्रकार के अभीष्टद और भौम से अनेक प्रकार के वस्त्रों से उत्पन्न पदार्थों के भूषणों का प्रेमी होता है ॥१४॥

गृहं शशाङ्केन सुदारुसंभवं मनोज्ञरूपं विविधान्वितञ्च ।
सुसूत्रमुक्तं मणिकुट्टिमान्वितं षड्वर्गशुद्धेन च तुङ्गगेन ॥१५॥

अब जातक का जन्म कैसे घर में हुआ है इसको बतलाते हैं ।

यदि जन्म के समय में सबसे बली चन्द्रमा उच्च राशि में षड्वर्ग से शुद्ध या शुभ होकर स्थित हो तो जातक का जन्म सुन्दर देवदारु की लकड़ी से रचित, मन को आनन्द देने वाले, अनेक सुख साधनों से सम्पन्न, सुन्दर रीति से बने हुए और मणियों (शुभ्रचमकदार) की फर्श से युक्त घर में होता है ।।१५॥

भौमेन दग्धं स्वनवांशकस्थे परांशकस्थे शिथिलस्वभावम् ।
कुवस्तुयुक्तं बहुपापदृष्टे सौम्येक्षिते वा धनधान्ययुक्तम् ॥१६॥

यदि मङ्गल बली होकर अपने नवांश में स्थित हो तो जले हुए, दूसरे ग्रह के नवांश में हो तो आलस्ययुक्त, भौम अधिक पापी ग्रहों से दृष्ट हो तो दूषित वस्तु से युक्त और शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो जातक का जन्म धनधान्य से परिपूर्ण घर में होता है ।।१६।।

Copyrighted material

सूर्येण चित्रं बहुगैरिकाद्यैः प्रभासमेतं बहुभूमिकञ्च ।
एकत्र रम्यं त्वपरत्र शीर्णं पापेक्षिते वा तपनस्वभावः ॥१७॥

यदि सूर्य जन्माङ्ग में सबसे बली हो तो जातक का जन्म अनेक प्रकार के गेरू आदि रङ्गों से चित्रित, चमकदार, अधिक बड़े, एक स्थान में अधिक सुन्दर और जगह से टूटे हुए, सूर्य पाप ग्रह से दृष्ट हो तो तापयुक्त घर में होता है ॥१७॥

बुधेन रम्यं बहुवंशयुक्तं पटावृतं भूरिवनाढ्यमेव ।
शुचिप्रगल्भैः पुरुषैः समेतं विचित्ररूपं प्रभया समेतम् ॥१८॥

यदि जन्म के समय में बुध सबसे बली हो तो जातक का जन्म अधिक परिवारों से युक्त मनोहर, वस्त्रों से ढके हुए, अधिक वनों से युक्त, पवित्र प्रौढ़ मनुष्यों से सम्पन्न, विचित्र स्वरूप और चमकदार घर में होता है ॥१८॥

जीवेन नानाविधरत्नयुक्तं सुभूरिशीलं बहुमण्डलाढ्यम् ।
वितानमूला ध्वजसवंदिक्षु प्रमण्डितं धातुरसैर्विशालम् ॥१९॥

यदि गुरु जन्म के समय में सबसे बली हो तो जातक का अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण, सुन्दर, अधिक शीलयुक्त, अधिक भागों में विभक्त, समस्त दिशा ध्वजाओं से व्याप्त, धातु व रसों से परिपूर्ण और विशाल घर में जन्म होता है ॥१९॥

स्वभावरम्यं सुविदग्धलोकं मनोरमं स्फाटिककाञ्चनाढ्यम् ।
तुङ्गं विशालं सुविभक्तमार्गं विचित्रकाष्ठप्रभवं नितान्तम् ॥२०॥

यदि जन्म के समय शुक्र सबसे बली हो तो जातक का जन्म स्वभाव (प्रकृति) से ही सुन्दर, चतुरजनों से युक्त, मनमोहक, स्फटिक व सुवर्ण से युक्त, ऊंचे, विशाल, सुन्दर मार्गों में विभाजित ओर अत्यन्त विचित्र काष्ठों से युक्त घर में होता है ॥२०॥

शीर्णं कुचेलैः मनुजैः समेतं रक्तान्वितं स्त्रीरहितं सदैव ।
भवेद्गृहं कण्टकसङ्घयुक्तं रौद्रं करालं विकृतं प्रतीपम् ॥२१॥

यदि शनि सबसे बलवान् होकर कुण्डली में स्थित हो तो जातक का पुराने टूटे हुए, बुरे वस्त्रों एवं मनुष्यों से युक्त, लाल पदार्थों से युक्त, स्त्री से हीन, कांटे के जालों से युक्त, भयङ्कर, विकराल, विकार से सम्पन्न और विपरीत घर में जन्म होता है ॥२१॥

शनैश्चरे केन्द्रगते स्वनीचगे सुतस्थिते भूतनये सभास्करे ।
गृहं तृणैः सर्वत एव युक्तं जीर्णं नितान्तं तपनस्वभावम् ॥२२॥

अब कुछ योगों द्वारा जातक के जन्म घर का वर्णन करते हैं । अर्थात् अभी पूर्व में एक ग्रह के बली होने पर जातक के जन्म के घर को बतला कर यहाँ योगों द्वारा घर का ज्ञान कराया गया है ।

यदि जन्म के समय में नीचस्थ शनि केन्द्र में, भौम सूर्य के साथ पञ्चम भाव में हो तो जातक का जन्म चारों तरफ तृणों (तिनकों) से युक्त, पुराने और अत्यन्त ताप से युक्त घर में होता है ॥२२॥

शनैश्चरांशे हिमरश्मिपुत्रे यदा तनुस्थः स्वगृहे शशाङ्कः ।
तदा गृहं नूतनवीरुधावृतं क्वचित् सुकाष्ठैः परितो विपश्चितम् ॥२३॥



Copyrighted material

यदि जन्म के समय में बुध शनि के नवांश में और लग्नस्थ चन्द्रमा अपनी राशि (कर्क) में हो तो जातक का जन्म नवीन वृक्षों से युक्त कहीं काष्ठ से युक्त घर में होता है ॥२३॥

जीवो यदा बन्धुगतः स्वभागगो नभस्तलस्थो भृगुनन्दनस्तदा ।
चन्द्रोऽस्तगो मूर्तिगतश्शनैश्चरस्तदावृतं वस्त्रवरैः सुमन्दिरम् ॥२४॥

यदि जन्म के समय में गुरु अपने नवांश में स्थित होकर चतुर्थ में और शुक्र दशम में, चन्द्रमा सप्तम में और शनि लग्न में हो तो जातक का जन्म सुन्दर वस्त्रों से आवृत घर में होता है ॥२४॥

शनैश्चरे मूर्तिगते कुजेऽथवा पापांशकस्थे बहुपापवीक्षिते ।
गृहाश्रयं जन्मवदेच्छुभांशके कुटीरके छिद्रयुते विरूपके ॥२५॥

यदि जन्म के समय में शुभग्रह नवांशस्थ शनि लग्न में वा पापग्रह के नवांश में भौम पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक का जन्म सुंदरता से हीन, छिद्रों से युत कुटी रूप घर में होता है ॥२५॥

इति वृद्धयवने जन्माऽध्यायः ।

दिशः खरांशोर्हिमदीधितेर्गो वाणास्तथा सौम्यकुजार्कजानाम् ।
नगाः सुरेज्यस्य सितस्य नागाः प्रमाणतो दीधितयः स्वरूपाः ॥१॥

अब प्रत्येक ग्रह की रश्मियों को बतलाते हैं अर्थात् किस ग्रह की कितनी रश्मियाँ होती हैं इसको कहते है ।

सूर्य की १०, चन्द्रमा की ९, बुध, भौम व शनि की पाँच-पाँच, गुरु की ७ और शुक्र की ८ रश्मियाँ होती हैं ॥१॥

स्पष्टार्थ रश्मि चक्र—

| ग्रह | सू० | चं० | मं० | बु० | गु० | शु० | श० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राशि | १० | ९ | ५ | ५ | ७ | ८ | ५ |

नीचाच्च्युतः सन्मुखरश्मिरत्र षड्भिस्तु भेशाः परिचिन्तनीयाः ।
स्वोच्चे त्रिकोणे च वसुस्वभागो सार्द्धं स्वहर्म्ये मुनिभिस्तथैव ॥२॥
सुहृद्गृहे पञ्चभिरेव अंशैः पराङ्मुखः स्वोच्चगृहाच्च खेटः ।
नीचाश्रितो रश्मिविवर्जितश्च मध्येऽनुपातात्किरणाश्च यैः स्युः ॥३॥
ते ताडिताः स्वैः किरणैर्विभक्ता नेत्रैर्गुणैः सौम्यनिरीक्षिते च ।
त्रिंशल्लवे सौम्यसमुद्भवे च द्विघ्नाः समा स्युर्यदि चन्द्रहोरा ॥४॥
जाते बहुत्वे परिहृत्य शेषाच्चेकेन हन्यात्परमायुषं स्यात् ।

जब ग्रह अपनी नीच राशि से हटकर ६ राशि पर्यन्त अर्थात् उच्च तक रहता है तब तक उनकी रश्मियों की सन्मुख रश्मि संज्ञा और उच्च राशि से चलकर नीच राशि तक होता है तब पराङ्मुख संज्ञा होती है । उच्च में रश्मि पूर्ण व नीच में रश्मियों का अभाव होता है । मूल त्रिकोण में ग्रह होने पर पञ्चमांश से युक्त करके रश्मि जाननी चाहिए । यदि शुभग्रह से दृष्ट या शुभ के त्रिंशांश में या चन्द्रमा की होरा में ग्रह हो तो

Copyrighted material

आगत रश्मियों को द्विगुणित करके समझना चाहिए। नीच और उच्च के बीच में अनुपात द्वारा रश्मियों का ज्ञान करना चाहिए यथा जिस ग्रह की रश्मियों का आनयन अभीष्ट हो उसमें उसका नीच राश्यंश घटाकर यदि शेष ६ राशि से अधिक हो तो १२ में से घटाकर अपनी रश्मि संख्या से गुणा करके ६ का भाग देने पर अभीष्ट रश्मि होती है। जिस ग्रह में सवर्णन दो-तीन प्रकार से प्राप्त होता है वहाँ उनमें जो अधिक हो उसी एक से सवर्णन करके ग्रहण करना चाहिए ॥२-४॥

आयुः परं मानववारणानां शतं सविंशं कुलसंभवानाम्।
द्वात्रिंशतिर्जात्यतुरङ्गमाणां खरोष्ट्रयोर्विंशतिवर्षसङ्ख्या ॥५॥
चतुर्विहीना[1] च तथाविकानां[2] कासारगोशूकरमर्कटानाम्।
चत्वारिंविंशत् कथिता शुनाञ्च तदर्धतो व्याघ्रहरिर्वृकाणाम् ॥६॥
त्रिषष्टिसंज्ञः [3]पदभाजनानां द्विजिह्वगृध्रप्रभवः सहस्रम्।
संवत्सरं षट्पदटिट्टिभानां यूकाःपतङ्गाः कृमिकोटकानाम् ॥७॥
मासार्द्धजश्चैव पिपीलिकानां वृक्षोद्भवो वर्षशतं प्रदिष्टम्।
तेषां [4]पलाशो द्विगुणेन वाच्यः अश्वत्थन्यग्रोधशमीसमुत्थः ॥८॥
शतं विवृद्धया द्विजवृक्षतश्च।

अब प्राणियों को परमायु को बताते हैं —

मनुष्य व हाथियों की १२० वर्ष, घोड़ों की ३२ वर्ष, गधा व ऊँट की २५ वर्ष, भेड़ (बकरा), भैंसा, गाय, सूअर और बन्दरों की २१ वर्ष, कुत्तों की २४ वर्ष, बाघ, सिंह, भेड़िये की १२ वर्ष।

पशुओं की ६३ वर्ष, सर्प, गोध की १००० वर्ष, भौंरा, टिट्टिभ, कीट, पतङ्गादि की १ वर्ष, चींटियों की १५ दिन, वृक्षों की १०० वर्ष, वृक्षों में पलास की २०० वर्ष, पीपल की ३०० वर्ष, बरगद की ४०० वर्ष और शमी के वृक्ष की ५०० वर्ष की परमायु होती है ॥५-८॥

केन्द्रेषु सौम्या यदि पापहीनाः सर्वेषु जातस्य मितिर्न वाच्या।
उच्चाश्रिता वा ह्यपि पापसंज्ञा विमिश्रिता वा मनुजस्य तज्ज्ञैः ॥९॥
सुहृद्गृहस्थैः सकलैस्तु तुङ्गमथ प्रयातैर्गृहमंशकं वा।
आयुः परं सूत्रनरस्य वाच्यं सर्वैश्च वै वृद्धिगृहप्रयातैः ॥१०॥

अब योग द्वारा परमायु ज्ञान को कहते हैं—

यदि जन्म के समय में समस्त केन्द्रों में शुभग्रह पापग्रहों के संयोग से रहित होकर स्थित हों वा उच्च राशि में हों वा उच्चाश्रित पापग्रहों से मिश्रित हों तो जातक की परमायु होती है।

यदि जन्म के समय समस्त ग्रह मित्र राशि में वा तुङ्ग (उच्च) राशि में वा अपनी राशि में हों वा सब ग्रह ३, ६, १०, ११ भावों में हो तो जातक की परमायु होती है ॥९-१०॥

---

१. नाज तथा पु० में पा०। २. गवानाम् पु० में पा०। ३. खरभाजनानां पु० में पा०। ४. पसाशो पु० में पा०।

Copyrighted material

[1]व्ययार्थसंस्था यदि पापखेटाः षष्ठाष्टमस्था यदि वा स्युरेव ।
षडब्दको मृत्युरिहः प्रदिष्टः सौम्यैर्विना प्रोद्गतवंशयोगे ॥११॥

अब छठे वर्ष में मृत्युकारक योग को बतलाते हैं—

यदि जन्म के समय में बारहवें व द्वितीय भाव में अथवा छठे व आठवें भाव में शुभग्रहों से हीन सब पापग्रह हों तो जातक की मृत्यु छठे वर्ष में होती है ॥११॥

केन्द्रेषु पापा यदि सौम्यहीना न वीक्षते देवगुरुः सितो वा ।
मृत्युस्तदा शस्त्रकृतः प्रवाच्यो वर्षस्य मध्ये कृतसंभवे वा ॥१२॥

अब एक वर्ष में शास्त्र द्वारा मृत्युकारक योग को कहते हैं—

यदि जन्म के समय में शुभग्रहों से रहित पापग्रह केन्द्र में गुरु वा शुक्र से अदृष्ट स्थित हों तो जातक को एक वर्ष के मध्य में शस्त्रकृत (आपरेशनादि से) मृत्यु होती है ॥१२॥

षष्ठाष्टमस्था यदि सौम्यखेटाः पापा धनद्वादशगा यदा स्युः ।
तदा विनाशो मनुजस्य वाच्यो मासद्वयेनैव चतुष्पदोत्थः ॥१३॥

अब दो मास में पशु द्वारा मृत्युकारक योग को कहते हैं—

यदि जन्म के समय में छठे व आठवें भाव में शुभग्रह और दूसरे व बारहवें भाव में पापग्रह हों तो जातक की मृत्यु दूसरे मास में पशु द्वारा होती है ॥१३॥

षष्ठेऽष्टमे वा यदि शीतरश्मौ पापेन दृष्टे सहितेऽथवा स्यात् ।
सद्यो विहन्यान्मनुजं न दृष्टो यदा सुरेज्येन शुभाश्रितेन ॥१४॥

अब शीघ्र मृत्युकारक योग को कहते हैं—

यदि जन्म के समय में छठे या आठवें भाव में चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट अथवा युक्त हो तथा शुभ राशिस्थ गुरु से अदृष्ट हो तो जातक की मृत्यु शीघ्र ही होती है ॥१४॥

क्षीणः शशी मूर्तिगतः सपापो द्यूने च पापो न शुभस्तु केन्द्रे ।
मृत्युस्तदा वत्सरमध्यमे स्यान्नरस्य दृष्टो न यदा शुभेन ॥१५॥

अब १ वर्ष में मृत्युकारक योग को कहते हैं—

यदि जन्म के समय में क्षीण चन्द्रमा लग्न में शुभग्रह से अदृष्ट व पापग्रह से युक्त हो और सप्तम में पापग्रह हो व केन्द्र में शुभग्रह न हों तो जातक की मृत्यु १ वर्ष के भीतर होती है ॥१५॥

एतैर्विवादांशगुणैर्विलग्ने ताड्यो ग्रहो नागनभःशशाङ्कैः ।
राश्यादितो दस्रशशाङ्कभक्तः शेषाब्दपूर्वस्य नरायुरुक्तः ॥१६॥
द्रेष्काणवर्गोत्तमरन्ध्र (धर्म) भाग स्ववेश्मगस्य द्विगुणः प्रदिष्टः ।
द्विघ्नः स्वतुङ्गे कुजिले च मार्गे द्वयोश्च लब्धौ त्रिगुणः प्रदिष्टः ॥१७॥
अर्धं हरत्येव हि नीचसंस्थः अस्तङ्गतश्चार्कसुतो निहन्ति ।
शुक्रस्य आयुः कलुषोऽस्तगो वा सर्वत्रिभागा रिपुगा भवन्ति ॥१८॥

---

१. व्ययार्थशको मृत्युरिह प्रदिष्टः सौम्यैर्विना प्रोद्गतवंशयोगे पुस्तक में ऐसा श्लोक है ।

Copyrighted material

अर्धादिषष्ठान्तमपक्रमेण त्वेकादशादेः प्रहरन्त्यनिष्टाः ।
सर्वव्ययस्थाश्च शुभास्तदर्धं विलोमतो वीर्ययुतश्च सौम्यः ॥१९॥

॥ इति वृद्धयवने आयुर्दायाध्यायः पञ्चमः ॥

इन पूर्वोक्त योगों से युक्त यदि लग्न में या राशियों में ग्रह हो तो १०८ से गुणा करके १२ का भाग देने पर शेष तुल्य वर्ष मनुष्य की आयु होती है ।

यदि ग्रह अपने द्रेष्काण, वर्गोत्तम, नवांश या घर में हो तो आगत आयु को दुगुनी तथा उच्च में या वक्री होने पर भी द्विगुणित आयु समझनी चाहिए ।

यदि दो रीति से गुणन प्राप्त हो तो तीन से आगत आयु को गुणा करके जानना चाहिए ।

यदि नीच में ग्रह हो तथा शनि शुक्र को छोड़कर अन्य ग्रह अस्त हों तो आगत आयु का अर्द्धभाग ग्रहण करना चाहिये ।

शत्रु राशिगत ग्रह की आयु में तृतीयांश घटाकर लेना चाहिए ।

यदि व्यय स्थान में शुभग्रह हो तो आधा भाग और पापग्रह हो तो समस्त आयत का त्याग करना चाहिए तथा एकादश में पापग्रह का आधा भाग व शुभग्रह का चतुर्थांश, दशम में पाप का तृतीयांश व शुभ का षष्ठांश, नवम में पाप का चतुर्थांश व शुभ का अष्टमांश भाग इसी प्रकार आगे षष्ठभाव तक पाप शुभ भेद से आगत आयु में घटाकर ग्रहण करना चाहिए। यदि शुभग्रह बली हो तो इसके विपरीत ही समझना चाहिए ॥१६-१९॥

इस प्रकार वृद्ध यवनोक्त पाँचवाँ आयुर्दाय अध्याय समाप्त हुआ ।

(अथ) सारावल्यां (आधानाध्यायः) ।

[1]राश्यादिफलविचारः कस्य विधेयो विना समुत्पत्तेः ।
आधानमतो वक्ष्ये कारणभूतं समस्तजन्तूनाम् ॥१॥

अब राश्यादि फल विचार, विना जन्म के संभव नहीं होता इसलिये कल्याणवर्मा के वाक्यों से आधान विषयक बातों का यहाँ विवेचन करते हैं—

राशि, होरा, द्रेष्काण, नवांशादि का फल विचार उत्पत्तिकाल के विना जाने किसका कौन जान सकता है इसलिये समस्त जीवों के कारण भूत आधानाध्याय को मैं कल्याण वर्मा कहता हूँ क्योंकि उत्पत्ति जीवों की गर्भाधान से ही होती है ॥१॥

[2]अनुपचयराशिसंस्थे कुमुदाकरबान्धवे रुधिरदृष्टे ।
प्रतिमासं युवतीनां भवति रजोदर्शनं ब्रुवन्त्येके ॥२॥

अब गर्भाधान के योग्य रजो दर्शन (मासिक धर्म) समय को बतलाते हैं—

स्त्री का जन्म राशि से अनुपचय (१, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२) स्थान में चन्द्रमा भौम से दृष्ट होने पर मासिक धर्म होता है । ऐसा बहुत आचार्यों का मत है ।।२।।

इन्दुर्जलं कुजोऽग्निर्जलमसृगथ[3] वाग्निरेव पित्तं स्यात् ।
एवं रक्ते क्षुभिते पित्तेन रजः प्रवर्तते स्त्रीषु[4] ॥३॥

---

१. प्रकाशित सारा० में 'फल विभागः' यह पा० । सा० ८ अ० १२ श्लो० । २. सा० ८ अ० २ श्लो० । ३. जलेन संकरत्व पु० में पा० 'जलमस्र' यह भट्टो० बृ० जा० ४१ श्लो० टीका में पा० । ४. सा० ८ अ० ३ श्लो० ।

Copyrighted material

स्त्रियों के गुह्याङ्ग से तीन दिन तक जो रुधिर बाहर निकलता है उसी को रजोदर्शन संस्कृत में कहते हैं। उस रजो दर्शन का कारण मङ्गल और चन्द्रमा है। क्योंकि शास्त्रों में चन्द्रमा को जलमय व भौम को अग्निमय कहा गया है। इसलिये जल से रुधिर तथा अग्नि से पित्त उत्पन्न होता है। जब पित्त के द्वारा खून में हलचल होती है तो स्त्रियों को मासिक धर्म होता है ॥३॥

[1]एवं यद्भवति रजो गर्भस्य निमित्तमेव कथितं तत्।
उपचयसंस्थे विफलं प्रतिमासं दर्शनं तस्य ॥४॥

अब गर्भाधान में अक्षम मासिकधर्म योग को बतलाते हैं।

इस प्रकार जो प्रत्येक मास स्त्रियों को मासिकधर्म होता है वही गर्भ का कारण है। यदि स्त्री की राशि से तृतीय, षष्ठ, दशम, एकादश राशि में चन्द्रमा होने पर मासिक धर्म हो तो वह निष्फल होता है। अर्थात् गर्भधारण की क्षमता उसमें नहीं होती है ॥४॥

स्त्रीजन्मभादनुपचयगृहस्थं (चन्द्रं) यदि कुजः पश्यति तदा रजोदर्शनं गर्भधारणयोग्यं स्यात्। परन्तु वृद्धबन्ध्यातुराद्यतिरिक्तस्त्रीषु बोध्यम्।

तथा बादरायणः—

[2]स्त्रीणां गतोऽनुपचयर्क्षमनुष्णरश्मिः
संदृश्यते यदि धरातनयेन तासाम्।
गर्भग्रहार्तवमुशन्ति तदा न वन्ध्या-
वृद्धातुराल्पवयसामपि चैतदिष्टम् ॥५॥

अब बादरायण जी के वचन से गर्भधारण के उपयुक्त रजोदर्शन को कहते हैं—

स्त्री की जन्म राशि से अनुपचय १, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२ राशि में चन्द्रमा भौम से दृष्ट हो तो ऐसे समय में जो मासिक धर्म होता है उसमें गर्भधारण करने की क्षमता होती है किन्तु इस परिस्थिति में भी वन्ध्या, वृद्धा, रोगिणी, अल्प अवस्था वाली स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती हैं ॥५॥

[3]उपचयभवने शशभृद्दृष्टो गुरुणा सुहृद्भिरथवासौ।
पुसां करोति योगं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ॥६॥

अब पुरुष की राशि से गर्भाधान योग्य चन्द्रमा की स्थिति को बतलाते हैं—

पुरुष की राशि से उपचय (३, ६, १०, ११) राशि में चन्द्रमा हो और उस पर गुरु को या मित्र ग्रह की या विशेषकर शुक्र की दृष्टि रहने पर यदि स्त्री-पुरुष संयोग होता है तो गर्भ होने की संभावना होती है ॥६॥

[4]चन्द्रे कुजेन दृष्टे पुष्पवती सह विटेन संयोगम्।
सौम्येन चपलमतिना भृगुणा कान्तेन रूपवता ॥७॥

---

१. सारा. ८ अ. ४ श्लो.। २. बृ. जा. ४ अ. १ श्लो. भट्टो. में प्राप्त है। ३. सा. ८ अ. ५ श्लो.। ४. सारा. ८ अ. ६-७ श्लो.।

Copyrighted material

राजपुरुषेण रविणा रविजेनाप्नोति भृत्येन।
एकैकेन फलं (स्याद्) दृष्टे नान्यैः कुजादिभिः पापैः ॥८॥
सर्वैः स्वगृहं त्यक्त्वा गच्छति वेश्यापदं युवतिः—
'उपचयभवने शशभृद्दृष्टे' इत्यत्रोपचयभवनं पुरुषस्यैव।

अब स्त्री की जन्मराशि से उपचयस्थ चन्द्रमा भिन्न-भिन्न ग्रहों से दृष्ट होने पर स्त्री रजोदर्शन के समय कैसे पुरुष से संभोग करेगी इसे कहते हैं—

यदि स्त्री के रजोदर्शन काल में चन्द्रमा भौम से दृष्ट हो तो धूर्त पुरुष से, बुध से दृष्ट हो तो चंचल बुद्धि वाले पुरुष से, शुक्र से दृष्ट हो तो रूपवान् पति से, सूर्य से दृष्ट होने पर राजपुरुष से, शनि से दृष्ट हो तो नौकर से पुष्पवती का संयोग होगा ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार एक-एक ग्रह से चन्द्र दृष्ट हो और अन्य कुजादि पापग्रहों से अदृष्ट हो तो कथित फल की पूर्ण संभावना होती है।

यदि चन्द्रमा पर समस्त पापग्रहों की दृष्टि मासिकधर्म के समय में हो तो पुष्पवती घर का परित्याग करके वेश्या हो जाती है।

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'सौम्येन चपलमतिना भृगुणा कान्तेन रूपवता' यह आधा श्लोक उपलब्ध नहीं होता है किन्तु बृ० जा० ४ अध्याय प्रथम श्लोक की भट्टोत्पली टीका में मणित्थाचार्य जी के वाक्य में प्राप्त होता है ॥७-८॥

उपचय स्थान में चन्द्रमा गुरु से दृष्ट हो तो यह विचार पुरुष की राशि से चन्द्र के होने पर ही करना चाहिये जो कि बादरायण जी ने कहा है।

यदाह बादरायणः—

[1]पुरुषोपचयगृहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूखः।
स्त्रीपुरुषसंप्रयोगं तदा वदेदन्यथा नैवम् ॥९॥ इति।

अयं विचारश्चतुर्थदिने तदाह मणित्थः—

[2]ऋतुविरमे स्नातायां यद्युपचयसंस्थितः शशी भवति।
बलिना गुरुणा दृष्टे भर्त्रा सह सङ्गमश्च तदा ॥१०॥

बादरायण जी ने अपने जातक ग्रन्थ में कहा है कि पुरुष की राशि से ३, ६, १०, ११ राशियों में चन्द्रमा यदि गुरु से दृष्ट हो तो स्त्री पुरुष संभोग सफल होता है तथा गुरु से अदृष्ट होने पर सफल नहीं होता है ॥९॥

यह विचार अर्थात् पुरुष स्त्री राशि से उपचयानुपचय विचार ऋतुमती के चौथे दिन से करना चाहिये। मणित्थाचार्य ने कहा है कि ऋतु (मासिक) की समाप्ति में अर्थात् चतुर्थ दिन से स्त्री के स्नान करने पर चन्द्रमा का विचार होता है क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि 'भर्तुः स्पृश्या चतुर्थेह्नि' किन्तु चौथे दिन भी गर्भ की स्थिति नहीं होती है। शास्त्रान्तर में वर्णित है 'नाद्याश्चतस्रोऽथ निषेकयोग्याः' 'पुत्रोऽल्पायुः' इत्यादि। यदि चन्द्रमा बली गुरु से दृष्ट हो तो अपने पति के साथ संयोग होता है ॥१०॥

---

१. बृ. जा. ४ अ. १ श्लो. भट्टो. टीका में प्राप्त है। २. बृ. जा. ४ अ. १ श्लो. की भट्टो. टीका में उपलब्ध है। पुस्तक में तायां यद्रूपः संस्थितः यह पाठ है।

Copyrighted material

ननु पूर्वोक्तसारावलीपद्ये शुक्रदृष्टे चन्द्रे स्वपुरुषयोगोऽन्यदृष्टे राजपुरुषादिभिः पुष्पवतीसंयोग उक्तोऽस्ति। तत्र साध्वीनां परपुरुषाभावात्कथं योगो घटत इति चेदुच्यते। राजपुरुषादिचेष्टास्वरूपादियुतेन स्वपुरुषेणैव योगो वाच्यो न तु परपुरुषेण। वेश्यापदं चात्रातिनिर्लज्जत्वद्योतकमिति सर्वं सुस्थम्।

यहाँ पर यह शङ्का होती है कि पूर्वोक्त सारावली के श्लोक में शुक्र से चन्द्रमा दृष्ट होने पर अपने पति के साथ संभोग तथा अन्य ग्रह से दृष्ट होने पर राजपुरुषादि से संयोग कहा है, किन्तु पतिव्रता स्त्रियों के लिये परपुरुष का अभाव होने से योग कैसे बन सकेगा। इसका उत्तर यह है कि अन्य ग्रहों से चन्द्र दृष्ट होने पर पतिव्रता स्त्री अपने पुरुष के साथ ही संयोग करती है किन्तु पति की इच्छा संभोग के समय में दृष्ट ग्रह के अनुरूप ही होती है। वेश्या शब्द यहाँ अत्यन्त निर्लज्जता का प्रतीक है।

[1]द्विपदादयो विलग्नात्सुरतं कुर्वन्ति सप्तमे यद्वत्।
तद्वत् स्त्रीपुरुषाणामपि गर्भाधानं समादेश्यम् ॥११॥
अस्तेऽशुभदृष्टयुते सरोषकलहं सदा भवेद्ग्राम्यम्।
सौम्यैः सौम्यं सुरतं वात्स्यायनसंप्रयोगकाख्यातम् ॥१२॥
तत्र शुभाशुभमिश्रैः कर्मभिरधिवासितविषयवृत्तिः।
गर्भावासे निपतति संयोगे शुक्रशोणितयोः ॥१३॥

अब गर्भाधानकाल में संभोग इच्छापूर्वक हुआ या अनिच्छा से इसको बतलाते हैं—

गर्भाधान कालिक या प्रश्नकालिक लग्न से सप्तमभावस्थित द्विपदादि राशि जिस रीति से संभोग करता है उसी रीति से संभोग हुआ है ऐसा जानना चाहिये।

अर्थात् यदि सप्तमभाव में द्विपद राशि हो तो द्विपद की भाँति, चतुष्पद हो तो चार पैर वालों की तरह, कीट या जलचर संज्ञक हो तो कीट वा जलचर जीव की तरह संभोग हुआ है, यह समझना चाहिये।

यदि सप्तम भाव पाप ग्रह से दृष्ट या युक्त हो तो क्रोध व कलह के साथ असामाजिक रीति से, यदि सप्तम भाव शुभ ग्रह से दृष्ट युत हो तो कामशास्त्र की रीति से शान्तिपूर्वक हासादि से युत, यदि सप्तम भाव शुभ पाप दोनों से युत दृष्ट हो तो मिश्र रीति से संभोग होता है। कर्मानुकूल विषयवृत्ति के आधार पर संभोग काल में रज वीर्य संयुक्त होकर बच्चेदानी में पतित होता है ॥११-१३॥

[2]उपचयगौ रविशुक्रौ बलिनौ पुंसः स्वमंशकं प्राप्तौ।
युवतेर्वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसंभवो भवति ॥१४॥

अयमर्थो न्यायसिद्धः। तद्यथा सूर्यस्य पुंग्रहत्वादुपचयगतः तदीयपुंस्त्वोपचयकरः शुक्र उपचये स्थितश्चेच्छुक्रपुष्टिकरः। अत्र उभयोर्बलं पुरुषस्य युज्यते। भौमबलेन शोणितोपचयात्पुष्टया प्रादुर्भाव इति चन्द्रस्य स्त्रीग्रहत्वाच्चन्द्रबलं स्त्रीणामुपयुज्यते। एवं स्त्रीपुंसोः प्राबल्याच्छुक्रशोणितसन्निपाते हि गर्भग्रहणं भवतीति ज्ञेयम्।

---

१. सारा. ८ अ. ८-१० श्लो.। २. सारा० ८ अ० ११ श्लो०।

Copyrighted material

अत्र समुद्रजातकटीकाकृतः पुरुषस्त्रीजन्मराशिं विहाय मेषाद्याः पुंराशयो वृषाद्याः स्त्रीराशय इति व्याख्यातं तदसत्। यतः स्पष्टमेतदुदितं शुक्रजातके—

सूर्यशुक्रौ स्वांशकस्थौ पुरुषोपचयर्क्षगौ।
स्त्रीणां कुजेन्दुवीर्याढ्यौ स्वांशोपचयसंस्थितौ ॥१५॥
गर्भप्रदौ पञ्चमे च निर्बले क्रूरसंयुते।
सुतेशेऽस्तङ्गते नीचे न गर्भः क्रूरसंयुते ॥१६॥

अब पुरुष-स्त्री राशि से गर्भप्रद योग को बतलाते हैं।

यदि गर्भाधान के समय पुरुष राशि से बली व अपने नवांश में सूर्य व शुक्र उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान में हों तथा स्त्री राशि से बलवान् अपने नवांश में भौम तथा चन्द्रमा उपचय स्थान में हों तो गर्भस्थिति की संभावना होती है ॥१४॥

यह योग न्याय सिद्ध प्रतीत होता है क्योंकि सूर्य पुरुष ग्रह होने से पुरुषत्व की वृद्धि करने वाला तथा उपचय में स्थित शुक्र वीर्य की पुष्टि करने वाला होता है।

इसलिये उपचयस्थ सूर्य व शुक्र पुरुष के लिये उपयुक्त ही हैं।

इसी प्रकार स्त्री राशि से भौम व चन्द्रमा इसलिये शुभद होते हैं कि भौम रुधिर का कारण है और रुधिर से रज की पुष्टि होने से पुष्ट गर्भ का जन्म तथा चन्द्र स्त्री ग्रह है अतः स्त्री के लिये चन्द्र बल आवश्यक होने के कारण यहाँ चन्द्रमा का उपचय में प्रयोग उचित ही है।

इस प्रकार स्त्री-पुरुष ग्रहों की प्रबलता से रजवीर्य एकत्रित होकर गर्भ का रूप धारण करते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

यहाँ पर समुद्र जातक के टीकाकार ने पुरुष-स्त्री की जन्म राशि को छोड़कर मेषादि पुरुष राशि या वृषादि स्त्री राशि हैं, ऐसी व्याख्या की है, वह ठीक नहीं है। क्योंकि शुक्रजातक में स्पष्टता से उपलब्ध है कि स्त्री व पुरुष की जन्म राशि से इनका विचार करना चाहिये।

शुक्र जातक में कहा है कि गर्भाधान समय में पुरुष की जन्म राशि से उपचय स्थान में यदि बलवान् अपने-अपने नवांश में स्थित सूर्य व शुक्र हो तथा स्त्री की जन्म राशि से उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान में यदि बली अपने-अपने नवांश में स्थित चन्द्रमा तथा भौम हो तो गर्भ स्थिर रहने की संभावना होती है।

यदि गर्भाधान समय में पञ्चम भाव में निर्बल पापग्रह हो और पञ्चमेश अस्त हो या नीच में या पापग्रह से युक्त हो तो गर्भ की संभावना नहीं होती है ॥१५-१६॥

सारावल्याम्—

[1]शुक्रार्कभौमशशिभिः स्वांशोपचयसंस्थितैः [सुरेड्ये वा]।
धर्मोदयात्मजस्थे बलवति गर्भस्य संभवो भवति ॥१७॥

अब गर्भ के संभवासंभव को अर्थात् संभोग के अनन्तर गर्भ की स्थिरता हुई या नहीं इसे बतलाते हैं—

---

१. सारा० ८ अ० १२ श्लो०।

Copyrighted material

यदि प्रश्न कालिक लग्न से या आधान कालिक लग्न से उपचय राशि में अपने-अपने नवांश में शुक्र, सूर्य, भौम व चन्द्रमा हो अथवा बलवान् बृहस्पति नवम, लग्न में या पञ्चम हो तो गर्भ रहने की सम्भावना होती है।

**विशेष**—इस श्लोक के तृतीय चरण 'चर्मेऽथवात्मजे वा' यह पाठ पुस्तक में प्राप्त है किन्तु प्रकाशित सारावली में जो पाठ दिया है वही यहाँ मूल में दिया है क्योंकि इस पाठान्तर की ग्रन्थान्तर से समता उपलब्ध होती है।

बृहज्जातक में कहा है—'रवीन्दुशुक्रावनिजैः स्वभागगैर्गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वा' (४ अ० ३ श्लो०) ॥१७॥

[1]मिथुनस्य मनोभावो यादृङ्मदलालसं भवति।
श्लेष्मादिभिः स्वदोषैस्तत्तुल्यगुणो निषिक्तः स्यात् ॥१८॥

अब गर्भ है यह ज्ञात होने पर गर्भस्थ जीव का गुण दोष कैसा होगा इसे कहते हैं—गर्भाधान काल में स्त्री-पुरुष की जैसी भावना, इच्छा वा आलस्यता, कफ-वातादि दोष के कारण होती है तदनुरूप गुण दोष से युक्त गर्भस्थ जीव होता है ॥१८॥

**विशेष**—पुस्तक में यह 'मिथुनस्य सप्तमो भावो' 'तादृक् श्लेष्माभिः स्वादोषैस्ततस्तु तुल्यगुणो निषिक्तः स्यात्' पाठान्तर है यहाँ प्रकाशित सारावली से दिया गया है इसकी समता प्रायः बृ० जा० ४ अ० १६ श्लोक की भट्टोत्पली टीका में उद्धृत पद्य से है किन्तु कुछ पाठान्तर भी 'मदालस्यो' 'भिश्च दोषैः' 'षिक्तस्य' उपलब्ध है ॥१८॥

अयं योगो निषेककाले ज्ञेयः। उक्तञ्च सूर्यजातके—

सद्युक्तैश्चन्द्रशुक्रारैः स्वांशोपचयसंस्थितैः।
आधानलग्ने गर्भस्य संभवो भवति ध्रुवम् ॥१९॥

यह योग निषेक (गर्भाधान) समय में जानना चाहिये। ऐसा सूर्यजातक में कहा है—यदि आधान के समय में अर्थात् गर्भाधान लग्न से या प्रश्न लग्न से उपचय (३, ६, १०, ११) राशि में अपने-अपने नवांश में शुभग्रह से युक्त या बली चन्द्रमा, शुक्र, भौम हो तो गर्भ की संभावना अवश्य होती है ॥१९॥

अत्र लग्नस्थोऽपि गुरुर्ज्ञेयः। उक्तञ्च गर्गेण—

लग्नस्थो वा सुतस्थो वा धर्मस्थो वा बली गुरुः।
प्रोक्तर्क्षे शुभवारे च धारयेद्गर्भमुत्तमम् ॥२०॥

यहाँ गर्भसंभव योग विचार में लग्नादिस्थ गुरु भी समझना चाहिये क्योंकि गर्गाचार्य जी ने कहा है कि लग्न वा नवम में स्थित गुरु भी शुभ वार में गर्भ की स्थिरता करता है यह प्रकारान्तर से समझना चाहिये ॥२०॥

अन्येऽपि निषेकलग्नाद्योगा उक्तास्तेनैव—

पुङ्ग्रहाः षष्ठलाभस्थाः पञ्चमेशो यदा बली।
अन्ये विषमराशिस्था गर्भयोगा इमे स्मृताः ॥२१॥
लग्नात्मजेशौ संयुक्तावन्योन्यं चाभिवीक्षितौ।
परस्परं क्षेत्रगौ वा गर्भयोगा इमे स्मृताः ॥२२॥

---

१. सा० ८ अ० १३।

Copyrighted material

ओजराश्यंशगे चन्द्रे लग्ने पुंग्रहवीक्षिते।
स्ववर्गेष्विन्दुजीवभौमाः स्युर्गर्भयोगकाः ॥२३॥इति॥

गर्गाचार्य जी ने और भी निषेकलग्न से गर्भ संभव योग कहे हैं—

यदि गर्भाधान के समय में पुरुष ग्रह षष्ठ व लाभ भाव में हों, पञ्चमेश बलवान् हो तथा अन्य ग्रह विषम राशि में हों तो गर्भस्थिति होने की सम्भावना होती है।

यदि आधान के समय या प्रश्न के समय में लग्नेश व पञ्चमेश एक राशि में या परस्पर दृष्ट हो वा लग्नेश पञ्चमेश की राशि में व पञ्चमेश लग्नेश की राशि में हो तो गर्भ रहने की सम्भावना होती है।

यदि विषम राशि के नवांश में लग्नस्थ चन्द्रमा पुरुष ग्रह से दृष्ट हो तथा अपने-अपने वर्ग में चन्द्रमा, गुरु, भौम हों तो संभोग के समय गर्भ की स्थिरता होती है ॥२१-२३॥

अन्यान् शुभाशुभयोगानाह श्रीशुकाचार्यः—

लग्नाधिपः सुतस्थाने जायास्थानगतोऽपि वा।
सुतजायाधिपौ लग्ने तदा स्याद्गर्भसंभवः ॥२४॥
निषेककाले सूर्यस्य (र्यात्तु ?) सप्तमस्थौ कुजार्कजौ।
पुंसो रोगप्रदौ वार्कात्कुजमन्दौ द्विरिष्फगौ ॥२५॥
पुंसो मृत्युप्रदो वार्कः पूर्णदृष्ट्या च वीक्षितः।
मध्ये मन्दारयोरेकतरेणा (ना) न्येन संयुतः ॥२६॥
पुंसो मृत्युप्रदश्चन्द्रः सूर्यवत् स्त्रीमृतिप्रदः।
योगकारकयोर्वीर्यात्तन्मासे मृत्युमादिशेत् ॥२७॥

एते पूर्वोक्ता गर्भधारणयोगाः विबीजिनां न विचार्या इत्याह श्रीसूर्यः—

'विबीजिनामिमे योगा न विचार्याः कदाचन' इति।

अब अन्य शुभाशुभ योगों को अर्थात् गर्भाधान काल में स्थिरता वा अस्थिरता कारक योगों को बतलाते हैं।

यदि गर्भाधान काल में लग्नेश पञ्चम वा सप्तम में तथा पञ्चमेश व सप्तमेश लग्न में हों तो गर्भ की स्थिरता समझनी चाहिये।

यदि संभोग समय में सूर्य से सप्तम में भौम व शनि हों अथवा सूर्य से द्वितीय व द्वादश में भौम व शनि हों तो पुरुष के लिये रोगप्रद होते हैं।

यदि आधान के समय में सूर्य, भौम व शनि के मध्य में हो वा सूर्य शनि भौम में किसी एक से युक्त एवं एक से पूर्ण दृष्ट हो तो पुरुष की मृत्यु करने वाला होता है।

सूर्य की तरह ही चन्द्रमा से पूर्वोक्त प्रकार विचार करने पर स्त्री के लिये कष्ट वा मृत्यु का ज्ञान करना चाहिये। जैसे आधान के समय में चन्द्रमा यदि पापग्रह अर्थात् शनि भौम के मध्य में वा एक से दृष्ट, एक से युत हो तो स्त्री के लिये अरिष्ट योग समझना चाहिये।

इन स्त्री पुरुष कारक ग्रहों की सबलता निर्बलता से उनके ही मास में अर्थात् निर्बलता जिस मास में कारक ग्रह को प्राप्त हो उसी मास में माता पितादि का अरिष्ट समझना चाहिये ॥२४–२७॥

Copyrighted material

पूर्वोक्त गर्भधारण योग नपुंसक स्त्री पुरुष संभोग में नहीं विचारने चाहिये ऐसा श्री सूर्य ने कहा है कि नपुंसकों की संभोग अवस्था में इनका विचार नहीं करना चाहिये।

विशेषयोगा मीनराजजातके[1]—

मन्दारयोः सप्तमराशिसंस्थयोः यदा निषेको मरणं तदा पितुः।
रवेः शशाङ्कात्स्वथ तज्जनन्याः एकेन रोगाः पुरुषप्रवादाः ॥२८॥
यदा हिमांशुर्व्ययगो दिवाकरश्छिद्रं गतो भूतनयश्चतुर्थः।
मृत्युस्तदा संभवति ह्युभाभ्यां शस्त्रेण सौरेण तु बन्धनेन ॥२९॥
मृत्युङ्करः शीतकरः खरिष्फे सुखस्थितः सूर्यसुतः सभौमः।
न गर्भसंभूतिरिह प्रदिष्टा योगैः ससौम्यैः प्रवदन्ति कृच्छ्रात् ॥३०॥
मूर्तिस्थितस्तीक्ष्णकरः कुजो वा सक्षीणमूर्तिर्विधुरिष्फगे वा।
वृथाफलं स्यात्सुरतोपचारैर्नीचाश्रितैस्त्र्यादिभिरत्र पुंसाम् ॥३१॥

अब मीनराज जातक के वचन से योगों को कहते हैं।

यदि गर्भाधान के समय सूर्य से सप्तम राशि में शनि व भौम हों तो पिता के लिये मरण कारक होते हैं तथा चन्द्रमा से सप्तम में स्थित होने पर माता के लिये मृत्यु कारक होते हैं। यदि दोनों में से एक हो तो रोग वा प्रवाद होता है।

यदि निषेक के समय में व्यय में चन्द्रमा, अष्टम में सूर्य और चतुर्थ में भौम हो तो दोनों (स्त्री पुरुषों की) शस्त्र से, यदि अष्टम में शनि हो तो बन्धन से मृत्यु की संभावना होती है।

यदि संभोग के समय में चन्द्रमा दशम वा द्वादश में और शनि भौम के साथ चतुर्थ भाव में हो तो गर्भ की स्थिति नहीं होती है। यदि शुभग्रहों की युति या दृष्टि इस योग में हो तो कष्ट से गर्भ रहने की सम्भावना होती है।

यदि गर्भाधान के समय में लग्न में सूर्य वा भौम, द्वादश में क्षीण चन्द्रमा हो वा तीन ग्रह नीच राशि में हों तो गर्भ की सम्भावना नहीं होती है अर्थात् इस परिस्थिति में किये हुए सम्भोग का कोई फल नहीं होता है ॥२८-३१॥

अथ पितृमातृपितृव्यमातृष्वसृसंज्ञकान् ग्रहान् तत्फलञ्चाह [2]कल्याणवर्मा—

दिवसे मातापितरौ शुक्ररवी (शशि) शनी निशायाञ्च।
मातृभगिनी पितृव्यौ विपर्ययात् कीर्तितौ यवनवृद्धैः ॥३२॥
दिवसे निषिक्तस्य जातस्य चेति शेषः। एवं निशायामित्यत्रापि।

अब कौन-कौन सा ग्रह पिता, माता, चाचा, मौसी संज्ञक होता है इसे कल्याणवर्मा के वचन से कहते हैं।

यदि दिन में गर्भाधान या जन्म हो तो शुक्र की माता और सूर्य की पिता, यदि रात्रि में जन्म या गर्भाधान हो तो चन्द्रमा की माता और शनि की पिता संज्ञा होती है। इसके विपरीत अर्थात् रात्रि के ग्रह दिन में और दिन के ग्रह रात्रि में मौसी चाचा संज्ञक होते हैं यथा दिन में जन्म या गर्भाधान हो तो चन्द्रमा की मौसी और शनि की चाचा यदि रात्रि में जन्म या गर्भाधान हो तो शुक्र का मौसी व सूर्य की चाचा संज्ञा होती है ॥३२॥

---

१. ३ अ० २५-श्लो०। २. सारा० ८ अ० २७ श्लो०।

Copyrighted material

बृहज्जातक में भी कहा है—'दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् । पितृव्यमातृष्वनृसंज्ञितौ च (४ अ० ५ श्लोक) ॥३२॥

[1]लग्नाद्विषमर्क्षगतः पितुः पितृव्यस्य खेचरः शस्तः ।
मातृभगिनीजनन्यौ समगृहगोऽन्योऽन्यथा तेषु ॥३३॥

अन्यथोक्तवैपरीत्येषु मातृपित्रादिषु अन्यः विपरीतफलः । अशस्त इत्यर्थः ।

अब माता पिता मौसी चाचादि संज्ञा का क्या उपयोग होता है इसको बतलाते हैं

यदि गर्भाधान या जन्म या प्रश्न लग्न से विषम राशियों में पिता व चाचा संज्ञक ग्रह हों तो उनके लिये शुभ फलद होते हैं तथा माता व मौसी संज्ञक ग्रह यदि लग्न से सम राशियों में हों तो उनके लिये शुभकारक होते हैं ।

यदि लग्न से विषम राशि में मौसी व माता संज्ञक ग्रह हों तथा लग्न से सम राशियों में पिता व चाचा ग्रह हों तो उनके लिये श्रेयस्कर नहीं होते हैं ॥३३॥

विशेष उक्तो होरामकरन्दे[2]—

आदौ द्युरात्र्योः पितृमातृखेटौ फलं तु पूर्णं ददतुः स्वकीयम् ।
अन्ते तयोस्तुच्छमतीव मध्ये पापं शुभं वा परिकल्पनीयम् ॥३४॥

अब पिता मातादि संज्ञक ग्रह कितना शुभाशुभ फल प्रदान करेंगे इसको कहते हैं ।

दिन व रात्रि के आदि में पिता, माता, संज्ञक ग्रह पूर्वोक्त शुभ स्थान में हों तो शुभ फल पूर्ण, अन्त में अर्थात् दिन रात्रि के अन्त में गर्भाधान या जन्म हो तो पिता माता संज्ञक ग्रह अत्यल्प शुभफल देते हैं । इसी प्रकार पाप (अशुभ) ग्रह का भी आदि अन्त व मध्य में अनुपात द्वारा फल जानना चाहिये ।।३४॥

[3]सारावल्याम्—

अथवा निषेककाले विलग्नसंस्थौ यदा रुधिरमन्दौ ।
तद्गृहगतेऽथवेन्दौ तदीक्षते वा पतति गर्भः ॥३५॥

अब गर्भ पतन योग को कहते हैं—

अथवा गर्भाधान के समय लग्न में भौम व शनि हों अथवा शनि भौम (१०, ११, १, ८) की राशि में चन्द्रमा हो अथवा शनि भौम से दृष्ट चन्द्रमा हो तो गर्भ का पतन होता है ।

विशेष—श्लोक में अथवा होने से जानकारी मिलती है कि इसके पूर्व भी गर्भ पतन का योग होना चाहिये । इसलिये पूर्व में जो योग है वह पाठकों की सुविधा के लिये दिया जा रहा है—

'उत्पातक्रूरहते तस्मात् स्वस्याधिपे पतति गर्भः । लग्नगृहं वा हेतुर्योगोऽसौ गर्भपतनस्य' (८ अ० ३२ श्लोक०) ॥३५॥

[4]होरेन्दुयुतैः सौम्यैस्त्रिकोणजायार्थखाम्बुसंस्थैर्वा ।
पापैस्त्रिलाभयातैः सुखी तु गर्भो निरीक्षिते रविणा ॥३६॥

यदि चन्द्रराशिर्लग्नराशिर्वा निरीक्षित इत्यर्थः ।

---

१. सारावली ८ अ० २७ श्लो० । २. ४ अ० ८ श्लोक । ३. सारा. ८ अ० ३३ श्लोक । ४. ८ अ० ३४ श्लो० ।

Copyrighted material

अब गर्भ सुखी रहेगा इसको बतलाते हैं—

यदि आधान कालिक वा प्रश्नकालिक होरा अर्थात् लग्न में शुभ ग्रह हों या चन्द्रमा शुभग्रह से युत हो अथवा लग्न व चन्द्रमा से ९, ५, ७, २, १०, ४ इन स्थानों में शुभ-ग्रह हों तथा ३, ११ भाव में पापग्रह हों चन्द्रमा वा लग्न पर सूर्य की दृष्टि हो तो प्रसव पर्यन्त गर्भ सुखी रहता है ॥३६॥

[1]क्रूरान्तस्थश्चन्द्रः सूर्यो वा युगपदेव मरणाय ।
सौम्यैरदृष्टमूर्तियुर्वतीनां गर्भसहितानाम् ॥३७॥

अब गर्भ सहित गर्भवती के मरण कारक योग को बतलाते हैं—

यदि आधान समय में सूर्य या चन्द्रमा पापग्रह के मध्य हों और उन पर शुभग्रहों की दृष्टि का अभाव हो तो गर्भ सहित गर्भवती का मरण होता है ॥३७॥

अत्र लग्नेन्दू पापान्तस्थौ ज्ञेयौ इति वराहः । तद्यथा—

[2]पापद्वयमध्यसंस्थितौ लग्नेन्दू न च सौम्यवीक्षितौ ।
युगपत्पृथगेव सा वदेन्नारी गर्भयुता विपद्यते ॥३८॥

अब सगर्भा के पूर्वोक्त मरण योग में वराहोक्त विशेष बात यह कहते है कि सूर्य के बजाय लग्न व चन्द्रमा यदि हों तो यह योग घटित होता है । सूर्य तो पिता कारक ग्रह है इससे गर्भवती का मरण कैसे हो सकता है ।

यदि गर्भाधान के समय में लग्न व चन्द्रमा दोनों पाप ग्रहों के मध्य में शुभ ग्रहों से अदृष्ट हों तो गर्भवती का गर्भ के साथ मरण होता है ॥३८॥

[3]उदयं यातैः पापैः सौम्यैरनिरीक्षितैर्मरणमस्याः ।
उदयस्थेऽर्कजे वा क्षीणेन्दौ भौमसंदृष्टे ॥३९॥

अब प्रकारान्तर से सगर्भा के मरण योग को कहते हैं—

यदि आधान के समय में लग्न में पापग्रह शुभग्रहों से अदृष्ट हों या पाठान्तर से सप्तम में पापग्रह शुभग्रहों से अदृष्ट हों अथवा लग्न में शनि हो और उस पर क्षीणचन्द्र व भौम की दृष्टि हो तो गर्भवती का मरण होता है ॥३९॥

अत्र द्वादशगैक्रूरैर्योगमाह गर्गः—

[4]अशुभैर्द्वादशर्क्षस्थैः शुभदृष्टिविवर्जितैः ।
आधानलग्ने मरणं योषितःप्रवदेद्बुधः ॥४०॥

अब सगर्भा मरण योग में द्वादशस्थ पापग्रह भी कारण होता है इसे गर्गाचार्य जी के वचन से बतलाते हैं—

यदि आधान के समय में लग्न से बारहवें पापग्रह शुभग्रहों से अदृष्ट हों तो गर्भवती का मरण होता है ॥४०॥

[5]अभिलषद्भिरुदयर्क्षमसद्भिरित्यनेन द्वादशे क्रूरग्रहा उक्ता इति ।

---

१. सारा. ८ अ. ३५ श्लोक. । २. बृ. जा. ४ अ. ७ श्लोक० । ३. सारा० ८ अ० ३६ श्लोक तथा प्रकाशित में उदयास्तगतैः पापैः सौम्यैरनवीक्षितैरश्र मरणं स्यात्' पाठा० । ४. बृ. जा. ४अ. ६ श्लो. की भट्टो. में प्राप्त है । ५. बृ. जा. ४अ. ६ श्लो. ।

Copyrighted material

सारावली के श्लोक में प्रमाण का अभाव है। द्वादशस्थ पापग्रह का कथन तो वराह-मिहिराचार्य जी ने भी किया है कि यदि द्वादशस्थ पापग्रह लग्न में जाने वाले हों तो सगर्भा का मरण होता है।

[1]व्ययगेऽर्के शशिनि कृशे पाताले लोहिते सगर्भा स्त्री।
म्रियते तस्मिन्नथवा शुक्रे पापद्वयान्तःस्थे ॥४१॥
चन्द्रचतुर्थैः क्रूरैर्विलग्नतो वा विपद्यते गर्भः।
होराष्टमे क्षितिसुते म्रियते स गर्भः सह जनन्या ॥४२॥

वराहेणायं योगोऽन्यथोक्तः—

क्रूरैः शशिनश्चतुर्थगैर्लग्नाद् वा निधनाश्रिते कुजे।

अत्र निधनाश्रिते कुजे चन्द्राल्लग्नाच्च योगद्वये ज्ञेये।

हिबुकगते धरणिसुते रिष्फगतेऽर्के क्षपाकरे क्षीणे।
गर्भेण समं म्रियते पापग्रहदर्शनं प्राप्ते ॥४३॥
लग्ने रविसंयुक्ते क्षीणेन्दौ वा कुजेऽथवा म्रियते।
व्ययधनसंस्थैः पापैस्तथैव सौम्यग्रहादृष्टैः ॥४४॥
जामित्रे रवियुक्ते लग्नगते वा कुजे निषिक्तस्य।
गर्भस्य भवति मरणं शस्त्रच्छेदैः सह जनन्या ॥४५॥

अब पुनः प्रकारान्तर से सगर्मा गर्भवती के मरण योग को बतलाते हैं।

यदि आधान के समय में द्वादशभाव में सूर्य या क्षीण चन्द्रमा हो वा दोनों हों और चतुर्थ भाव में भौम हो अथवा शुक्र दो पापग्रहों के बीच में हो तो गर्भवती का गर्भ के साथ मरण होता है। यदि चन्द्रमा या लग्न से चतुर्थ भाव में पापग्रह हों तो गर्म नष्ट होता है। यदि लग्न से अष्टम में भौम हो तो गर्भ के साथ गर्भवती का मरण होता है।

आचार्य वराह मिहिर ने इस योग का वर्णन अन्य रीति से किया है जैसे लग्न या चन्द्रमा से चतुर्थ भाव में पापग्रह हो और अष्टम में भौम हो तो गर्भवती का गर्भ के साथ मरण होता है। यदि आधान के समय में चतुर्थ में भौम और द्वादश में सूर्य व क्षीण चन्द्रमा हो व उन पर पापग्रह की दृष्टि हो तो सगर्भा का मरण होता है।

यदि गर्भाधान के समय लग्न में सूर्य वा क्षीण चन्द्रमा अथवा भौम हो और द्वितीय द्वादश में पापग्रह शुभग्रहों से अदृष्ट हो तो भी गर्भवती का गर्भ के साथ मरण होता है।

यदि गर्भाधान के समय में सप्तम में सूर्य और लग्न में भौम हो तो शस्त्र (आपरेशन) के द्वारा सगर्भा का मरण होता है।

**विशेष**—पुस्तकीय सारावली श्लोक व प्रकाशित सारावली श्लोकों में जो पाठान्तर उपलब्ध है वह दिया जा रहा है 'व्ययगैरर्कशनिकृशे पाताले लोहिते सगर्भैव स्त्री म्रियते अस्मिन्नथवा'। 'चन्द्रचतुर्थे क्रूरैर्लग्नगतैर्वा' यह पुस्त० में। 'होराद्यूने' 'गर्भः सह जनन्या' यह प्रकाशित सारा० पु० में, 'रिष्फगते क्षपाकरे क्षीणे' पु० में, 'गर्भेण सह' प्रका० सारा० पु० में, 'यामित्रगेर्कदृष्टे' पु० में पाठान्तर है ॥४१–४५॥

---

१. सारा. ८ अ. ३७-४१ श्लो.।

Copyrighted material

[1]बलिभिर्बुधगुरुशुक्रैर्दृष्टेऽर्केण च विवर्धते गर्भः ।
मासाधिपबलतुल्यैस्तैस्तैः संयुज्यते भावैः ॥४६॥
मासि तृतीये स्त्रीणां दोहदको जायतेऽवश्यम् ।
मासाधिपस्वभावैर्विलग्नगयोगादिभिश्चिन्त्यम् ॥४७॥

अब गर्भ की वृद्धि या पुष्टि कारक योग को कहते हैं—

यदि गर्भाधान कालिक लग्न बलवान् बुध, गुरु, शुक्र से दृष्ट हो तो गर्भ की वृद्धि होती है ऐसा समझना चाहिये । एवं प्रत्येक मास से मास स्वामी के बलानुसार मासेश के स्वभाव व गुणों से युत गर्भ होता है ।

गर्भवती स्त्री को तीसरे मास में खान पान की इच्छा (दोहद) होती है । उस इच्छा का ज्ञान मास स्वामी के स्वभावादि से व लग्नगत ग्रह के स्वभावादि से समझना चाहिये ।।४६–४७।।

अथ प्रतिमासं गर्भस्यावयवोत्पत्तिमासाधिपानाह यवनः—

आद्ये तु मासे कललं द्वितीये[2] पेशिस्तृतीयेऽपि भवन्ति शाखाः ।
अस्थीन्यथ स्नायुशिराश्चतुर्थे मज्जा च चर्माण्यपि पञ्चमे तु ॥४८॥
षष्ठे त्वसृग्रोमनखैः[3] यकृच्च[4] चेतस्विता[5] सप्तममासि चिन्त्या[6] ।
तृष्णाशनास्वादनमष्टमे स्या[7]त्स्पर्शोऽपरोधो नवमे रतिश्च[8] ॥४९॥
स्रोतोभिरुद्घाटितपूर्णदेहो गर्भोऽर्कमासे दशमे प्रसूतेः ।
कुजास्फुजिज्जीवरवीन्दुसौरशशाङ्कलग्नेन्दुदिवाकराणाम् ॥५०॥
मासाधिपत्यप्रभवो न चैषां [9]जयोपघातैर्ग्रहवद्ब्रुवन्ति[10] ।

अब प्रत्येक मास से गर्भ के किस-किस अवयव की उत्पत्ति होती है व किस मास का कौन ग्रह स्वामी होता है इसको यवनाचार्यजी के वचन से बतलाते हैं—

गर्भ के प्रथम मास में कलल अर्थात् रजवीर्य का संमिश्रण, द्वितीय में पेशी अर्थात् अण्डा, तृतीय मास में अवयव, चतुर्थ में हड्डी नस व जोड़ों की नस, पाँचवें मास में चमड़ा, छठे मास में रुधिर, रोम, (लोम) नख, सातवें मास में चित्त में चैतन्यता, अष्टम मास में भूख, प्यास और स्वाद का ज्ञान, नवम मास में बाहर निकलने की इच्छा और दशम मास में समस्त अवयवों से परिपूर्ण सूर्य के स्वामित्व में गर्भ से जीव बाहर जाता है ।

अब प्रत्येक मास के अधिपों को बतलाते हैं—

प्रथम मास का भौम, द्वितीय का शुक्र, तृतीय का गुरु, चतुर्थ का सूर्य, पञ्चम का चन्द्र, छठे का शनि, सातवें का चन्द्र, आठवें का लग्नेश, नवें का चन्द्रमा और दसवें मास का स्वामी सूर्य होता है ।

---

१. सारा० ८ अ० ४२-४३ श्लो० । २. शिर इ० पु० में पा० है । ३. नखा पु० पा० है । ४. शकृच्च पु० पा० है । ५. चेतः स्थिता पु० पा है । ६. चेतः पु० पा० है । ७. स्पर्शापराधी पु० में पा० है । ८. मतिश्च पु० पा० है । ९. जयो यथातै पू० पा० है । १०. बृ० जा० ४ अ० १६ श्लो० भट्टो० टी० प्राप्त है ।

Copyrighted material

इन मासेशों की शुभ वा अशुभ स्थिति से गर्भ का उस मास का शुभाशुभ समझना चाहिये ॥४८-५०॥

मासलक्षणसंयुक्तो गर्भः शुभ इत्युक्तं शुक्रजातके—

मासलक्षणसंयुक्तो गर्भः सुखमवाप्नुयात् ।
ऊनाधिकगुणो गर्भः सर्वदा दुःखमाप्नुयात् ॥५१॥

अब अपने मास लक्षणों से युक्त अर्थात् जिस मास में जिसकी उत्पत्ति होनी चाहिए और वह हो तो गर्भ सुख से अपने मास व्यतीत करता है। इसे शुक्रजातक के वचन से बतलाते हैं—

यदि अपने मास लक्षणों से युत गर्भ हो तो सुख से प्रसव होता है। यदि मास लक्षणों से अधिक या अल्प गर्भ स्थिति हो तो गर्भवती व गर्भ दोनों ही दुःख भोगते हैं ॥५१॥

वराहेण प्रथमद्वितीयमासेशयोर्विपर्यय उक्तः। तद् विशिष्टवाक्यानुरोधाज्ज्ञेयम्।

आचार्य वराह मिहिर ने प्रथम द्वितीय मास के अधिपों को विपरीतता से कहा है अर्थात् यवनोक्त प्रथम मास का स्वामी वराह ने द्वितीय मास का माना है तथा द्वितीय का स्वामी प्रथम मास का माना है यह विपरीतता मासेशों के निर्णय में प्रतीत होती है।

मेरी दृष्टि में इसके अतिरिक्त सप्तम मास के स्वामी में भी विपरीतता आती है।

आचार्य वराह मिहिर ने कहा है—'सितकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किबुधाः परतः। उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिताः' (४ अ० १६ श्लो० बृ० जा०) ॥

तथा च वसिष्ठः—

सितावनेयामरपूज्यसूर्यचन्द्रार्किसौम्योदयपेन्दुसूर्याः।
मासाधिपाः स्युः क्रमशो दशैते निपीडिता नाशयेयुः स्वमासि ॥५२॥

इति। अत्रान्योन्यविरुद्धद्वयोर्वृद्धयवनवसिष्ठयोरेकवाक्यता कथमर्हति। परन्तु बहुसंमतत्वाद्वसिष्ठोक्तपक्ष एव प्रमाणम्। तथा च गर्गः—

कललं प्रथमे मासि तस्य मासाधिपो भृगुः।
द्वितीये मासि भूसूनुर्गर्भपिङ्गाक्षबीजवत् ॥५३॥
गर्भाङ्कुरस्तृतीये स्यात्तस्य मासाधिपोऽङ्गिरा।
मज्जास्थिसंभवो मासि चतुर्थे भास्करोऽधिपः ॥५४॥
पञ्चमे मासि सोमेशस्त्वचस्तत्रापि संभवः।
सर्वाङ्गसम्भवः षष्ठे तस्य मासाधिपः शनिः ॥५५॥
ज्ञानेन्द्रिययुतः पश्चात्सप्तमे त्वीश्वरो बुधः।
आधानेशोऽष्टमे मासि क्षुत्तृष्णासंभवो भवेत् ॥५६॥
उद्वेगो गर्भसंस्थश्च मासेशो नवमे शशी।
प्रसूतिर्दशमे मासि मासेशो भास्करो मतः ॥५७॥
यस्य मासाधिपो रिक्तो नीचो वास्तङ्गतोऽपि वा।
तस्मिन् गर्भक्षयं याति प्रसवो वा भविष्यति ॥५८॥



Copyrighted material

अब वराहमिहिर के समर्थन में वसिष्ठ ऋषि के वचन से मासेशों को बतलाते हैं—

वसिष्ठ ऋषि का कहना है कि प्रथम मास का शुक्र, द्वितीय का भौम, तृतीय का गुरु, चतुर्थ का सूर्य, पञ्चम का चन्द्र, षष्ठ का शनि, सप्तम का बुध, अष्टम का लग्नेश, (आधान लग्नेश), नवम का चन्द्रमा और दशवें मास का स्वामी सूर्य होता है। ये मासेश जब पीड़ित होते हैं तो अपने मास में गर्भ का पतन करते हैं ॥५२॥

यहाँ मासेश के विचार में वृद्ध यवन और वसिष्ठ के वाक्य में विरुद्धता होने से एकवाक्यता नहीं बनती है परन्तु वसिष्ठ ऋषि के वाक्य की अन्य अधिक मतों से समता होने के कारण वसिष्ठ ऋषि का पक्ष ही समादरणीय है।

और भी गर्गाचार्य जी ने वसिष्ठ के मत में ही मासेशों का वर्णन किया है उसे अब कहते हैं—

प्रथम मास में गर्भ का स्वरूप कलल अर्थात् रजवीर्य का संमिश्रण होता है तथा इसका (प्रथम मास का) स्वामी शुक्र होता है। गर्भाधान समय में शुक्र को शुभाशुभ परिस्थिति वश प्रथम मास में गर्भ को शुभाशुभता का ज्ञान करना चाहिये।

द्वितीय मास में गर्भ कञ्जे नेत्र के समान रङ्ग का अण्डा होता है तथा इसका स्वामी भौम होता है।

तीसरे मास में उस अण्डे में अङ्कुर उत्पन्न होते हैं अर्थात् शरीर अवयवों की उत्पत्ति होती है इस मास का स्वामी गुरु होता है।

चौथे मास में बल व हड्डी उन अवयवों में आती है इस मास का स्वामी सूर्य होता है। सूर्य को परिस्थिति वश चौथे मास की शुभाशुभता का ज्ञान करना चाहिये।

पाँचवें मास में खाल बनती है इस मास का स्वामी चन्द्रमा होता है।

छठे मास में गर्भ सब अङ्गों से पूर्ण होता है इस मास का स्वामी शनि होता है।

सातवें मास में ज्ञानेन्द्रिय से युत जीव होता है इस मास का स्वामी बुध होता है।

आठवें मास में भूख, प्यास लगती है और माता के खाये हुए पदार्थों के रस को जीव खाता है। इस मास का स्वामी गर्भाधान लग्नेश होता है।

नवें मास बाहर निकलने का उद्वेग होता है। इस मास का स्वामी चन्द्र है।

दसवें मास में प्रसव होता है। इस मास का स्वामी सूर्य होता है।

जिस मास का स्वामी निर्बल, नीचस्थ अथवा अस्त होता है उस मास में गर्भस्राव हो जाता है अन्यथा प्रसव होता है ऐसा समझना चाहिये ॥५३-५८॥

मासे तु विशेषमाह पराशरः—

द्रवत्वं प्रथमे मासि कललाख्यं प्रजायते।
द्वितीये तु घनः पिण्डः पेशीप्रच्छन्नबुद्बुदः ॥५९॥
पुंस्त्रीनपुंसकानां हि प्रागवस्थाः क्रमादिमाः।
तृतीये त्वङ्कुराद्यङ्गकराङ्घ्रिशिरसो मतम् ॥६०॥
अङ्गप्रत्यङ्गभागाश्च सूक्ष्माः स्युर्गर्भतस्तथा।
चतुर्थे व्यक्तता तेषां भगानामपि जायते ॥६१॥

Copyrighted material

पुंसां शौर्यादयो भावा भीरुत्वाद्यास्तु योषिताम् ।
नपुंसकानां सङ्कीर्णा भवन्तीति प्रचक्षते ॥६२॥
मातृजं चास्य हृदयं विषयानतिकाङ्क्षति ।
अतो मातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद्गर्भसमृद्धये ॥६३॥
मातुश्चेद्विषयालाभस्तदार्तो जायते सुतः ।
प्रबुद्धं पञ्चमे चित्तं मासि शोणितपुष्टता ॥६४॥
षष्ठेऽस्थिस्नायुनखरकेशरोमविविक्तता ।
बलवर्णौ चोपचितौ सप्तमे त्वङ्गपूर्णता ॥६५॥
आद्यो मुखस्वहस्ताभ्यां श्रोत्ररन्ध्रे पिधाय सः ।
उद्विग्नो गर्भसंवासादास्ते गर्भालयान्वितः ॥६६॥
स्मरन्पूर्वानुभूतान्स नानायातानुयातनात् ।
मोक्षोपायमपि धास्यन्वर्ततेऽभ्यासतत्परः ॥६७॥
अष्टमे त्वक्श्रुती स्यातामोजश्चैतन्यहृद्भवम् ।
शुद्धमेतच्च रक्तञ्च निमित्तं जीवितं मतम् ॥६८॥
अष्टमेन पुनर्गर्भश्चञ्चलं तत्प्रधावति ।
अतो जातोऽष्टमे मासि न जीवेद्योऽथ शोभनः ॥६९॥
समयः प्रसवश्चास्य मासेषु नवमादिषु ।

अब प्रत्येक मासों में विशेष बात पराशर के वचन से बतलाते हैं—

प्रथम मास में जो गिरा हुआ रजवीर्य होता है उसका सम्मिश्रण होता है ।

द्वितीय मास में सम्मिश्रण हुए का ठोस पिण्ड वा अण्डा और पुरुष स्त्री नपुंसकादि की प्रथम अवस्था उत्पन्न होती है ।

तीसरे मास में उस बबूले में अंकुर उत्पन्न होते हैं अर्थात् शरीर के हाथ पैर शिर के अवयवादि अंग प्रत्यङ्ग सूक्ष्म एक साथ उत्पन्न होते हैं ।

चौथे मास में उन अवयवों की स्पष्ट प्रतीति होती है तथा पुरुष गर्भ होने पर पराक्रम व स्त्री गर्भ होने पर डर और नपुंसक होने पर पराक्रम व डर दोनों ही उत्पन्न होते हैं । एवं माता के हृदय में पैदा होने वाले विषयों की इस जीव को भी इच्छा उत्पन्न होती है । इसलिये माता के मन की पूर्ति गर्भ की रक्षा के लिये करनी चाहिये । यदि माता की इच्छा (दोहद) पूरी न हुई तो गर्भस्थ जीव रोगी होता है ।

पाँचवें मास में चित्त प्रबुद्ध होता है तथा गर्भस्थ का रक्त पुष्ट होता है ।

छठे मास में हड्डी, नस, नख, बाल और लोम उत्पन्न होते हैं ।

सातवें मास में बल व वर्ण की वृद्धि, अङ्गों में पूर्णता होती है, अपने हाथों से मुख व कान के छेदों को ढक कर जीव गर्भाशय में गर्भ के निवास से उद्विग्न होकर पूर्व जन्म की अनेक यातनाओं का स्मरण करता हुआ अपनी मुक्ति के उपायों का अन्वेषण करता है ।

आठवें मास में खाल, कान, तेज हृदय ।में चैतन्यता, रक्त (खून) में शुद्धता होती

Copyrighted material

है और जीव गर्भ में भ्रमण करता है। इसलिये इस मास में जो गर्भ में जीवन धारण नहीं करता है वह अच्छा ही है। यदि अष्टम मास तक गर्भ में जीवन होता है तो नवम या दशम मास में गर्भस्थ का प्रसव होता है ॥५९-६९॥

मासि मासि ग्रहाणां शान्तिः कर्तव्येत्याह वसिष्ठः—

मासे मासे मासपादिग्रहाणां शान्तिं कुर्याच्छान्तिशुक्लैर्यवैश्च।
होमैर्दानैः सज्जनानाञ्च वाक्यैर्गर्भं सम्यग्रक्षयेत्पुत्रकामी ॥७०॥ इति

अब मास मास में ग्रहों की शान्ति करनी चाहिये, ऐसा वसिष्ठ का वचन है—

जिस मास का जो स्वामी ग्रह हो उस ग्रह की शान्ति सफेद यवों के हवन से, दान से वा सत्पुरुषों के आशीर्वाद से पुत्र कामना वाले जन को अच्छी तरह गर्भ की रक्षा के निमित्त करनी चाहिये ॥७०॥

अथ पुंस्त्रीनपुंसकजन्मयोगाः। वराहः—

[1]विषमर्क्षे विषमांशे संस्थिताश्च गुरुशशाङ्कलग्नार्काः।
पुंजन्मकराः समभेषु योषितां समनवांशगताः ॥७१॥
बलिनो विषमेऽर्कगुरू नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिताः।
यमलं द्विशरीरांशेष्विन्दुजदृष्टया स्वपक्षसमम् ॥७२॥

अब गर्भ है यह ज्ञान होने पर वराहोक्त लघुजातक के वचन से गर्भ में पुत्र, पुत्री या नपुंसक अथवा यमल (दो) सन्तान हैं, इसको कहते हैं—

यदि गर्भाधान के समय वा प्रश्न के समय में गुरु, चन्द्रमा, लग्न व सूर्य ये ग्रह विषम राशि में विषम राशिस्थ नवांश में हों तो पुत्र (पुरुष) का जन्म तथा ये ही ग्रह समराशिस्थ समराशि के नवांश में हों तो कन्या (स्त्री) का जन्म गर्भ से होगा ऐसा समझना चाहिये।

प्रकारान्तर से—यदि गर्भाधान के समय में सूर्य व गुरु बलवान् होकर विषम राशि में हों तो पुत्र का जन्म तथा भौम, चन्द्रमा, शुक्र ये बली होकर समराशि में हों तो कन्या का जन्म होता है।

यदि मिथुन व धनु के नवांश में सूर्य व गुरु विषम राशि में बुध से दृष्ट हों तो गर्भ से दो पुत्रों का जन्म समझना चाहिये।

यदि कन्या व मीन के नवांश में भौम, चन्द्र, शुक्र समराशि में बुध से दृष्ट हों तो गर्भ से दो कन्या का जन्म होता है।

यदि सूर्य, गुरु, भौम, चन्द्र, शुक्र ये पाँचों ग्रह द्विस्वभाव राशि में बुध से दृष्ट हों तो गर्भ से एक कन्या व एक पुत्र का अर्थात् यमल सन्तान का जन्म होता है।॥७१-७२॥

एतत्स्पष्टमुक्तं शुकजातके—

रविजीवौ युग्मधनुर्नवांशस्थौ बुधेक्षितौ।
पुंयुगं मीनकन्यांशस्थितौ पुंस्त्रीयुगं वदेत् ॥७३॥
भौमेन्दुशुक्रा मीनस्त्रीनवांशस्था बुधेक्षिताः।
स्त्रीयुगं चापयुग्मांशे गर्भे पुंस्त्रीयुगं भवेत् ॥७४॥

---

१. लघुजा० ५ अ. १०-११ श्लो०।

Copyrighted material

बृहज्जातके—'द्वयङ्गस्था' द्विस्वभावराशिस्था इति व्याख्येयम्। अन्यथा स्वग्रन्थेन ऋषिप्रणीतग्रन्थेन च विरोधः स्यात्।

इस यमल योग का ज्ञान स्पष्टता से शुक जातक में इस प्रकार वर्णित है—

यदि गर्भाधान के समय में सूर्य व गुरु मिथुन तथा धनु के नवांश में बुध से दृष्ट हों तो दो पुत्र, यदि सूर्य गुरु मीन व कन्या के नवांश में बुध से दृष्ट हों तो एक कन्या, एक पुत्र गर्भ से उत्पन्न होता है।

यदि गर्भाधान के समय में भौम, चन्द्रमा, शुक्र मीन राशि व कन्या राशि के नवांश में बुध से दृष्ट हों तो दो कन्या गर्भ से जन्म लेती हैं।

यदि भौम, चन्द्रमा, शुक्र धनु व मिथुन के नवांश में बुध से दृष्ट हों तो गर्भ से एक कन्या, एक पुत्र का जन्म होता है ॥७३-७४॥

बृहज्जातक में 'द्वयङ्गस्था' इसकी व्याख्या द्विस्वभाव राशि में हों इस प्रकार जाननी चाहिये। अन्यथा यदि बृहज्जातक की ऐसी व्याख्या नहीं स्वीकार करेंगे तो ऋषियों द्वारा निर्मित ग्रन्थों से बृहज्जातक का विरोध हो जायगा।

वराहः—

[1]लग्नाद्विषमोपगतः शनैश्चरः पुत्रजन्मदो भवति।
निगदितयोगे बलवानवलोक्य विनिश्चयो वाच्यः ॥७५॥

निगदितेति। यत्र पुरुषयोगसंभवः स्त्रीयोगसंभवश्च तुल्यो दृश्यते। तदा तत्रैव योगकर्तृग्रहाणां बलाधिक्यं तस्यैव निश्चयो वक्तव्य इति॥

अब वराहमिहिराचार्य जी के वचन से पुत्र जन्मप्रद योग को कहते हैं—

यदि गर्भाधान या प्रश्न के समय लग्न से विषम भाव या राशि में शनि हो तो पुत्र का जन्म देने वाला होता है।

जिस कुण्डली में पुत्र व कन्या प्रद दोनों योग उपलब्ध हों तो वहाँ बली ग्रह द्वारा जो योग उपस्थित हो उसे ही निश्चय करके कहना चाहिये ॥७५॥

अत्र विशेषः शुकजातके—

लग्नं त्यक्त्वा च विषमे पुत्रदो भास्करात्मजः।
समे कन्याप्रदः प्रोक्तो नान्यग्रहनिरीक्षितः ॥७६॥

[2]होरामकरन्दे—

एकोऽपि केन्द्रे नृखगो बलीयान्स्वांशे स्ववर्गे नरखेटदृष्टः।
सूते नरं स्वोच्चगतोऽथ केन्द्रे स्त्रीसंज्ञकः स्त्रीजनकस्तथैव ॥७७॥

इस पुत्र जन्म योग में विशेष बात शुकजातक व होरामकरन्द नामक ग्रन्थ से बतलाते हैं—

यदि गर्भाधान के समय में लग्न को छोड़कर शनि अन्य ग्रहों से अदृष्ट विषम (३, ५, ७, ९, ११) भाव में हो तो पुत्र का जन्म तथा सम भावों में अन्य ग्रहों से अदृष्ट शनि हो तो कन्या का जन्म होता है।

होरामकरन्द में कहा है कि यदि आधानकाल में एक भी पुरुष ग्रह केन्द्र में बली

१. लघुजातक ५ अ० १२ श्लो०। २. ४ अ० १९ श्लोक।

Copyrighted material

होकर अपने नवांश में या अपने वर्ग में पुरुष ग्रह से दृष्ट हो तो पुरुष अर्थात् पुत्र का जन्म होता है। यदि स्त्री संज्ञक ग्रह स्वोच्चस्थ केन्द्र में स्त्री ग्रह से दृष्ट हो तो कन्या का जन्म होता है ॥७६-७७॥

अथ क्लीबयोगाः सारावल्याम्—

[1]अन्योन्यं रविचन्द्रौ विषमर्क्षसमर्क्षगौ निरीक्षेते।
इन्दुजरविपुत्रौ वा दृष्टौ बलिनौ नपुंसकं कुरुतः ॥७८॥
सूर्यं समराशिगतं वक्रो विषमर्क्षगोऽवलोकयति।
विषमर्क्षे लग्नेन्दू कुजेक्षितौ षण्ढसंभवं कुरुतः ॥७९॥
बुधचन्द्रौ कुजदृष्टौ विषमर्क्षसमर्क्षगौ तथा कुरुतः।
ओजनवांशकसंस्था लग्नेन्दुसितास्तथैवोक्ताः ॥८०॥
पश्यति वक्रः समभे सूर्यं चन्द्रोदयौ च विषमर्क्षे।
यद्येवं गर्भस्थः क्लीबो मुनिभिः सदा दृष्टः ॥८१॥
ओजसमराशिसंस्थौ ज्ञेन्दू षण्ढं कुजेक्षितौ कुरुतः।
नरभे विषमनवांशे होरेन्दुसिता बुधार्किदृष्टा वा ॥८२॥

ग्रन्थान्तरे—

जायास्थाने यदा खस्थे मिश्रं च हिबुके तथा।
नपुंसको भवेज्जातो यदि रक्षेत्स्वयं हरिः ॥८३॥

एते क्लीबयोगाः पूर्वोक्तपुंस्त्रीयोगानामभावे वक्तव्याः। यदि तु तेषामेतेषां च संभवस्तदा तेषामेव बलवत्त्वम्। तदुक्तम् [2]होरामकरन्दे—

बलाबलं विलोक्यैषां ग्रहाणां योगकारिणाम्।
स्त्रीपुंसोर्निर्णयः क्लीबयोगास्तु तदसंभवात् ॥८४॥

अब सारावली के वचन से नपुंसक योगों को कहते हैं। ये ६ प्रकार के हैं—

१—यदि आधान या प्रश्न के समय में सूर्य चन्द्रमा से या चन्द्रमा सूर्य से अर्थात् परस्पर दृष्ट समराशि में या विषम राशि में हों तो गर्भ में नपुंसक का जन्म होता है। यह एक योग है।

२—यदि विषम-सम राशिगत शनि-बुध आपस में दृष्टि सम्बन्ध रखते हों तो द्वितीय योग।

३—यदि विषमराशिस्थ भौम समराशिस्थ सूर्य को देखता हो तो तृतीय योग।

४—यदि सम राशिगत भौम विषम राशिस्थ लग्न व चन्द्रमा को देखता हो तो चतुर्थ योग।

५—यदि विषमराशिस्थ बुध व समराशिस्थ चन्द्रमा भौम से दृष्ट हो तो पाँचवाँ योग।

६—यदि विषमराशिस्थ विषम राशि के नवांश में लग्न, चन्द्रमा, शुक्र ये बुध वा शनि से दृष्ट हों तो भी नपुंसक का जन्म समझना चाहिये। यह छठा योग है।

---

१. ८ अ० १८-२० श्लो०। २. ४ अ० २१ श्लोक।

Copyrighted material

ग्रन्थान्तर में कहा है—सप्तम, दशम, चतुर्थ में नपुंसक ग्रह हों तो नपुंसक का ही जन्म होता है चाहे उस जीव की भगवान् भी रक्षा करते हों।

ये पूर्वोक्त क्लीब योग स्त्री, पुरुष योगों के अभाव में होते हैं ऐसा समझना चाहिए।

यदि स्त्री-पुरुष योग की प्राप्ति व नपुंसक योग की भी लब्धि हो तो स्त्री वा पुरुष योग की प्रधानता समझनी चाहिये। इनमें भी बली ग्रह द्वारा जो योग बनता हो उसे ही फलादेशार्थ ग्रहण करना चाहिये। ऐसा होरामकरन्द[1] नामक ग्रन्थ में कहा है। इन योग कारक ग्रहों की बलवत्ता व निर्बलता का अवलोकन करके स्त्री-पुरुष योग में से एक को मान कर फलादेश करना चाहिये। स्त्री पुरुष योगों के अभाव में ही नपुंसक योगों की सम्भावना होती है ॥७८-८४॥

**विशेष**—प्रकाशित सारावली में 'चन्द्रौ विषमर्क्षगतौ' 'होरेन्दुबुधा सितार्किदृष्टावा' यह पाठान्तर उपलब्ध है। तथा ७८-७९ श्लोक भी प्राप्त नहीं होते हैं।

इन ७८-७९ तक श्लोकों का अर्थ ८०-८१ में प्राप्त हो जाने से अनुपलब्धि हानि-दायक प्रतीत नहीं होती है।

प्रकाशित सारावली में सूर्य व चन्द्रमा को विषम राशिस्थ ही कहा गया है यहाँ के वाक्य में विषम व सम दोनों में ही वर्णन किया हुआ मिलता है। प्रकाशित में होरा, चन्द्र, बुध को विषम राशि के नवांश में शुक्र वा शनि से दृष्ट होने पर योग का वर्णन मिलता है यहाँ सारावली के वाक्य में लग्न, चन्द्रमा, विषम राशि के नवांश में बुध या शनि से दृष्ट होने पर योग का वर्णन मिलता है। मेरी दृष्टि में बादरायण के वचन से सम्मत वाक्य यही है। किन्तु सूर्य चन्द्रमा में प्रकाशित का ही समर्थन है जैसा कि बृ० जा० ४ अ० १३ श्लो० की भट्टोत्पली टीका में उपलब्ध है—'अन्योन्यं रविशशिनौ विषमौ विषमर्क्षगौ निरीक्षेते। इन्दुजरविपुत्रौ वा तथैव नपुंसकं कुरुतः। वक्रो विषमे सूर्यः समगश्चैवं परस्परालोकात्। विषमर्क्षे लग्नेन्दू समराशिगतः कुजोऽवलोकयति। बुधचन्द्रौ कुज-दृष्टौ विषमर्क्षसमर्क्षगौ तथैवोक्तौ। ओजनवांशकसंस्था लग्नेन्दुसितास्तथैवोक्ता' ॥७८-८४॥

अथ द्वित्र्याद्युत्पत्तियोगानाह कल्याणवर्मा—

लग्ने समराशिगते चन्द्रेण निरीक्षिते बलयुतेन[2]।
गणितविदा वक्तव्यं मिथुनं गर्भसंस्थितं नूनम् ॥८५॥
[2]लग्नेन्दू समराशौ पुंग्रहदृष्टौ च मिथुनजन्मकरौ।
उदयज्ञवक्रगुरवो बलिनः समराशिगास्तथैवोक्ताः ॥८६॥
समराशौ शशिसितयोर्विषमे गुरुवक्रसौम्यलग्नेषु।
द्विशरीरे वा बलिषु प्रवदेत्स्त्रीपुरुषमत्रैव ॥८७॥
द्विशरीरांशकयुक्तान् ग्रहान् विलग्नं च पश्यतोन्दुसुते।
कन्यांशे द्वे कन्ये पुरुषश्च निषिच्यते गर्भे ॥८८॥

१. सारा० ८ अ० २१ श्लो०। पाठान्तर—'चन्द्रे च निरीक्षिते' किन्तु टीका में 'चन्द्रेण निरो' है। २. प्रकाशित सारावली ८ अ० २१ श्लो० की मेरी व्याख्या में प्राप्त है।

Copyrighted material

[1]मिथुनांशे कन्यैका द्वौ पुत्रौ त्रितयमेवं स्यात् ।
मिथुनधनुरंशगतान् ग्रहान् विलग्नं च पश्यतीन्दुसुतः ॥८९॥
मिथुनांशस्थश्च यदा पुरुषत्रितयं तदा गर्भे ।
कन्यामीनांशस्थानपि ग्रहानुदयं च युवतिभागगतः ॥९०॥
पश्यति शिशिरगुतनयः कन्यात्रितयं तदा गर्भे ।

अब गर्भस्थ दो या तीन जीवों के योगों को कल्याण वर्मा के वचनों से कहते हैं—

१—यदि गर्भाधान के समय में समराशिस्थ लग्न बली चन्द्रमा से दृष्ट हो तो गर्भ से २ सन्तान का जन्म होता है ऐसा ज्योतिषी को कहना चाहिये ।

प्रकाशित सारावली में—'लग्ने समराशिगते चन्द्रे च निरीक्षिते बलयुतेन गगनसदा वक्तव्यम्' यह पाठान्तर होने से लग्न व चन्द्र समराशि में बली ग्रह से दृष्ट हों तो यमल का जन्म कहना चाहिये, यह अर्थ समझना चाहिये । किन्तु 'चन्द्रेण निरीक्षिते' यह पाठ ही मेरी दृष्टि में सं० वि० वि० की मातृका में प्राप्त होने में उचित है ।

२—यदि समराशिस्थ लग्न व चन्द्रमा पुरुष ग्रह से दृष्ट हों तो गर्भ से यमल का जन्म होता है ।

३—यदि समराशि में बली लग्न, बुध, भौम गुरु हों तो भी गर्भ से यमल का जन्म होता है ।

४—यदि समराशि में चन्द्रमा व शुक्र हो और विषम राशि में गुरु, भौम, बुध और लग्न हो तो भी यमल का जन्म होता है ।

यदि द्विस्वभाव राशिस्थ बली गुरु, भौम, बुध व लग्न हो तो भी यमल (दो) का जन्म कहना चाहिये ।

अब गर्भ में तीन बालक होने के योग बतलाते हैं—

१—यदि द्विस्वभाव राशि के नवमांश में ग्रह व लग्न हों और मिथुन राशि के नवांश में स्थित बुध, लग्न व ग्रहों को देखता हो तो गर्भ से १ कन्या व २ पुत्रों का जन्म होता है ।

२—यदि द्विस्वभाव राशि के नवांश में ग्रह व लग्न हों और कन्याराशि के नवांश में स्थित बुध, लग्न व ग्रहों को देखता हो तो गर्भ में २ कन्या १ पुत्र है ऐसा समझना चाहिये ।

३—यदि मिथुन व धनुराशि के नवांश में ग्रह व लग्न हों और मिथुन राशि के नवांश में स्थित बुध ग्रह व लग्न को देखे तो गर्भ में तीन पुरुष जीव होते हैं ।

४—यदि कन्या व मीन राशि के नवांश में ग्रह व लग्न हो और कन्या के नवांश में स्थित बुध से लग्न व ग्रह दृष्ट हों तो गर्भ में तीन कन्या समझनी चाहिये ॥८५-९०॥

वराहः—

[2]धनुर्नरस्यान्त्यगते विलग्ने ग्रहैस्तदंशोपगतैर्बलिष्ठैः ।
ज्ञेनार्किणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूता अपि कोशसंस्था ॥९१॥

---

१. सारा० ८ अ० २३-२७ श्लो० । २. बृ० जा० ४ अ० १५ श्लो० ।

Copyrighted material